# संहार (अनुभूति)

**(भाग – 1)**

**ब्र**ह्मत्व परमानन्द कैवल्य पद है। तत्त्व में कोई क्रीड़ा नहीं है। शिव में परमाद्या शक्ति समाहित ही रहती है। शिव स्वयं में अदृश्य अत्यन्त (अति+अन्त) शक्ति पारब्रह्म परमेश्वर है। प्रेरक आद्याशक्ति की प्रेरणा से शिव **'एकोऽहम्-बहुस्याम्'** क्रीड़ा के लिए अदृश्य में ही अपने दो स्वरूपों में प्रकट होता है–परमात्मा एवं जीवात्मा। अतिशक्ति विरक्ति एवं पंच प्राणों की अदृश्य महाशक्ति में क्रीड़ा होती है। यह क्रीड़ा ही पंच-महाभूत और इनसे निर्मित, पालित एवं संहारोपरान्त इन्हीं में विलय एवं प्रकट होती समस्त चराचर मायिक सृष्टि है। प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान क्रमशः अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल एवं आकाश में प्रकट होते हैं। सहज चेतन पंच प्राणों से प्रकट पंच-महाभूत, स्वयं में सहज जड़ हैं। पंच महाभूतों को अपना स्वयं का कोई ज्ञान नहीं है, अतः ये स्वयं ईश्वर द्वारा ही प्रेरित, संचालित, सम्पादित एवं कार्यान्वित होते हैं। **'एकोऽहम्-बहुस्याम्'** में शिव **'स्वयं'** में **'वयम्'** है और **'वयम्'** में स्वयं है।

पंच महाभूत सदा-सदा से स्वतः ईश्वर सम्मुख ही हैं। विमुखता तब होती है, जब किसी को अपने स्वयं के होने (अस्तित्व) का ज्ञान हो और ईश्वर विमुख हो। अपने स्वयं के होने का ज्ञान न होना **'सहज जड़ता'** है। सहज जड़ता में कोई पाप-पुण्य, प्रारब्ध, कर्म एवं काल बन्धन नहीं होते। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था सहज जड़ता है। योगी, ध्यान में जब अपनी इन सहज जड़ स्थितियों का अनुभव

करता है, तो वह **'सहज समाधि'** अथवा **'सहज चेतना'** है। **'सहज जड़ता'** सबकी एक है और देह एवं नाम-रूप से परे है। सम्पूर्ण सृष्टि स्वयं में एक **'स्थिति'** है, जिसकी निर्माण, पालन और संहार तीन विधाएँ हैं। पंच-महाभूतों को अपना और अपनी गतियों का कोई ज्ञान नहीं है, लेकिन ईश्वर प्रेरणा से ये दशानन (अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अबाध, अकाट्य, विशिष्ट, सार गर्भित, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) गति करते हैं। इन गतियों के एवज में सृष्टि में निर्माण, पालन एवं संहार होता है। पंच-महाभूतों की गतियाँ भी दशानन हैं और इनके एवज में जो कुछ होता है, वह भी दशानन है। निर्माण दशानन है, निर्मित दशानन है, पालन दशानन है, पालित दशानन है, संहार दशानन है, संहारित दशानन है। जब **'निर्मित'** निर्माण की, **'पालित'** पालन की और **'संहारित'** संहार की अनुभूति कर लेता है, तो वह तत्त्वदर्शी महापुरुष सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में एक ही अदृश्य महातत्त्व का **'दर्शन'** करता है। पंच-महाभूतों की दशानन गतियों एवं उनके दशानन प्रकाट्य (निर्माण, पालन एवं संहार) की प्रेरक, संचालक, संवाहक, संशोधक, सम्पादक, नियन्त्रक एवं क्रियान्वयन शक्ति विरक्ति ही है। निर्माणत्व, पालनत्व एवं संहारत्व और प्रकाट्य रूप में निर्मित्व, पालित्व एवं संहारित्व दशानन हैं। इन का तत्त्व एकादश है और अदृश्य है, वही शिव है। ब्रह्मत्व, विष्णुत्व एवं शिवत्व तीनों में शिव ही शिव है। अदृश्य की अदृश्यता शिव है। दृश्यमान प्रकाट्य की दृश्यमानता एवं अदृश्यता भी शिव है।

सम्पूर्ण दृश्यमान कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का एक प्रतिनिधित्व मात्र मानव-देह और मानव-देह मात्र है। मानव को मानव देह में जो, जब, जहाँ, जैसा **'दृश्यमान'** है, वह ईश्वर के **'सद्'** का प्रतिनिधित्व करता है। मानव को मानव-देह में जो **'अदृश्य'** है, उस अदृश्यता के दर्शन में ईश्वर का **'चेतन'** एवं **'आनन्द'** अनुभूतिगम्य होता है। मानव-देह के छः आयाम हैं– गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, तथाकथित जाग्रतावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था। इनमें से हमें अपना स्वयं का मात्र एक आयाम, देह की अवचेतना में (जाग्रतावस्था) दृश्यमान होता है। अपनी देह के इस एक

आयाम के विषय में भी मैं जो जानता हूँ, वह समस्त जान्यता **चेतना में नहीं, अवचेतना में** है। इस अवचेतना में जो-जो मैं जानता हूँ, उसे मैं अपनी चेतना (Awareness) मानता हूँ। लेकिन अवचेतना स्वयं में चेतना से नीचे की स्थिति है। अतः हम जो जानते हैं, अधूरा ही जानते हैं और अधूरा ही जानना चाहते हैं। जब मैंने होश सम्भाला, तो मेरी देह निर्माणाधीन नहीं मुझे पूर्णतः **'निर्मित'** मिली अर्थात् उसका निर्माण हो चुका था। यह निर्माण मेरी और किसी की होश से परे का विषय है। यह बहुत बड़ा रहस्य है, जिसे हम जानना नहीं चाहते। फिर जन्म होता है और अपना जन्म आज तक किसी ने न देखा है, न देख सकता है। जब मुझे होश आई, तो मैंने स्वयं को पले-पलाए पाया। अतः ईश्वरीय सुकृति मानव-देह मुझे पूर्णतः **'निर्मित'** और **'पालित'** मिली।

देह के निर्माण के लिए माँ के गर्भ में एक बिन्दू (zygote) या भ्रूण रूप में जिस क्षण गर्भाधान होता है, साथ ही माँ के रक्त से पालन होना प्रारम्भ हो जाता है। निर्माण के एक-एक क्षण के साथ उसका पालन होना आवश्यक है। लेकिन यहीं से **'संहार'** का शिकंजा भी जकड़ लेता है। निर्माण और पालन की किसी भी स्थिति में संहार हो सकता है। ऐसा कोई धर्म, कर्म अथवा विधि नहीं है, जो हर क्षण निर्माण एवं पालन पर हावी **'संहार'** का वर्चस्व नकार दे। तेरी देह एक-एक पल प्रतिदिन **'संहारित'** है। **'संहार'** का शिकंजा जन्म के साथ ही नहीं, बल्कि माँ के गर्भ में तेरी देह के लिए गर्भाधान होते ही तुझे जकड़ लेता है। जब तूने होश सम्भाली, तब तू **'निर्मित'** था और **'पालित'** था तथा पालन चल रहा था। निर्माण-पालन साथ-साथ चलते हैं और **'संहार'** साथ-साथ हर क्षण साथ रहता है। संहार के साथ ही निर्माण और पालन समाप्त हो जाता है। जिस क्षण संहार हो गया, निर्माण-पालन एवं संहार का समाप्त होना अवश्यम्भावी है।

दैहिक विकास की एक स्थिति में मैंने स्वयं को उस नाम से पहचाना, (मेरा नाम अमुक है) जो मेरे साथ नहीं आया था। नाम किसी अन्य द्वारा रखा गया था। **'मैं'** शब्द ने इसकी पुष्टि की। यह **'मैं'** विशुद्ध आत्मतत्त्व का

प्रतिनिधि नहीं, एक जटिल्य है, जिसे मैं युगों-युगान्तरों से लिए चल रहा हूँ। इसके चार अंग हैं—**'मैं', 'नाम', 'रूप' (मानव-देह) और मेरा जो, जब, जहाँ, जैसा 'होना'।** किसी नाम का अपना कोई रूप (देह) नहीं है और किसी रूप (देह) का अपना कोई नाम नहीं है। जब मैंने नाम को स्वीकार कर लिया, तो मेरा रूप **'नाम का'** हो गया। **'नाम का'** को उल्टा पढ़ें, तो शब्द प्रकट हुआ **'कामना'**। बस वहीं से किसी न किसी कामना ने मुझे जकड़ लिया। ये कामनाएँ और चाहतें कभी किसी की पूरी नहीं होती। **'नाम का'** होकर प्रत्येक व्यक्ति कामनाओं को लिए होश सम्भालता है, कामनाओं में जीता है और असंख्य कामनाओं को लिए पुनः पुनः मरता रहता है। जागृति के अतिरिक्त देह की पाँच अवस्थाओं में भी **'मैं'** जटिल्य होता है, लेकिन अप्रकट (सुषुप्त) अवस्था में रहता है।

मानव-देह की जिन पाँच अवस्थाओं में **'मैं'** जटिल्य (Complex) अप्रकट रहता है, उसमें से चार अवस्थाएँ (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था) हम सब मानवों की **एक सी** हैं और भस्मावस्था **एक ही** है। ये पाँचों अवस्थाएँ किसी ने अपनी स्वयं की न देखी है, न देख सकता है। इसलिए इन अवस्थाओं में तेरी कोई कामना नहीं होती। अवचेतना में **'मैं'** जटिल्य (Complex) जाग्रत होने पर उठते ही तू भिन्न-भिन्न होकर भिनभिनाने लगता है। आज की देह सहित जगत एवं आज का दिन दोनों नूतन हैं, इसलिए तू नित नूतन है। आज का दिन, आज का ही है, यह पुनः कभी नहीं आएगा। आज की देह, जगत सहित आज की ही **'नूतन'** है, यह निर्मित व पालित के साथ संहारित भी है। इसकी **'नित नूतनता'** का आभास एवं प्रतीति के लिए तुझे जीते जी संहारित के दृश्यमान प्रमाण (भस्मी) से आत्मसात् होना होगा।

हर दिन तेरे जीवन **में** अन्तिम दिन तो होता ही है, लेकिन कोई भी दिन तेरे जीवन **का** अन्तिम दिन भी हो सकता है। जो जीवन **का** अन्तिम दिन होगा, वह जीवन **में** अन्तिम दिन भी होगा। देह, हर पल संहारित है और नित नूतन है। देह के साथ जगत भी नित नूतन है, लेकिन **'नाम का'** होने के

कारण तुझे न देह नित नूतन लगती है और न जगत। अवचेतना में **'नाम का'** होते हुए उठते ही, कोई न कोई कामना खड़ी हो जाती है और तेरी समस्त दैहिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियाँ देह व जगत के पालन में लग जाती हैं। **'तू'** हर पल साथ रहने वाले **'संहार'** को जानते एवं मानते हुए भी जाने-अनजाने उपेक्षित किए रहता है। हर व्यक्ति उस **'संहार'** को टालना चाहता है, जो अवश्यम्भावी है और किसी भी पल हो सकता है। इस उपेक्षा एवं संहार की अवज्ञा के कारण जो पालन स्वतः हो रहा है, उसमें संघर्षरत हो जाता है। अपनी देह की एक अवस्था (तथाकथित जागतावस्था), **'मैं'** जटिल्य के वश में होकर अवचेतना में काल, कर्म व प्रारब्ध की वशताओं में घिर जाता है। जो सब कुछ स्वतः होना है, उसे कर्ताभाव से करते हुए लब्ध को ही उपलब्ध करता रहता है।

इस **'सद्'** को तू आत्मसात् कर ले, कि निर्माण निर्मित है, पालन स्वतः पालित है और संहार ने तुझे प्रारम्भारम्भ से ही जकड़ रखा है। अतः तू संहारित भी है। तू मानव है, अपनी उत्कृष्टतम सोच की समझ से समझ ले, कि जो स्वतः निर्मित है और जिसका अगला क्षण तेरे हाथ में नहीं है, उसका पालन तू कैसे कर सकता है ? तू एक कठिन व जटिलतम जटिल्य (Complex) से जकड़ा हुआ है, कि 'मैं देह हूँ'। तू शाश्वत् आत्मतत्त्व है, तुझे क्षणिक मानव-देह इसलिए दी गई है, कि तू इस **'मैं'** जटिल्य से जीते जी बाहर आ। इससे बाहर आने के लिए तेरे पास तेरी अपनी देह के पाँच विशिष्ट क्षेत्र हैं। अवचेतना में उठकर तू इनमें से किसी भी एक अवस्था का ध्यान कर। इसके दर्शन से तुझे निर्मित, पालित व संहारित का रहस्य मालूम चल जाएगा और तुझे देह सहित जगत की नित नूतनता का आभास होने लगेगा।

सतत् परिवर्तनशील एवं नित नूतन दृश्यमान मानव-देह का **'नित्य'** तत्त्व अदृश्य है। सद् और असद् में **'सद्'** समान है। असद् से **'सद्'** का अधिग्रहण करके असद् को **'सद्'** से जोड़ दें, तो वह असद् न केवल **'सद्'** बल्कि **'सदासद्'** (सद्+असद्=सदासद्) हो जाता है। मानव-देह असंख्य

क्षण-भंगुर क्षणों का पुंज है। अनित्य व क्षण-भंगुर देह का **'सार'**, **'संहारित'** का द्योतक पदार्थ '**भसम**' है। अनित्य व क्षण-भंगुर क्षणों द्वारा जब हम देह के नित्य तत्त्व (भसम) का अधिग्रहण करते हैं, तो तथाकथित अनित्य देह, नित्य+अनित्य =**'नित्यानित्य'** हो जाती है। यही निर्माण, पालन और संहार का **'सार'** है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

**'मैं देह हूँ'** सन्देह रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में **'मैं'** स्वयं में आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि होते हुए भी देह के साथ नाम-रूप की तद्रूपता सी में सात वटों से गुण्ठित हो गया। मिलावट, बनावट, सजावट, दिखावट, थकावट, रुकावट और गिरावट। तथाकथित मेरी देह का दृश्यमान आयाम मात्र एक है, उसमें इन वटों से कुण्ठित व गुण्ठित देह दृश्यमान होती है। **'मैं'** शब्द जीवात्मा नहीं, जीवात्मा का प्रतिनिधि है। मानव-देह में देह का प्रतिनिधि **'रूप'** या चेहरा है। **'रूप'** नाम से कुण्ठित हो गया। नाम, जो देह का नहीं था और जिस नाम की देह नहीं थी, जब देह उस नाम की हो गई, तो उस **'रूप'** से **'मैं'** तद्रूप सा हो गया। **'रूप'** की नाम से कुण्ठा अदृश्य है। यद्यपि **'मैं'** का अपना कोई रूप नहीं है और **'मैं'** स्वयं में सर्व का दृष्टा है। नाम की कुण्ठा में कुण्ठित देह **'जन्म-मृत्यु'** की सीमा में बँध कर अपना यथार्थ खो बैठी। जब तूने नाम को स्वीकार कर लिया, तो उसी नाम से तूने अपना जन्म मान लिया। जबकि अपना स्वयं का जन्म तूने देखा नहीं था और जन्म लेते समय तेरा कोई नाम नहीं था। उस नाम ने तेरी गर्भावस्था का भी अधिग्रहण कर लिया और तू जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित काल-चक्र में भटकने पर विवश हो गया। **'मैं'** लगने से इसकी पुष्टि-दर-पुष्टि होती रही।

निर्मित देह की अवचेतना में **'मैं'** निर्माण का ध्यान कर सकता हूँ, निर्माण में निर्माण का ध्यान नहीं कर सकता। यद्यपि मैं अवचेतना में होता हूँ, तदपि मुझे विश्वास है, कि मेरी एक नाम से कुण्ठित व गुण्ठित देह जिसके साथ तद्रूपता सी में **'मैं'** भटक रहा हूँ, उसका निर्माण मेरे और किसी के भी हस्तक्षेप एवं सोच के बिना हुआ। उस समय मेरा कोई निश्चित

रूप नहीं था, इसलिए नाम भी नहीं था। मैं ध्यान में अपनी स्वयं की निर्माणाधीन स्थिति से आत्मसात् होते हुए, उसकी अनुभूति करूँ, तो स्वयं में नाम-रूप से परे हो जाऊँगा। क्योंकि निर्माण के समय **'मैं'** रूप व नाम से परे था, मेरे लिए देह व जगत नहीं था और मेरा **'मैं'** जटिल्य (Complex) अप्रकट था।

जड़ता में तेरा नाम-रूप नहीं है, लेकिन तुझे ज्ञान नहीं है, कि तू नाम-रूप से परे है। अवचेतना में जड़ता का दर्शन करने से तेरी चेतना जाग्रत हो जाएगी, तो तेरी वह **'मैं',** जटिल्य (Complex) वाली नहीं होगी, वह विशुद्ध आत्मतत्त्व की द्योतक **'मैं'** होगी। उसके प्रकट होने के लिए भी देह चाहिए, वह देह यथार्थ होगी। तेरे लिए **'निर्मित'** प्रकाट्य है, **'पालित'** प्रकाट्य है। तुझे बोधता में बोध हो जाएगा, कि जो, जब, जहाँ, जैसी देह तेरे लिए प्रकट होती है, उसका एक-एक रोम मात्र ईश्वर द्वारा ही निर्मित एवं पालित है। न तू निर्माण करने वाला है और न पालन करने वाला है और न संहार तेरे हाथ में है। तेरी देह की 'भस्मी' तत्त्वातीत तत्त्व है। जीवन काल में इस तत्त्वातीत तत्त्व की अवधारणा द्वारा तू संहारित का अवलोकन कर। तुझे निर्मित्व, पालित्व एवं संहारित का **'तत्त्व'** अनुभूतिगम्य हो जाएगा। वह **'विरक्ति'** है।

संहार ही दृश्यमान माया का श्रंगार है। तू जानता है और मानता है, कि तेरी देह की **'भस्मी'** बनेगी ही और कभी भी बन सकती है। **'भस्मी'** निर्माण व पालन के दौरान अदृश्य रहती है। अतः जब तू जीते जी अपनी भस्मी का ध्यान करेगा, तो तुझे **'संहारित देह'** की अनुभूति होने लगेगी। निर्माण का तत्त्व ब्रह्मत्व है। पालन का तत्त्व विष्णुत्व है और संहार का तत्त्व शिवत्व है। तीनों एक ही हैं। हर निर्मित-पालित, हर सोपान और हर स्थिति में संहारित भी है। देह के गर्भाधान से उससे जन्म की सुनिश्चितता नहीं है। गर्भ में देह, क्रम से निर्मित-पालित होती रहती है, लेकिन कभी भी गर्भपात या संहार हो सकता है। जन्म के साथ शैशव शुरू होते ही शव किसी भी क्षण बन सकता है।

मैंने अपने प्रवचनों में पुनः पुनः इंगित किया है, कि मानव देह की दो अवस्थाएँ **'शैशव एवं शव'** ही सुनिश्चित हैं। अन्य अवस्थाएँ हो भी सकती हैं, नहीं भी। जब तुझे होश आई, तो तूने अपने साथ निर्मित-पालित देह के साथ जगत की समस्त विधाओं को बना-बनाया पाया। निर्माण-पालन के समय तुझे बोध नहीं था। जब तू होश में निर्माण व पालन का ध्यान करेगा, तब तुझे ईश्वर के निर्माणत्व (ब्रह्मत्व) एवं पालनत्व (विष्णुत्व) का बोध हो जाएगा। तू जानता है, कि किसी भी अवस्था में देह अपने जगत सहित संहारित है, वहाँ तेरे लिए न निर्माण होता है, न पालन और न निर्मित रहता है, न पालित रहता है। गर्भाधान होते ही उसी क्षण से अन्त एवं अन्तान्त तक **'संहार'** सुनिश्चित हो जाता है और निर्मित-पालित के साथ चलता है। निर्मित्व ब्रह्मत्व है, संहारित्व शिवत्व (विरक्ति) है। पालित्व व्याप्ति है और विष्णुत्व है। विष्णु कण-कण में व्याप्त है। व्याप्ति पर विरक्ति हावी रहती है। ध्यान समाधि से जब **'विरक्ति'** तत्त्व अनुभूतिगम्य हो जाता है, तो ब्रह्मत्व, विष्णुत्व एवं शिवत्व तीनों एक हो जाते हैं।

जो निर्मित है और पालित है, वह संहारित भी है। जब संहार होगा, तो निर्माण और पालन समाप्त हो जाएगा। इस संहार के साथ **'मैं'** जटिल्य (Complex) का संहार नहीं होता। यह जटिल्य ज्यूं का त्यूं अप्रकट रहता है। मानव होने के नाते तुझे ज्ञान है, कि मृत्यु हो जाएगी और भस्मी बन जाएगी। लेकिन **'मैं'** जटिल्य (Complex) पुनः निर्माण और पालन का कारण बनेगा। **'मैं'** जटिल्य (Complex) का संहार करने के लिए तुझे जीते जी संहार को आत्मसात् करना होगा। संहार सर्वोपरि है और कभी भी जब चाहे निर्माण-पालन को समाप्त कर सकता है। हे मानव ! तू संहारित देह के साथ है। संहार सुनिश्चित भविष्य है, निर्माण अतीत है और पालन अतीत, वर्तमान व भविष्य तीनों का है। संहार होगा ही, तेरी देह संहारित है। निर्मित व पालित दृश्यमान है और नित नूतन है। संहार अदृश्य है और नित्य है। आत्मतत्त्व नित्य है और सृष्टि में संहार नित्य है। तू नित्य को नित्य से मिला दे। जैसे ही **'मैं'** तत्त्व, **'भसम'** तत्त्व से मिलेगा, यह जटिल्य (Complex)

बिखरना शुरू हो जाएगा। **'मैं'** शब्द रूप में आत्मतत्त्व की प्रतिनिधि है, जो **'नाम'** के साथ तद्रूपता सी में आत्मतत्त्व की स्मृति खो बैठी। उस प्रतिनिधि **'मैं'** को तू अवचेतना में भस्मी के साथ आत्मसात् कर दे। तेरा मैं जटिल्य भंग हो जाएगा और तू अपने अभंग (आत्मस्वरूप) में विचरने लगेगा।

पाँचों अवस्थाएँ जड़ता में हैं और जब तू उठा है, तो अवचेतना में है। जड़ता में यह जटिल्य प्रकट नहीं होता, तुझे अवचेतना में उठकर समाधि-ध्यान द्वारा इस जटिल्य से परे होना है। इसमें से तुझे आत्मतत्त्व को निथारना है। जब वह आनन्द स्वरूप जाग्रत होगा, तो वहाँ **'मैं'** शब्द भी लुप्त हो जाएगा। प्रभु ने तुझे देह का एक पदार्थ दिया है–**'भसम',** तू उससे आत्मसात् होने की प्रार्थना कर। यह पदार्थ हर समय, अवस्थाओं, स्थानों और स्थितियों की देह का **'एक'** ही है। जब तू संहार को आत्मसात् करेगा, तो वह जटिल्य (जिसने तुझे अभाव में ही रखा) संहारित हो जाएगा और तेरा अभावमय आनन्द स्वरूप जाग्रत हो जाएगा। तेरी चेतना जाग्रत हो जाएगी। जब देह द्वारा तू यह मानस प्रकरण करेगा, तेरा मानस विदेह देह का हो जाएगा। इस प्रकार तू देह से, देह की हदें पार करके देहातीत एवं स्थित्यातीत हो जाएगा।

नाम-रूप से परे की स्थिति से अनुभूतिगम्य देह ही यथार्थ होती है। अनुभूति द्वारा सहज जड़ता का अवलोकन सहज समाधि है। इस स्थिति को मात्र 'संहार' की अनुभूति द्वारा ही आभासित किया जा सकता है, जिससे उस अदृश्य परमात्मा, उसकी अदृश्य कलाओं एवं उस दृष्टा आत्मतत्त्व की अनुभूति हो जाएगी। यही 'मोक्ष' स्थिति है, जिसमें देह एवं जगत के होते हुए भी 'मैं' निर्लिप्त हो कर उनका रसास्वादन कर सकता है।

***''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''***

**(12 से 21 फरवरी 2012 )**

# संहार (देहातीत)

## (भाग – 2)

**म**ानव देह के तीन आयाम हैं– निर्माण, पालन एवं संहार। संहार की दो विधाएँ हैं– मृत्यु और मृतक देह का चिताग्नि में दहन होते हुए पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय। इस **'संहार'** का **परिणाम 'संहारित देह'** है। यह देह पंच-महाभूतों की सीमा से परे अनाम, अरूप एवं अदृश्य है और इसका **प्रमाण 'भस्मी'** है। {कृपया विस्तार के लिए **'अनुभूति'** शीर्षक (संहार भाग 1) प्रवचन भी देखें} **'संहारित देह'** वह विरक्त एवं विदेह देह है, जो किसी भी **'नाम-रूप'** की कुण्ठा व गुण्ठा दोनों से परे है, अर्थात् निर्माण, पालन एवं संहार तीनों से परे प्रपंचातीत, देहातीत एवं अदृश्य है।

मानव की स्वाभाविक चेतना (बुद्धि की सोच) अन्य समस्त प्राणियों से अधिकतम है। पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं, कीड़े-मकोड़ों में भी यह स्वाभाविक चेतना किसी में अधिक, किसी में कम होती है। मानवों में यह स्वाभाविक चेतना असाधारण होती है, परन्तु सीमित होती है और स्तर भिन्न-भिन्न होता है। समझ वाला मानव अपनी **'समझ'** से, **'समझ'** को समर्पित कर दे अन्यथा इस समझ में **'समझ के फेर'** भी असंख्य हैं। तू सीमित **'सोच'** से सीमित देह व जगत की सीमाओं में जो सोचता और समझता रहा है, उसका कोई **'अर्थ'** नहीं है। इसी निरर्थक, व्यर्थक और अनर्थक **'सोच'** की सीमित सीमाओं में तू युगों-युगान्तरों से जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित कालचक्र में भटक रहा है और मानव-देह एवं जीवन के लक्ष्य को छू भी नहीं पाता। यह जीवन क्या है? मानव देह और जीवन

पृथक् हैं। मानव देह की जन्म-मृत्यु के छोरों में बंधी अवधि (life) मानव जीवन नहीं है। देह के निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भसम'** से आत्मसात् होने की इच्छा, चेष्टा एवं अनुभूति में किसी जीवन्त मानव देह का सदुपयोग करते हुए क्षण-क्षण व्यतीत की गई समयावधि ही मानव का जीवन है।

मैं अमुक (नाम) हूँ, यह सन्देह व अज्ञान है। यह देहाध्यास युगों-युगान्तरों से अदृश्य रूप से मेरी **'दैवीय चेतना'** को आच्छादित किए हुए है। मानव की स्वाभाविक चेतना से दैवीय चेतना का कोई सम्बन्ध नहीं है। देहाध्यास (मैं अमुक 'नामक' देह हूँ) के बिना देह मेरी है, मेरा नाम अमुक है, इस देहाधिपत्य का क्रियान्वयन सम्भव नहीं है। **'मैं'** जटिल्य (मैं, नाम, रूप सा एवं होना) की अप्रकट स्थिति में **'मेरा-तेरा'** भी नहीं रहता। **'रूप'** (देह) जिसका नाम अमुक है, वह **'मैं'** हूँ, वहाँ **'रूप' 'नाम का'** हो गया। नाम का होने के कारण हर रूप भी **'रूप सा'** हो गया और **रूप से** के साथ नाम-रूप में **तद्रूपता सी** में 'मैं' गुण्ठित होकर चेतना से अवचेतना में आ गया।

तेरा-मेरा की कुण्ठा **'नाम'** से है। रूप की नाम के साथ तद्नामता की स्वीकृति का क्रियान्वयन **'मैं'** शब्द से है। यहाँ सन्देहवश 'मैं' अवचेतना में यह नहीं जानता, कि मेरा नाम अमुक नहीं है और 'मैं' अमुक नामक देह नहीं है। सन्देह से निःसन्देह पुष्ट और अज्ञान के अज्ञान से तुष्ट जीव काम, क्रोध आदि विकारों से ग्रसित रहता है। किसी नाम का अपना कोई **'रूप'** नहीं है और मूलतः **'रूप'** का अपना कोई नाम नहीं है। जिस **'रूप'** का अपना कोई **'नाम'** नहीं है वह **'नाम'** स्वयं में **'अरूप'** है। जब उस **'रूप'** वाले ने एक नाम को उस **'रूप'** में स्वीकार किया, तो **'रूप'** नाम से कुण्ठित हो गया। नाम की यह कुण्ठा चेहरे या रूप से नज़र नहीं आती। शिशु का नाम रखा गया और काफी समय तक अबोधतावश शिशु ने उस नाम को स्वीकार नहीं किया। दैहिक स्वाभाविक चेतना की एक स्थिति में स्वयं को उसने **'नाम'** में स्वीकार किया और

इस स्वीकृति को शब्द 'मैं' ने प्रमाणित किया। 'मैं' जटिल्य के देह अवचेतना में प्रकट होने पर मानव उसी नाम से कुण्ठित हो जाता है, जो नाम देह के जन्म के समय साथ नहीं आया था और एक **'रूप'** का नहीं था। इस प्रकार **'मैं'** शब्द प्रकट होते ही हर मानव **'नाम-रूप'** वाला बन गया, क्योंकि उसका **'मुख'** (रूप या देह) नाम वाला बन गया। जब **'रूप'** एक नाम वाला बन गया, तो कुण्ठित हो गया। समस्त नाम-रूपों का क्रियान्वयन देह अवचेतना में **'मैं'** जटिल्य के प्रकाट्य से है।

मैं देह हूँ, यह अहंकार है। अवचेतना में सन्देह (मैं देह हूँ) इतना हृष्ट, पुष्ट और तुष्ट है, कि मानव को निःसन्देह यह ज्ञान नहीं होता, कि वह सन्देह के कारण पीड़ित है। हर जन्म में कारोबार, व्यापार, उच्चतम डिग्रियों, तथाकथित अपने नाम, देह और देह पर आधारित जगत के लिए अर्थोपार्जन, संचय व संग्रह में आजन्म पीड़ित ही रहता है। वह अपने अज्ञान (मैं देह हूँ) को ही अपना तथाकथित ज्ञान माने रहता है। मानव होते हुए भी **कुण्ठा से कुण्ठित, गुण्ठा से गुण्ठित** तथा **गुण्ठा की घुण्डियों से घुण्ठित** निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थपूर्ण जीवन में जन्म-दर-जन्म भटकता रहता है। किसी जन्म में विशेष कृपावश उसे अपने अज्ञान का ज्ञान होता है। 'मैं देह हूँ' इस सन्देह रूपी अज्ञान के ज्ञान मात्र से सन्देह का उन्मूलन नहीं होता। लेकिन जीव जान जाता है और मान जाता है, कि मेरी हर सोच संशयात्मक है। हर कृत्य-अकृत्य संशयपूर्ण एवं हर पाना-खोना स्वयं में **'संशय'** है। यह 'संशय' की मानसिकता जीव को **संचय** और **संग्रह** की वृत्ति में भटका रही है। अतः यह और-और इकठ्ठा करना चाहता है।

मानव ही आनन्दमय जीवन जीने का अधिकारी है। अपनी देह की **'समय सीमा'** को कोई नहीं जान सकता। प्रत्येक दिन जीवन **में** अन्तिम दिन तो होता ही है, लेकिन कोई भी दिन तेरे जीवन **का** अन्तिम दिन भी हो सकता है। जीवन का वह अन्तिम दिन जीवन में भी अन्तिम दिन होगा। जीवन **'में'** हर रोज़, दिन के विभिन्न पहलुओं, खाने-पीने, सोने- जागने, जाने-आने, विवाह-शादी, करने-करवाने, मरने-जीने, स्वस्थ- अस्वस्थ हर

अवस्था में असंख्य व अगणित चाहतें उत्पन्न होती रहती हैं। कुछ पूरी होती हैं, कुछ नहीं होतीं। जीवन **में** चाहतें कभी समाप्त नहीं होती; लेकिन देह की अवधि समाप्त हो जाती है। वहाँ होश, सोच, तेरे जानने एवं **'समझ'** की सीमा समाप्त हो जाती है। इसलिए तू दैहिक शक्तियों की विलक्षणता और अपनी **'सोच'** की पराकाष्ठा में विचार कर, कि कुल जीवन **से** क्या चाहता है ? देह तेरी नहीं है, तुझसे कभी भी छीन ली जाएगी। तेरी **'सोच'** यह जानने में अक्षम व असमर्थ है, कि तू स्वयं जीवन **से** क्या चाहता है? अतः अपनी सोच की अक्षमता, असमर्थता, अभाव और पंगुता को सहर्ष स्वीकार कर ले।

जिसे हम **'बुद्धि'** जानते और मानते हैं, वह वस्तुतः मानवीय मस्तिष्क के **'सोच'** की शक्ति है। जैसे मानव की अन्य पद, प्रतिष्ठा, डिग्रियों, धनबल, जनबल, परिवार आदि की दैहिक, भौतिक शक्तियाँ हैं और उनकी एक सीमा है। उसी प्रकार मानव-मस्तिष्क की **'सोच'** की **'शक्ति'** है तथा उसकी भी एक सीमा है। प्रत्येक मानव में इन शक्तियों की सीमाएँ पृथक्-पृथक् हैं। इन्हीं में कुछ लोग स्वयं को ज्यादा समझने लगते हैं। अपनी इस **'सोच'** को तुझे **'विचार'** में परिणत करना होगा, क्योंकि तेरी अपनी सीमित **'सोच', विचार** नहीं कर सकती। तेरा जन्म, तेरे माता-पिता, परिवार, देश, काल, जगत की समस्त असंख्य विधाएँ और तेरी अपनी देह भी तुझे तेरी **'सोच'** से नहीं मिली तथा तेरी सोच से नहीं जाएगी। यहाँ जो परिवर्तन, संशोधन, विकास, ह्रास होना होगा, वह तेरी सोच से नहीं होगा। सीमित **'सोच'** से तू अपनी देह, खोने-पाने, करने-करवाने, बनने-बनाने की सीमा को भी नहीं जान सकता। देह अवचेतना में तेरे तथाकथित **'होश'** की सीमा का नाम तेरा जीवन सा है। इसमें तेरी जान्यता और मान्यता दोनों सीमित हैं।

तेरी देह के भीतर हृदय आदि असंख्य अवयव एवं अगणित कार्य प्रणालियाँ पस्पर सुसम्बद्ध एवं व्यवस्थित चल रही हैं, वे तेरी सोच से नहीं चल रहीं। तू जानता है और मानता है। फिर तू किसी देह को पालन करने वाला

कैसे हो सकता है ! जिसकी देह है, वह तुझसे करवाएगा। तू कितना भी भटक ले, होगा वही जो मंजूरे खुदा होगा। अपनी **'सोच'** से तू यह जान ले, कि कुछ भी तेरे हाथ में नहीं है। तेरा अपना **'हाथ'** भी तेरे हाथ में नहीं है। अगले क्षण यह उठ पाएगा या नहीं, तेरे हाथ में नहीं है। तेरी देह के बाहर दिन के विभिन्न पहलुओं, परिस्थितियों, मौसम और देश-काल के विभिन्न रूप, असंख्य क्रियाएँ, प्राप्तियाँ-अप्राप्तियाँ (Availabilities, Non Availabilities) तेरी सोच की सीमा में नहीं हैं। सोच के समर्पण के बाद ही यह विचार होना सम्भव है।

तेरे चारों ओर ब्रह्माण्ड में असंख्य पुराणों का मेला लगा हुआ है। पशु-पक्षी, जलचर, थलचर, नभचर, कीट-पतंगा सब स्वयं में पुराण हैं। तुझे जीवन को सहज और सरल बनाना है। तेरे हर होने का **'हेतु'** परमात्मा है। जो होना होगा, वही होगा। ईश्वरीय कार्यों में उस कार्य से सम्बद्ध सभी लोगों को एक साथ प्रेरणा होती है। तेरे द्वारा जो दैवीय कार्य होंगे, वे तेरी सोच से नहीं होंगे। उनकी तुझे प्रेरणा होगी और तेरे जगत सहित होगी। वे स्वयं तुझसे सम्पर्क करेंगे और वह कार्य मात्र हुआ-हुआ नहीं, तेरे लिए वस्तुतः **हो चुका** होगा। उन लोगों को यश मिलता है, जो उस दैवीय प्रेरणा को अपनी सोच नहीं मानते। जो अपनी सोच मानते हैं, वे कार्य करते-करते **'चुक'** जाते हैं। जिसने सोचा भी नहीं होता, उन्हें यश मिल जाता है। कृपया एकाग्र करिए।

देवाधिदेव महादेव **'काल'** और **'अकाल'**, **'निर्माण'** और **'निर्मित'**, **'पालन'** और **'पालित'**, **'संहार'**, उसके परिणाम **'संहारित देह'** एवं **'संहारित देह'** के प्रमाण **भसम** के स्वामी हैं। सच्चिदानंद की सृष्टि भी स्वयं में सच्चिदानंद है। सद्, चेतन और आनन्द में चेतना और आनन्द **'अदृश्य'** हैं और **'सद्'** दृश्यमान है। यह दृश्यमान **'सद्'** अदृश्य चेतना और अदृश्य आनन्द के अदृश्य समन्वय से प्रकट हुआ है। अदृश्य का **'द्वैत'** (स्रष्टा परमात्मा एवं दृष्टा जीवात्मा) भी अदृश्य है। **'दृश्य'** का प्राकाट्य **'अदृश्य'** से होता है। दृश्यों का नियन्त्रक **'अदृश्य'** है, अतः वह दृश्यातीत एवं देहातीत (निर्माण, पालन एवं संहार से परे) है। कोई भी दृश्य किसी को

कैसा **'लगेगा'** यह **'लगना'** निर्णायक **'दृष्टिकोण'** है। प्रत्येक दृश्य का प्रकाट्य भी अदृश्य से होता है और दृश्य का निर्णायक दृष्टिकोण भी स्वयं में अदृश्य रहता है। वास्तव में **'दृष्टा'** (आत्मतत्त्व) भी स्वयं में अदृश्य ही है और 'मैं' शब्द रूप में उसका मात्र प्रतिनिधित्व प्रकट है।

जब भी 'मैं' ने एक नाम द्वारा कुण्ठित मानव देह को स्वीकार किया, तो होश आने पर **'मैं'** निर्मित था। अर्थात् मेरा निर्माण नहीं हो रहा था। अपना निर्माण होते न **'मैं'** ने देखा, न देख सकता है और न कर सकता है। होश सम्भालने तक कुछ सीमा तक पालन **भी** हो चुका होता है। जब भी **'हूँ', 'मैं'** निर्मित और पालित हूँ और निर्माण और पालन मेरे दृष्टिकोण (Concept) में बसा हुआ है। जो अपनी दृष्टि में निर्मित व पालित है, उसका यह दृष्टिकोण एक जटिल्य (मैं देह हूँ) में देह अवचेतना का प्रकाट्य है, कि निर्माण व पालन हुआ है। 'देह अवचेतना' अप्रकट है और स्वयं में अप्रकट ही रहती है। अप्रकट-अप्रकट देह अवचेतना के प्रकाट्य में सब जानते हैं, कि उनकी अपनी देह का किसी माँ के गर्भ में निर्माण हुआ। अतः प्रत्येक मानव को सन्देह (मैं देह हूँ) रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में भी अपनी देह **'निर्मित'** व **'पालित'** मिलती है। निर्माण और पालन के किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

निर्माण और पालन तेरी होश में नहीं हुआ। जो होश में हुआ, वह पालन नहीं है। किस प्रकार किसी की देह पल रही है, यह अदृश्य है। 'मैं देह हूँ' यह सन्देह तुझे यह सुचवा रहा है, कि तेरा निर्माण और पालन हुआ। इस अज्ञान में निर्माण और पालन तेरी अपनी जान्यता और मान्यता है। इस सन्देह रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में तूने दृश्यमान देह के तीसरे आयाम **'संहार'** को जाने-अनजाने उपेक्षित कर दिया। अपनी मृत्यु तथा मृतक देह का चिताग्नि में जलते हुए पूर्णतः पंच महाभूतों में विलय; संहार के दोनों आयामों पर तू जाने-अनजाने विचार नहीं करना चाहता। जबकि **'संहार'** का शिकंजा निर्माण का बीज पड़ने से पहले से पड़ा रहता है। जो देह निर्मित व पालित है, वह निर्माण व पालन के प्रत्येक स्तर पर संहारित भी है।

इसलिए शास्त्र में **'भस्मी'** के लिए निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'है',** ऐसा कहा गया है।

**'भस्मी'** किसी निर्मित, पालित एवं जिसका भविष्य संहार है, उस देह का प्रमाण नहीं है। निर्माण और पालन का संहार करके संहार भी समाप्त हो जाता है। संहारोपरान्त, देह संहारित हुई, तो भस्मी प्रकट हुई। उस संहारित देह का प्रमाण भस्मी है। तूने अन्य का संहार (मृत्यु) होते देखा होगा। उन्हें चिताग्नि में जलते एवं पूर्णतः **'भस्मी'** बनते हुए भी देखा होगा। शमशान में विभिन्न देहों की पड़ी हुई **'भस्मी'** भी अवश्य देखी होगी। यह **'भस्मी'** एक प्रकट पदार्थ के रूप में तुझे दिखाती है, कि समयावधि पूरा होते ही प्रत्येक मानव देह जो पंच महाभूतों से निर्मित और पंच महाभूतों द्वारा पालित है, मृत्यु के बाद चिता की अग्नि में जलकर धीरे-धीरे पंच महाभूतों में ही विलय होती हुई अदृश्य हो जाती है। **'संहारित देह'** संहारोपरान्त पंच महाभूतों में विलय हो चुकी अदृश्य **'विलयित देह'** है, जिसका प्रमाण भस्मी है। अतः संहारित देह, विलय से भी मुक्त है और **'विलयित'** है। भस्मी दृश्यमान न होती, तो इस अदृश्य व अप्रकट देह का कोई प्रमाण नहीं होता। यह विलयित व संहारित देह, सबकी एक है और यह अदृश्य रूप से सदा अप्रकट रहती है। देह अवचेतना के प्रकाट्य में निर्मित व पालित देह, अन्य देहों सहित दिखाई देती है। निर्माण और पालन तूने देखा नहीं और अपनी देह का संहार भी न तूने कभी किसी जन्म में देखा है, न देख सकता है। **'संहार'** की अप्रकट घुण्डी निर्माण और पालन की तरह तेरे अदृश्य मानस में पड़ी रहती है, इसलिए संहारित देह तेरे लिए अप्रकट-अप्रकट ही रहती है। इसे तेरे अप्रकट-अप्रकट 'मैं' जटिल्य (Complex) ने आच्छादित किया हुआ है।

तेरी संहारित देह अन्ततः संहारित देह थी, संहारित देह है और संहारित देह ही रहेगी। इसलिए तू जीते जी ध्यान-समाधि में इसके भसम रूप प्रमाण से आत्मसात् होकर अपनी **'संहारित देह'** का दर्शन एवं अनुभूति

कर, ताकि तेरा 'मैं' जटिल्य निर्मूल हो सके और तुझे तेरे आत्मस्वरूप की स्मृति आ जाए। अपनी **'संहारित देह'** के अधिग्रहण के लिए तुझे जीते जी ध्यान में, मानस प्रकरण द्वारा संहार के दोनों आयामों (अपनी **'मृत्यु'** और **'भस्मी'**) से गुज़रना होगा। संहारित देह सबकी एक है क्योंकि उसका प्रमाण भस्मी भी एक ही है। ध्यान में इस मानस प्रकरण के पुनः पुनः होने पर जब तू **'भस्मीमय'** होकर सद्गुरु व इष्ट के आगे आर्तनाद करेगा, तो उस अदृश्य संहारित देह का मानस तेरी देह व जगत में प्रकट होगा। देह अवचेतना में तेरी मानसिकता, आनन्दमय मानस में रूपान्तरित होने लगेगी। **'मैं'** जटिल्य (Complex) के अंगों (मैं, नाम, मानव देह, होना) में दिव्य रूपान्तरण होने लगेगा। अन्ततः तू **'दिव्य विदेह देह'** का स्वामी हो जाएगा। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

''अध्यात्म'' देह के लिए, देह के द्वारा, देह का देहातीत (अदृश्य) विज्ञान है, जो भारत भूमि की ही धरोहर है। देह **के** देहातीत अदृश्य क्षेत्र का ज्ञान-विज्ञान ही दृश्यमान देह व देह सहित समस्त जगत का नियन्त्रक, संचालक, निर्देशक, सम्पादक, संशोधक, परिवर्द्धक एवं संवाहक है। अध्यात्म एवं आत्मज्ञान दैहिक स्वाभाविक चेतना की **'समझ'** का विषय नहीं है। फिर भी ऋषि-मनीषि इस विषय का प्रवचन-श्रवण करते हैं और करते रहेंगे। श्रवण के समय जो आनन्दानुभूति होती है, वह अन्य **'बेसमझ'** समझों और समझों की प्रक्रिया के तितर-बितर होने से होती है। ये अर्थहीन समझें 'मैं देह हूँ' सन्देह में स्वभाववश चलती रहती हैं और हृदय के आनन्द का आच्छादन करती रहती हैं। इनका सामूहिक प्रभाव मन में एक सूक्ष्म अथवा वृहद् तनाव उत्पन्न कर देता है। ये निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थकारी समझें स्वभाव पर भी प्रभाव डालती हैं। आध्यात्मिक विषयों की समझ इस प्रकार की समझों को रोक देती हैं। अतः **'समझ'** (बुद्धि) से हर **'समझ'** (सोच) कुछ देर के लिए रुक जाती है। इस प्रकार देह द्वारा **'देहातीत'** की कुछ-कुछ **'समझ'** आने लगती है। यह **'समझ'** बहुत शक्तिशाली, रहस्यमयी एवं चमत्कारिक है। कुछ देर के लिए मन का आनन्द

अनाच्छादित हो जाता है और आनन्दानुभूति से ओत-प्रोत एवं आविर्भूत कर देता है। इसी की सामूहिक आनन्दानुभूति बार-बार प्रवचन- श्रवण की ओर प्रेरित करती है।

देहातीत **'समझ'** से दैहिक समझों का रुकना ही सद्‌गुरु द्वारा डाली गई रुकावट (Interruption) है। सद्‌गुरु का चरणामृत, दृष्टिपात्, स्पर्श और अन्यथा कुछ भी दैहिक समझों के सामूहिक प्रभाव को रोकने में समर्थ है। दैहिक **'समझों'** का सामूहिक प्रभाव मनोरंजन के विभिन्न साधनों (फिल्म, नृत्य, गायन आदि) द्वारा भी रुकता (Intrrupt) है। इस तथाकथित मन के रंजन में हुई रुकावट (Interruption) से कालान्तर में जीवन दूभर हो सकता है। लेकिन सद्‌गुरु के **'सद्'** निर्देशन में प्रवचन, श्रवण, यज्ञ, हवन, तीर्थ-यात्रा, जप-तप आदि द्वारा डाली गई रुकावट भाग्य को सौभाग्य ही बनाती है। सद्‌गुरु की कृपा चाहे तो हवा का रुख भी बदल सकती है। भाग्य अथवा प्रारब्ध के भोग के भगाने पर ही सौभाग्य की अनुभूति होती है। उसके द्वारा डाली गई इस रुकावट के बाद जीवन का वह चलचित्र नहीं चलता, जो प्रारब्ध के अंकन (Recording) के अन्तर्गत अंकित (Recorded) होता है। यदि चलता भी है, तो जो कुछ होगा, वह दैवीय ही होगा। अन्यथा **'नित नूतन'** दैवीय अंकन सम्मुख आता है। सद्‌गुरु द्वारा डाली गई रुकावट के बाद प्रत्येक समझ का दिव्य रूपान्तरण हो जाता है। पुरुषार्थ-परक कर्म सद्‌गुरु के सद् निर्देशन में, उसके यत्न से ही सुफलीभूत एवं फलीभूत होते हैं। सद्‌गुरु के श्रीमुख से निकला एक-एक शब्द ही नहीं, उसकी गपशप एवं चुटकी भी रूह पर चोट करती हुई जिज्ञासु को झिंझोड़ देती है।

मुझे देह रूप में अपने देहातीत क्षेत्र की कुछ तो उपयोगिता होनी चाहिए, मैं मानव-देह धारी हूँ। मैं हूँ और मानव हूँ तो क्यों हूँ? यह मानवीय बुद्धि से उठा प्रश्न नहीं, रूह और आत्मा की गहराइयों से उठी जिज्ञासा है, जिसके तीव्रतम होते ही दैवीय अधिनियमानुसार सद्‌गुरु प्रकट हो जाता है। यह बेचैनी मुराद है। धन्य हैं वे लोग जिन्हें यह बात बेचैन कर देती है, कि मैं कौन हूँ और क्यों हूँ? मेरे मानव होने का अर्थ क्या है? यह अर्थ की तलाश

या खोज जब तथाकथित मेरे सब कुछ को निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ घोषित कर देती है तो उसमें से मानव-जीवन की सार्थकता का अंकुर पल्लवित होता है। किसी जन्म में इष्ट व सद्गुरु की कृपा से ज्ञान हो जाता है, कि निःसन्देह 'मैं देह हूँ' (सन्देह) के अज्ञानवश **'मैं'** (जीव) भटक रहा है। इस प्रकार तो उसकी पीड़ाओं का अन्त कभी किसी जन्म में भी नहीं हो सकता, क्योंकि समस्त पीड़ाएँ उसकी अपनी ही देह की हदों में सीमित हैं। अपनी देह व जगत से सम्बन्धित पीड़ाओं की अनुभूति बहुत अच्छा चिन्ह एवं **'पीड़ाए मुराद'** है। पीड़ा की अनुभूति में ही आर्तनाद होगी। ***'दर्द का हद से गुज़र जाना 'है' 'दवा' हो जाना।'***

जो अपना होते देखा नहीं और न देख सकता हूँ उस **'जन्म'** को 'मैं' मानता हूँ और मनाता हूँ। अपनी जो **'मृत्यु'** देखनी नहीं है, उससे भयभीत हूँ। **'जन्मदिन'** मनाता हूँ, **'मरण दिन'** से भयभीत हूँ। यह मूर्खता प्रतिक्षण मेरा दंशन कर रही है। जीवन में प्रत्येक कार्य आगे भविष्य देख कर करता हूँ लेकिन उस भविष्य से डरता हूँ, जो मैंने देखना नहीं है। देह का सद् जानने के इच्छुक, आर्तनाद करते जिज्ञासु के लिए **'समर्थ सद्गुरु'** यथार्थ एवं स्वयं में विदेह, देह धारण करके प्रकट हो जाता है। अपार व अथाह, अनादि व अनन्त तथाकथित भवसागर रूपी जल में डूबने से आशंकित व भयभीत (Apprehensive) उस जिज्ञासु को सद्गुरु अपनी शरण में ले लेता है। वह स्वयं **'हद' और 'हद की हद' का उल्लंघन कर-करवा के उसकी पीड़ा को** शान्त करता है।

एक मानव-देह स्वयं में असंख्य देहों का पुंज है। युगों-युगान्तरों में कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की समस्त निराकार एवं साकार सृष्टि का संघनित स्वरूप, प्रतिनिधि एवं आधार है। एक मानव देह की प्रत्येक स्थिति, अवस्था, समय एवं स्थान के साथ स्वतः तद्नुसार जगत होता है। यह जगत दो प्रकार का होता है—पहला प्रकट-प्रकट जगत, जो बाहर दृश्यमान होता है और दूसरा, अप्रकट-प्रकट जगत, जो बाहर नहीं, भीतर दिखाई देता है। उसमें मैं प्रकट एवं अप्रकट रूप से अवचेतना में विचरता हूँ। भिन्न-भिन्न

देहों का प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट जगत भी पृथक्-पृथक् होता है। इस प्रकार असंख्य अगणित भिन्नताओं में हम सबका जीवन चलता है। भिन्न-भिन्न देहें हर प्रकार से भिन्नता लिए होती हैं, तभी तो भिन्न होती हैं। यदि भिन्नता न होती, तो हम परस्पर भिन्न न होते। नाम-रूप में 'रूप से' (देह) के साथ तद्रूपता सी में होश सम्भालते ही **'मैं'** इस भेद एवं अलगाव को बढ़ाने तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने में अपनी कर्मठता और सार्थकता समझने और मानने लगा। मेरे दुःखों, तनावों, विक्षेप, भय एवं चिन्ताओं का कारण यह वैभिन्य नहीं, अपितु इस भिन्नता को बढ़ाने की वृत्ति है।

देह व देहों में इन समस्त भिन्नताओं के होते हुए भी दो तत्वों **'मैं'** और **'भस्मी'** में कोई भिन्नता, स्पर्धा और ईर्ष्या-द्वेष नहीं है। **'मैं'** और **'भस्मी'** देह का वह देहातीत क्षेत्र है, जहाँ से मेरी एक देह का देहों सहित संचालन, संशोधन, पुनर्निर्माण, संवर्धन, विकास, ह्रास और सब कुछ होता है। एक मानव-देह का देहातीत उस देह सहित सम्पूर्ण महाब्रह्माण्डों का नियन्त्रक है। देहातीत सबका एक ही है। भिन्न-भिन्न देहों का **सद्** एक ही है। **'सद्'** सत्य व असत्य से परे देहातीत है। चेतन और आनन्द का संगम स्वयं सच्चिदानन्द ईश्वर है। देहें तो जलचर, नभचर एवं थलचर पशु-पक्षियों की भी हैं, लेकिन वे **'मैं'** नहीं लगाते। विभिन्न मानव-देहों की **'मैं'** और **'भस्मी'** एक है तथा संहारित देह भी एक है। देहातीत, देह के बाद अथवा देह का अतीत नहीं, बल्कि देह के होते हुए देह से परे का क्षेत्र है।

**'मैं'** शब्द का प्रकाट्य अवचेतना में देह का जगत सहित क्रियान्वयन (Activating Factor) है। जब तक देह **'मैं'** लगाने की स्थिति में नहीं होती, देह जगत सहित नहीं होती। देह द्वारा की-करवाई अथवा हो रही किसी भी क्रिया का उद्घोष **'मैं'** लगाने से होता है। एक ही मानव देह अलग-अलग समय, स्थान, अवस्था और स्थिति में भिन्न-भिन्न होती है, क्योंकि पल-पल सतत् परिवर्तनशीलता प्रत्येक मानव-देह का अपरिवर्तनीय **'सद्'** है। एक देह की प्रत्येक स्थान, स्थिति एवं समय की भिन्नता में और समय-समय पर

उसके साथ प्रकट-प्रकट या अप्रकट- प्रकट भिन्न-भिन्न देहों की विभिन्नताओं में एक ही **'मैं'** लगती है। उस **'मैं'** में कोई भिन्नता नहीं है। जिस **'मैं'** के लिए कोई भिन्नता नहीं है, वही **'मैं'** देह अवचेतना में प्रकट होकर विभिन्न भिन्न-भिन्न देहों की भिन्नता का उद्‌घोष करती है।

जन्म के बाद होश सम्भालने से लेकर मृत्यु तक हमारी भिन्नताएँ बढ़ती गईं और हम बढ़ाते गए। इसे हम स्पर्धा (Competition) और जीवन में तथाकथित विकास कहते हैं। इसलिए **'मैं'** साथ लगाते ही देह रूप में **'मैं'** भिन्न हो गया। दूसरा देहातीत तत्त्व **'भस्मी'** है जो अक्रियाशील तत्त्वातीत तत्त्व (Inactivating Factor) है और भिन्न-भिन्न देहों का एक ही है। इस देहातीत पदार्थ ने प्रकट होते ही सब भिन्नताएँ समाप्त कर दी। सबकी **'मैं'** एक है, जिस क्रियान्वयन (Activation) तत्त्व के देह के साथ लगते ही भिन्नताएँ प्रकट हो जाती हैं, उन्हीं समस्त देहों की **'भस्मी' एक ही** है। दोनों देहातीत तत्त्वों के मध्य में मानव-देह है। कोई भी जीवित व्यक्ति **'मैं'** तो लगाएगा ही और उसकी **'भस्मी'** भी बनेगी ही। **'मैं'** और **'भस्मी'** दोनों देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत, मायातीत और देहातीत हैं। तेरी संहारित देह भी ऐसी ही है।

तेरी देह का देहातीत है। सीमाएँ तेरी देह की हैं, देहातीत स्वयं में असीम है। क्योंकि देहातीत मात्र तेरी देह का ही नहीं सबका एक ही है। तेरी **'मैं'** जो सबकी है और तेरी **'भस्मी'** जो सबकी है दोनों को देह द्वारा, देह से जीवन-काल में मिला दे। ध्यान में मानस प्रकरण द्वारा 'मैं भस्मी हूँ' की अनुभूति से तेरी अदृश्य संहारित देह तेरे लिए प्रकट हो कर तेरे **'मैं'** जटिल्य को निर्मूल कर देगी। मानव-देह में तेरा मात्र एक यही कर्म है, जो मात्र करम (कृपा) साध्य है। इस प्रकार ध्यान करते-करते अपने- अपने प्रकृतिगत गुणों से युक्त देह का देहातीत शब्द **'मैं'** और तेरी संहारित देह का प्रमाण देहातीत **'भस्मी'** परस्पर मिलने के बाद भी अपना-अपना स्वभाव नहीं छोड़ेंगे। देह व जगत के क्रियान्वयन की प्रतीक **'मैं'** क्रिया शमन की द्योतक **'भस्मी'** को विरक्ति रूप में इस प्रकार क्रियान्वित कर देगी, कि तू

सब कुछ करता हुआ भी, स्वयं में अकर्ता रहेगा। तुझे चारों ओर एक ही **'मैं'** नज़र आएगी। तुझे तेरे शाश्वत् अमरत्व एवं शिवत्व पद की अनुभूति यह तेरी तथाकथित क्षण-भंगुर एवं नश्वर देह ही कराएगी। तुझे भिन्नताओं में अनुभूति होगी, कि मैं खुद ही गरीब बन कर अमीर बन रहा हूँ। मैं खुद को ही पीछे छोड़ कर तथाकथित आगे बढ़ रहा हूँ। मैं खुद ही शासित होकर शासक बन रहा हूँ।

जिसकी **'मैं'** जितनी विस्तृत है, उतना ही वह माया के प्रपंच को विस्तृत और अधीन कर सकता है। यहाँ तक कि प्रकृति और मौसम भी तद्नुसार अपनी छटा विकीर्ण करते हैं। मौसम, वस्तुतः **'मो+सम'** है, जो नित्य नए परिधानों द्वारा तेरे मनोरंजन के लिए है। तेरी अग्निमुक्त भस्मी **'मैं'** के साथ मिलकर अग्नियुक्त होती हुई तेरी देह में छिपे वैराग सहित समस्त विभूतियों को प्रकट कर देगी। इस प्रकार तेरे स्व एवं सर्व की **'मैं'** एक होकर विभिन्न भिन्नताओं में भी एकता देखने लगेगी।

ईश्वर प्रदत्त अपने आनन्दमय व चेतनामय सद् दिव्य जीवन की प्रत्येक स्थिति, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा अन्यथा असंख्य दैहिक, भौतिक दृष्टियों से भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के प्रत्येक क्षण-क्षण क्षरित होते अगणित क्षणों का रसास्वादन करते हुए जीना है, तो मानव को एक ही महासूत्र हृदयंगम करना होगा, कि ***'वीरेन भोग्या वसुन्धरा'।*** पृथ्वी का भोग **'वीर'** ही करता है। वीर का अर्थ है **'विरक्त'।**

***''चाह गई, चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह,***
***जिसको 'कुछ नहीं' चाहिए वह शाहों का शाह।''***

वीर वह है, जिसे जीते जी अपना **'कुछ नहीं'** (विरक्ति) किसी भी कीमत पर चाहिए। दैहिक व बौद्धिक ईश्वर प्रदत्त **स्वाभाविक चेतना** और इसके बल पर अर्जित देह व जगत का सब कुछ कितना भी विस्तृत हो जाए, अन्ततः 'सीमित' ही रहता है। **'निर्मित'** व **'पालित'** देह दृश्यमान है और **'संहारित देह'** वह अदृश्य देह है, जो संहारोपरान्त (मृत्योपरान्त) चिता

की अग्नि में जल कर पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय हो चुकी है। यह **'सद्'** समझ की बात नहीं है। अतः समझ-समझ कर अपनी समझ को सद्गुरु के श्री चरणों में समर्पित कर दे। तुझे देह **'संहारित'** इसलिए नहीं लगती, क्योंकि तेरी यह गर्भित जन्म-मृत्यु की हद तक सीमित (Conceptual), निर्मित व पालित देह तेरी वास्तविक **देह** नहीं है। यह यथार्थ नहीं, अन्यार्थ है। तेरी यथार्थ देह, देहातीत संहारित देह है। सद्गुरु कृपा हो जाए, तो समर्थ सद्गुरु भस्मी के प्रमाण द्वारा जीते जी तुझे संहार की झलक (Clipping) भी दिखा देगा। तुझे अपनी **'संहारित'** देह की झलक मिल जाएगी और तू निर्माण, पालन और संहार तीनों से परे संहारातीत होकर महाकाल के सीधे निर्देशन में देहातीत हो जाएगा। तभी तू मानव जीवन का रसास्वादन करेगा। पंच-महाभूतों की उस देह में वह योगी जिसने तत्त्वातीत तत्त्व (भस्मी) का अधिग्रहण किया है वह तत्त्वज्ञ महापुरुष विभूत्यातीत विभूति वैराग से युक्त हो समस्त विभूतियों से विभूषित होता है। योगी महापुरुष ध्यान में अपनी **'संहारित देह'** को अप्रकट-प्रकट करके उसके दर्शन से ओत-प्रोत एवं आविर्भूत रहते हुए अपने देहातीत दिव्य जीवन के प्रत्येक अक्षुण्ण क्षण का रसास्वादन करते हैं।

***''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''***

**(27 अगस्त 2009 एवं 20 मार्च से 30 मार्च 2012)**

# संहार (सर्वरूप)

## (भाग – 3 )

**पा**रब्रह्म परमेश्वर स्वयं में अदृश्य है और क्रीड़ा के लिए परमात्मा एवं जीवात्मा दो अदृश्य विधाओं में **'विभक्त'** होता है। ईश्वर सद्, चेतन व आनन्द तीनों का अविरल एवं अकाट्य संगम है। चेतना एवं आनन्द अदृश्य हैं। **'चेतना'** एवं **'आनन्द'** के अदृश्य समन्वय का बाह्य प्रकाट्य सम्पूर्ण दृश्यमान जगत है। यह जगत स्वयं में **'सद्'** है। इसकी दो विधाएँ हैं—**'सब कुछ है'** और **'है कुछ नहीं'**। **'सब कुछ है'** में **'चेतना'** का वर्चस्व है और **'है कुछ नहीं'** का स्वामी **'आनन्द'** है। चेतना (सब कुछ है) और आनन्द (है कुछ नहीं) से ओत-प्रोत एवं इनके अदृश्य समन्वय से प्रकट सृष्टि **'निर्माण'** **'पालन'** और **'संहार'** तीन विधाओं में दृश्यमान होती है। चेतनामय **'सब कुछ है'** का आभास व प्रतिभास **'निर्माण'** और **'पालन'** में दृश्यमान है। आनन्द **'अभावमय'** है, अतः **'है कुछ नहीं'** की अनुभूति **'संहार'** में अन्तर्हित है।

किसी भी तमाशे, जादू अथवा खेल को देखने के लिए स्थिर होकर बैठना होता है और टिकट भी होनी चाहिए। पंच-महाभूतों से बनी इस संसार रूपी नाट्यशाला के नित नूतन दृश्यों को खेल, प्रपंच, जादू अथवा तमाशे के रूप में देखने के लिए हमारे पास अपनी टिकट अथवा **'भस्मी'** रूपी पहचान होनी आवश्यक है, अन्यथा जीव खुद तमाशा बना रहता है। सर्वप्रथम खेल देखने से पहले पता होना चाहिए, कि मैं जो देख रहा हूँ वह खेल है। इसके लिए देह द्वारा देह की हदें पार करते हुए अपने शव और शव के दहन का

जीते जी ध्यान करना होगा। देह ही अपनी हदें पार करवा कर पुनः देह में ले आएगी। तू देह द्वारा जान जाएगा, मान जाएगा और अनुभूति कर लेगा, कि तू देह नहीं है, तभी संसार के प्रपंच को खेल रूप में देखते हुए रसास्वादन कर पाएगा। **'भस्मावस्था'** देह का ऐसा कोष्ठ (क्षेत्र) है, जो देह की हदों से बाहर देहातीत है, क्योंकि वहाँ देह अपना नाम व रूप खोकर अदृश्य हो जाती है।

सम्पूर्ण जीवन का चलचित्र पहले से बना-बनाया (Recorded) है। जीवन रूपी चलचित्र में मेरी देह की प्रस्तुति तब शुरू होती है, जब मेरा अदृश्य व अप्रकट 'मैं' जटिल्य (Complex) प्रकट होता है। तभी एक मानव-देह की अवचेतना में मुझे मेरे होने का आभास होता है। **'मैं'** शब्द आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि है, स्वयं में आत्मतत्त्व नहीं है। तथाकथित मेरी देह की गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, और मृतकावस्था के दौरान **'मैं'** जटिल्य (Complex) लुप्त हो जाता है और भस्मावस्था में विलुप्त हो जाता है। जब यह शब्द **'मैं'** अप्रकट होता है, तो वह अवस्था मेरी जड़ता है। एक मानव-देह (रूप) जो नाम से कुण्ठित थी, जब **'मैं'** ने जीव भाव की अवचेतना में उस देह से स्वयं को पहचाना, कि 'मैं अमुक-अमुक हूँ,' तब मेरे लिए जीवन रूपी चलचित्र की प्रस्तुति शुरू हुई। इस अवचेतना में चेतना का स्तर तब बढ़ता है, जब मानव को यह बोध होता है, कि जब मैं अपनी देह को नाम-रूप में पहचानता हूँ, तो जो जगत मेरे साथ होता है, वह मुझ से भिन्न नहीं है। जगत भी विभिन्न रूपों में मेरा **'रूप'** है। इसे ही **'सर्वरूप'** कहते हैं। मेरा **'रूप'** (देह रूप में एक) और **'सर्वरूप'** (उस एक देह सहित अनेक) दृश्यमान है। इसका अदृश्य आयाम मेरा **'स्वरूप'** है। अर्थात् मेरा स्वत्व (Self या आत्मतत्त्व) अदृश्य है। **'रूप'** और **'सर्वरूप'** के पीछे जो मेरा **'सर्वरूप स्वरूप'** (Self) है, वही **'रूप'** सहित **'सर्वरूप'** में प्रकट होता है। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

**'ईश्वरत्व'** स्रष्टा है, **'आत्मतत्त्व'** दृष्टा है। अवचेतना में दृश्यमान, सर्वरूपों में मेरा एक **'रूप'** भी है। **'मैं'** एक **'रूप'** हूँ, तो अनेक भी **'मैं'** हूँ।

यह मेरा **'सर्वरूप'** है। **'मैं'** स्वयं वास्तव में **'रूप'** एवं **'सर्वरूप'** से परे हूँ। अर्थात् न **'मैं'** एक रूप हूँ, न अनेक हूँ, यह मेरा अदृश्य **'स्वरूप'** है। एक ही समय में विभिन्न रूपों में विचरण करता हुआ विरूप, स्वयं **'विरूपाक्ष'** (शिव) है। **'अरूप'** वह है, जो किसी **'रूप'** में होते हुए भी अदृश्य रह सके। अर्थात् जो रूप धारण करके सबके लिए अदृश्य रहते हुए स्वयं सबको देख सके, उसे **'अरूप'** कहते हैं। मेरा **'स्वरूप'** जो स्वयं में अदृश्य है, वह रूप, सर्वरूप, अरूप, विरूप सभी को स्वयं में समेटे हुए है। विभिन्न रूपों में एक साथ विचरण करना विरूपता है और **'रूप से'** के साथ **'तदरूप सी'** संदेह है।

जब **'देह-अवचेतना'** प्रकट होती है, तो **'तेरे होने'** में उस समय की तेरी देह व जगत वर्तमान, भूत, भविष्य सहित प्रकट होता है। **'तेरा होना'** अर्थात् जगत सहित तेरी देह का होना; अतः तुझ सहित जो जगत है, था और होगा, वह तेरे होने से, अवचेतना में **है।** अवचेतना में देह के लिए तथाकथित तेरी देह के 'नाम' की कुण्ठा के साथ **'मैं देह हूँ'** की गुण्ठा भी है। **'कुण्ठा और गुण्ठा'** दोनों **'नाम रोग'** के परिणाम हैं। सम्पूर्ण जीवनकाल में **'नाम'** एक ही होने के कारण तू अपने हर **'रूप'** के लिए कहता है, कि यह मैं हूँ। भविष्य का तेरा कोई **'रूप'** तेरी अपनी कल्पना है, लेकिन तुझे यह मालूम है, कि **'नाम'** वही होगा। तेरा कोई सुनिश्चित रूप नहीं है। विभिन्न परिस्थितियों, स्थानों, देश-काल, दैहिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों एवं अवस्थाओं में तेरा रूप भिन्न-भिन्न होता है। इसलिए नाम से कुण्ठित रूप **'रूप सा'** है और एक अतिरिक्त एवं ऊपरी **'नाम का'** है। तेरी हर प्राप्ति-अप्राप्ति, दुःख-सुख, सम्बन्ध, डिग्रियाँ, पद-प्रतिष्ठा, धन-सम्पदा, प्रौपर्टी, लेना-देना एक अतिरिक्त **'नाम का'** होने के कारण जगत व्यवहार में तू नितान्त अव्यावहारिक हो गया। तू इस काल्पनिक **'गा'** (भविष्य) **'था'** (भूत) में उलझा हुआ **संहार'** विधा को भूल गया। अपने निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य (मृत्यु व मृतकावस्था और अपनी देह की भस्मावस्था) को तूने जानते-बूझते हुए भी उपेक्षित कर दिया।

तेरी देह, जगत सहित नित नूतन है। लेकिन नाम की जकड़न के

कारण तेरा नित नूतन का दृष्टिकोण पनपता ही नहीं। **'मैं'** देह हूँ, यह तेरा स्वभाव बन चुका है। इसलिए अनेक विकृतियाँ तुझे जन्म-दर-जन्म घेरे रहती हैं। व्यक्ति की पहचान (I.D.) का सूत्रधार **'रूप'** जो एक नाम द्वारा कुण्ठित **'रूप सा'** है, उससे तद्रूपता **'सी'** में गुण्ठित होकर शब्द **'मैं'** एक जटिल्य (Complex) बन चुका है। मूलतः **'रूप' की** नाम **से** कुण्ठा और कुण्ठित रूप से **'मैं' की** गुण्ठा और कुण्ठा दोनों अप्रकट रहती हैं। **'मैं'** जटिल्य के अंगों में **'नाम', 'रूप सा'** और उस **'रूप से'** में तेरा **'होना'** तीन अंगों का प्रमाण एवं पूर्ण जटिल्य का कार्यान्वयन **'मैं'** शब्द के अवचेतना में प्रकट होने पर ही होता है। स्वयं में इस जटिल्य ('मैं', नाम, रूप सा, और होना) की ग्रन्थि अप्रकट है। चारों अंगों सहित इस अप्रकट जटिल्य का प्रकाट्य अवचेतना में ही होता है। अतः **'मैं'** क्यों हूँ' और **'मैं'** कौन हूँ? इस जिज्ञासा का प्रकाट्य भी **'अवचेतना में'** ही होता है। **'जड़ता में'** तेरे लिए देह सहित जगत नहीं होता और देह सहित जगत **'रहित'** अपने होने का ज्ञान भी नहीं होता। **'चेतना में'** तू देह एवं जगत नहीं होता, लेकिन तू होता है। यह तेरी समाधि स्थिति है। साधारण समाधि में देह व जगत भी होता है लेकिन तू देह नहीं, देह व जगत का दृष्टा होता है और देह व जगत से तुझे कुछ लेना-देना नहीं होता। भाव समाधि, जाप समाधि, कर्म समाधि, ज्ञान समाधि आदि 21 समाधियों में सर्वोपरि कैवल्य पद अथवा **'तुरिया समाधि'** है, जिसमें तुझे देह व जगत रहित स्वरूप में अपने **'होने'** का अति सूक्ष्म व आनन्दमय आभास मात्र होता है। यहाँ तेरा दृष्टा स्वरूप जाग्रत हो जाता है।

स्वभाव, मूलतः अप्रकट होता है और अक्सर अप्रकट ही रहता है। जैसे कोई व्यक्ति अति क्रोधी अथवा लोभी स्वभाव का है, व्यक्ति को देखने से उसके स्वभाव का ज्ञान नहीं होता। इस अप्रकट स्वभाव का प्रकाट्य क्रोध अथवा लोभ की स्थिति बनने पर होता है। प्रकट होने पर भी इसका मूलोच्छेदन नहीं होता, बल्कि अप्रकट में ज्यूं का त्यूं बना रहता है। इसी प्रकार **'मैं'** अमुक (नाम) अमुक (रूप) व्यक्ति हूँ, यह हर व्यक्ति का स्वभाव

बन जाता है। तू देह नहीं है, यदि देह है, तो कौन सी देह है? बचपन से आज तक कितने रूप बदले, तू हरेक के साथ **'नाम'** एक होने के कारण **'मैं'** लगाता है। पिछला रूप अब नहीं रहा, ऐसे ही आगे बदल जाएगा, तो **तेरा अपना रूप क्या है? 'नाम'** एक रहना जगत व्यवहार के लिए आवश्यक है, अतः एक नाम से बँधे हुए भिन्न-भिन्न रूपों वाले जीव! वस्तुतः तेरा रूप **'नित नूतन'** था, लेकिन उस **'रूप से'** के साथ तू नाम-रूप में **'तद्‌रूप सा'** हो गया। इसलिए तेरा प्रत्येक **'रूप' 'नाम का'** है। **यदि तेरा मूल 'रूप' होता वह 'नाम' का नहीं, बल्कि 'नाम' उसका होता। 'रूप'** के संहार के साथ **'मैं'** जटिल्य और **'नाम'** का संहार नहीं होता। वही **'मैं'** (जटिल्य) पुनः एक **'रूप'** की रचना करता है। उस **'रूप'** का फिर कोई नाम रखा जाता है और देह की स्वाभाविक चेतना के एक स्तर पर **'मैं'** द्वारा **'रूप'** की नाम से कुण्ठा की स्वीकृति होने पर वही अप्रकट-अप्रकट **'जटिल्य'** पुनः प्रकट हो जाता है। **'मैं'** जटिल्य कल्पों-कल्पान्तरों से चल रहा है और चलता रहेगा तथा अप्रकट में ज्यूं का त्यूं बना रहेगा। निद्रा में अप्रकट-अप्रकट हो जाता है और तेरे उठने में अप्रकट-प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार गर्भावस्था, शैशवावस्था, मृतकावस्था में अप्रकट-अप्रकट रहता है और भस्मावस्था में विलुप्त हो जाता है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था में तुझे देह व जगत का आभास नहीं होता और न ही यह आभास होता है, कि तुझे देह व जगत का आभास नहीं है। इन जड़ अवस्थाओं में तेरा **'मैं'** जटिल्य चारों अंगों सहित अपनी स्वाभाविक अप्रकट स्थिति में रहता है।

**'मैं'** शब्द के प्रकाट्‌य से उसकी देह एक नाम से कुण्ठित **'रूप सा'** सहित जगत का होना प्रमाणित होता है। शब्द **'मैं'** के प्रकाट्‌य की अनिवार्यता है, कि जिस मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेता है, उसकी प्रत्येक अवस्था, स्थान, समय, स्थिति एवं प्रत्येक परिवर्तित रूप एक अभिन्न **'नाम'** को स्वीकार करके कुण्ठित हो। इस स्वीकृति का कार्यान्वयन तभी होगा, जब शब्द **'मैं'** प्रकट होगा। यद्यपि आत्मा का अपना कोई **'रूप'** नहीं

है फिर भी एक ही नाम के **'रूप से'** के साथ, **'मैं'** अवचेतना में तद्रूप **सा** हो गया। अतः **'मैं'** आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि न रहकर उस नाम के **'रूप से'** का प्रतिनिधित्व करने लगा। देह सहित जगत में विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियाँ-परिस्थितियाँ और सब कुछ एक ही **'मैं'** जटिल्य द्वारा क्रियान्वित होने के कारण प्रेम-घृणा, लगाव-अलगाव, जाति-कुजाति, धर्म-अधर्म, सम्प्रदाय, सम्बन्ध, राग-द्वेष, स्पर्धा-प्रतिस्पर्धा, होड़-जोड़-तोड़, वैर-वैमनस्य आदि सक्रिय हो गए। दृष्टा अदृश्य है, अपरिवर्तनीय है, स्थिर है। **'मैं देह हूँ'** भ्रम से भ्रमित हो कर **'तूने'** अपनी पहचान गलत दे दी है। तू अब **'संहार'** का सहारा ले। जीवन में सब कुछ हुआ-हुआया होता है। **'संहार'** जीवन का श्रंगार है। जो पहले था नहीं, अन्ततः रहता नहीं और जो हर पल बदल रहा है, इस प्रपंच से शीघ्रातिशीघ्र तू अपना **'अव्यय'** शाश्वत् स्वरूप पा ले।

**'संहार'** को जीते जी आत्मसात् करना ही मानव-देह एवं जीवन का लक्ष्य है। कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओं, सामूहिक दुर्घटना, युद्ध आदि की स्थितियों में और अन्यथा किसी भी कारणवश भयंकर **'नर संहार'** हो जाता है। **'संहार'** निर्मित-पालित देह का होता है। पंच-महाभूतों से जिसका निर्माण हो चुका, वह निर्मित है। पंच-महाभूतों द्वारा पालन हो चुका है तथा हो रहा है, वह पालित है। जो, जब, जहाँ, जैसा भी बालक, युवा, अतियुवा, प्रौढ़, वृद्ध, अतिवृद्ध है, उसका संहार (मृत्यु) सुनिश्चित है। प्रत्येक धर्म का मानव जानता है और तहे दिल से मानता भी है, कि मृत्यु किसी भी दैहिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, मानसिक अवस्था, समय, स्थान व स्थिति में हो सकती है। मृत्यु और मृतक देह का पंच-महाभूतों में विलय **'संहार'** के दो आयाम हैं। जब तक किसी मानव की मृतक काया अथवा **'शव'** रहता है, तब तक वह पंच-महाभूतों की सीमा में रहता है। पृथक्-पृथक् धर्मों में किसी भी साकार मानव देह का यह अन्तिम संस्कार पृथक्-पृथक् पद्धति से होता है। पूर्ण संहार और संहार पूर्ण तब होता है, जब पंच महाभूतों में निर्मित और पालित मृतक काया चिताग्नि में दहन होकर अग्नि सहित पंच-महाभूतों में ही

पूर्णतः विलय हो जाती है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि की प्रतिनिधि मानव-देह की निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ हैं। जब भी मैंने स्वयं को देह के साथ पाया, तो यह **'निर्मित'** थी। अर्थात् पूर्णतः इसका निर्माण हो चुका था। मैंने निर्मित **देह को, देह से** पहचाना। किसी ने अपनी देह का निर्माण न देखा है, न देख सकता है और न कर-करवा सकता है। यह देह निर्मित के साथ-साथ पालित भी है। निर्माण के प्रत्येक सोपान पर पालन आवश्यक है, अन्यथा निर्माण सम्भव नहीं है। हर स्थिति और अवस्था में पालन से पुख्ता होकर ही निर्माण आगे हो पाता है। अतः निर्माण-पालन संग-संग चलते हैं। पालन में **'पाचन'** शब्द छिपा है। देह का पालन न किसी ने देखा है, न देख सकता है और न कर सकता है। जो देह निर्मित और पालित है, वह निर्माण और पालन के प्रत्येक स्तर पर संहारित **भी** है। संहारित वह है, जिसका पूर्णतः संहार हो चुका है। वहाँ निर्माण और पालन का कोई चिन्ह भी दृष्टिगत नहीं होता। अपनी निर्मित, पालित देह को हमने देह से देखा, लेकिन अपनी स्वयं की संहारित देह को किसी ने नहीं देखा और न देख सकता है। क्योंकि संहारित देह वह है, जो संहारोपरान्त पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय होकर अदृश्य हो चुकी है।

सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि का प्रतिनिधित्व मानव-देह के दर्शित आयाम में है। निर्मित और पालित देह, **अवचेतना** में दर्शित है। **जड़ता और चेतना में यह भी अदृश्य रहती है।** अपनी स्वयं की देह की पाँच अवस्थाएँ किसी मानव ने नहीं देखीं। स्वयं की गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था सभी मानवों के लिए अदृश्य थीं और अदृश्य ही रहेंगी। इन्हीं पाँचों अवस्थाओं में ईश्वरत्व, आत्मतत्त्व और मानव-देह सहित सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि के चमत्कारिक एवं ईश्वरीय रहस्य अन्तर्हित हैं। अध्यात्म, देह से परे, देह का देहातीत विज्ञान है। देह द्वारा, देह के लिए, देह से परे (देहातीत) की देह (संहारित) का अध्ययन एवं अनुभूति आत्म-विद्या है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मूर्च्छावस्था, विस्मृति,

मृतकावस्था और भस्मावस्था सभी जड़ अवस्थाएँ हैं। इनमें किसी भी मानव को देह अवचेतना (Body Consciousness) नहीं होती और देह अवचेतना न होने के होश भी नहीं होती। अर्थात् स्वयं में अप्रकट **'देह अवचेतना'** भी अप्रकट रहती है। यह देह अवचेतना (Body Consciousness) शब्द **'मैं'** के प्राकट्य के साथ जब प्रकट होती है, तभी हर मानव को अपनी निर्मित व पालित देह उस समय के भूत-भविष्य युक्त जगत सहित दर्शित होती है। इस अवचेतना (Consciousness) में जो **'मैं'** जानता-मानता अथवा नहीं जानता-मानता हूँ, उसे हम तथाकथित जागृति (Awareness) में जानते हैं। इस अवचेतना में प्रत्येक मानव की स्वाभाविक चेतना का स्तर पृथक्-पृथक् होता है।

स्वाभाविक चेतना मानव में अन्य समस्त प्राणियों से अधिक होती है। यह स्वाभाविक चेतना दैहिक, बौद्धिक विकास के साथ एक सीमा तक बढ़ती है और धीरे-धीरे आयु बढ़ने अथवा अन्यथा किन्हीं भी कारणों से इसका ह्रास होने लगता है। इस स्वाभाविक चेतना का दैवीय चेतना से कोई सम्बन्ध नहीं है। दैवीय चेतना स्वयं में असीम है, अतः इसके विकास की कोई सीमा नहीं है। एक बार विकसित होने पर इसका ह्रास कभी नहीं होता। दैवीय चेतना का यह विकास जन्मों-जन्मान्तरों में होता रहता है। दैवीय चेतना बुद्धि की चार विधाओं में प्रकट होती है—विवेक, मेधा, प्रज्ञा और ऋतम्भरा। अवचेतना में तूने निर्मित और पालित देह देखी, अब दैवीय चेतना की वृद्धि के लिए तू अपनी संहारित देह का दर्शन कर, क्योंकि **'देह अवचेतना'** में भी तू जानता है, कि जो निर्मित व पालित देह है, वह संहारित **भी** है। संहार के परिणामस्वरूप **'संहारित देह'** का प्रमाण **'भस्मी'** प्रत्यक्ष है। शमशान में पड़ी भसम किसी संहारित देह **की** ही है। वह मानव मर चुका होगा और मृत्योपरान्त चिता दहन द्वारा पंच-महाभूतों में विलय हो चुका होगा। **'भस्मी'** स्वयं में देहातीत पदार्थ है, जो **'संहारित देह'** का प्रमाण है। यह अनुमान नहीं है, स्पष्ट प्रमाण है।

**'नाद'** ब्रह्म स्वयं में अनिर्वचनीय ब्रह्मानुभूति है। किसी **'नाद'** को

यथावत् शब्दों में प्रकट करने में महा समर्थ व सक्षम योगी भी अक्षम हैं। अतः **'नादानुभूति'** शब्दों में रूपान्तरित होते हुए **'वचनीय'** होने में थोड़ी सी **'जूठी'** हो जाती है। **'भस्मी'** निर्माण, पालन और संहार के प्रपंच से परे है। **'भस्मी'** किसकी है, यह मात्र अनुभूति है, लेकिन उस अनिर्वचनीय को वचन में लाने के लिए और **'भस्मी'** का देह से सम्बन्ध एवं प्रमाण बताने के लिए **'संहारित'** ही एकमात्र शब्द है। यद्यपि जिसकी भस्मी प्रकट होती है, उसका **'संहार'** से कोई सम्बन्ध नहीं है। तदपि **'भस्मी'** उस अदृश्य **'संहारित देह'** का दृश्यमान प्राकट्य **'संज्ञा'** रूप में है। यह पदार्थ ज्ञान का भण्डार है। स्वयं में ईश्वर, जीवात्मा, सम्पूर्ण प्रपंच, ध्यान-धारणा, ज्ञान-विज्ञान, सौन्दर्य, शक्ति, ख्याति, ऐश्वर्य, **'सब कुछ'** सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण एवं **'कुछ नहीं'** (विरक्ति) को भी स्वयं में समाहित किए हुए है। यह **'भसम'** दृश्यमान पदार्थ रूप में देहातीत, देशातीत, विदेशातीत, कालातीत, अकालातीत, धर्मातीत, अधर्मातीत, कर्मातीत, अकर्मातीत, लिंगातीत, अलिंगातीत, भेदातीत, अभेदातीत पदार्थ शंकर की एकमात्र **'संज्ञा'** है।

अध्यात्म ज्ञान एवं आध्यात्मिक व्याकरण मात्र भारत की ही धरोहर हैं। शंकर के डमरु नाद से अव्याकरण निःसृत है, क्योंकि प्रभु स्वयं अव्यय हैं। व्याकरण में **'क्रिया'** की परिभाषा दी गई, कि जहाँ किसी कार्य का करना अथवा होना पाया जाता है, उसे क्रिया कहते हैं। होश सम्भालते ही हम मानव सन्देहात्मक बुद्धि होने के कारण 'मैं' जटिल्य के वशीभूत अवचेतना में आते ही देह व जगत सम्बन्धी विभिन्न **'कार्यक्रम'** बनाते हैं। तद्नुसार हमारी सोच, उसका कार्यान्वयन, पाना-खोना एवं होना होता है। कभी हम प्रसन्न हो जाते हैं, कभी क्षुब्ध-विक्षिप्त-त्रसित हो जाते हैं। मरणोपरान्त अन्यों द्वारा मृतक देह का क्रिया-कर्म किया जाता है, उसका कार्यक्रम चाहते हुए भी कोई अपना स्वयं नहीं बना सकता। जो कोई अपने लिए अपना स्वयं का कर-करवा ही नहीं सकता वह **'क्रिया'** ही शंकर के डमरु नाद से प्रकट अव्याकरण की क्रिया है, जिसमें मात्र होना पाया जाता है। कोई अपना क्रियाकर्म स्वयं न करता है, न कर सकता है। क्रियाकर्म ईश्वर

प्रेरित अन्य द्वारा तेरे लिए किया-करवाया जाता है और तेरे लिए स्वतः होता है। अन्य में पशु, पक्षी, प्रकृति की विभिन्न विधाएँ जड़-चेतन कुछ भी हो सकता है। जिस देह से ध्यान में तू स्वयं अपना क्रियाकर्म कर सकता है, वह तेरी संहारित देह है, जो अदृश्य है। वहाँ कोई कार्यक्रम होता ही नहीं, वहाँ मात्र **'क्रियाकर्म'** होता है। जब सद्‌गुरु कृपा से तू जीते जी अपने संहार को आत्मसात् कर लेगा, तो जैसे मरणोपरान्त मृतक देह के लिए क्रियाकर्म का समस्त कार्यक्रम बना-बनाया होता है, उसी प्रकार जीते जी तेरे लिए सब कुछ स्वतः होगा। तू अपना कोई कार्यक्रम नहीं बनाएगा, तेरे लिए अन्य लोग दैवीय कार्यक्रम बनाएँगे और सब कुछ तेरे क्रियाकर्म की नाईं स्वतः होगा।

जगत में वस्तुतः वास्तविक वस्तु, यह भस्मी ही है, अन्य दृश्यमान वस्तुएँ एवं समस्त पदार्थ प्रपंच में हैं और अवास्तविक हैं। जगत में दृश्यमान अन्य विशेष वस्तुओं के विशेषण हैं, लेकिन **'भस्मी'** का कोई विशेषण और सर्वनाम भी नहीं है। **'भस्मी'** पद+अर्थ=पदार्थ है, जो तेरे वास्तविक व विशुद्ध पद का अर्थ है। **'पद'** परिणाम रूप से अदृश्य **'संहारित देह'** है, जिसका प्रमाण अर्थ रूप में प्रकट भस्मी है। यह विशेष्य-विशेषण से परे स्वयं में एकमात्र **'संज्ञा'** है। जो **'ज्ञान सहित'** एवं **'बोधमय'** हो, वही पदार्थ **'संज्ञा'** है, अन्य पदार्थ **'संज्ञा'** नहीं हैं। **'सज्ञान'** से **'संज्ञा'** शब्द बना है। **'स ज्ञान'** के ऊपर ऊँकार का बिन्दु लगाने से बना शब्द **'सज्ञान'** ही **'संज्ञा'** है। इस संज्ञा का अंग्रेज़ी अनुवाद Noun नहीं है। मात्र भस्मी ही एकमात्र **'संज्ञा'** है, जिसमें समस्त प्रपंचमय सृष्टि, आत्मा, परमात्मा एवं उसकी कलाओं के चमत्कारिक रहस्य अन्तर्निहित हैं।

शंकर के डमरु से **'संधि'** प्रकट हुई। स **'धि'** के युग्म पर जब ऊँकार का **'बिन्दु'** लगा, तो **'संधि'** प्रकट हुई। संदेह में तूने कहा **'मैं देह हूँ'।** सद्‌गुरु कृपा से तुझे सन्देह रूपी अज्ञान का बोध हुआ, नित्याध्यासन द्वारा दूसरी घटना होती है, जहाँ सन्देह नहीं रहता। **'संधि'** अर्थात् तेरी **'धि'** (बुद्धि) में विवेक, मेधा, प्रज्ञा, ऋतम्भरा आदि दिव्य बुद्धियाँ जाग्रत होती हैं।

अतः देह के होते हुए तेरी दिव्य **'धि'** के साथ संधि हो जाती है। अवचेतना में प्रकट 'मैं देह हूँ' भाव में विचरते हुए दिव्य **'धि'** के साथ हुई **'संधि'** में तू **'सन्देह'** के उन्मूलन के लिए लालायित हो जाएगा। शंकर के डमरु से **'समास'** प्रकट हुआ, सम+आस=समास। मिलने-मिलाने योग्य दो शब्दों में ही समास का युग्म होता है। इसमें सर्वोत्तम समास अव्ययीभाव समास है। शंकर के डमरु नाद में समस्त भाषाओं के सुभाषित छिपे हैं। भाषाओं की मर्यादा एवं सारगर्भितता शंकर के डमरु नाद में सन्निहित है। सामान्य (सम+अन्य), समन्वय (सम+अन्वय), सम्यक् (सम+एक) दृष्टि एवं दृष्टा ये समास शंकर के डमरु नाद से प्रकट हुए।

सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम समास भाव+सम=भसम है, जो स्वयं में शास्त्र है। **'भाव सम'** समास में **'व'** मौन रहता है और दोनों के युग्म से **'भसम'** शब्द प्रकट हुआ। यही एकमात्र पदार्थ है, जो बिना व्यय हुए युगों-युगान्तरों से है। यही अव्ययीभाव समास है। देह से प्रकट इस पदार्थ से उसके निर्माण, पालन का कोई अनुमान नहीं लगा सकता, कि उसकी कितनी धन-सम्पदा, डिग्रियाँ, पद-प्रतिष्ठा, नाती-पोते, जन-बल आदि था। चाहे कोई बादशाह हो अथवा भिखारी, यह पदार्थ सबका एक **ही** है। इस पदार्थ (भसम) से यह ज्ञान एवं अनुमान भी नहीं होता, कि **'भस्मी'** उस मानव की असंख्य देहों में कौन सी देह की है। किसी मानव की असंख्य निर्मित व पालित देहों में से वह एक अन्तिम जीवित देह थी, जो शव बनकर अन्ततः चिता दहन द्वारा पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय होते हुए अदृश्य हुई और अन्ततः संहारित हुई। तभी भस्मी प्रकट हुई। **'भसम'** से अनुमान लगाना असम्भव है, कि वह मानव किस अवस्था एवं देह की किस स्थिति में था, जब उसकी वह अन्तिम जीवन्त एवं अवचेतनामयी देह **'शव'** रूप में प्रकट हुई।

नाम-रूप से कुण्ठित व गुण्ठित एक अवचेतनामयी मानव-देह स्वयं में असंख्य देहों का पुंज है। आर्थिक स्थिति, पद-प्रतिष्ठा, स्वास्थ्य, निवास, विभिन्न सम्बन्धों और अन्यथा विभिन्न दृष्टियों से एक सबकी अन्तिम देह होती है, जिसका **'शव'** बनता है। वह कोई भी हो सकती है। तू नाम से

कुण्ठित मानव-देह के **'रूप से'** के साथ **तद्‌रूपता सी** में कुण्ठित व गुण्ठित हो गया और चेतना से अवचेतना में आ गया। किसी भी भविष्य को वर्तमान में उतारने की तुझमें प्रतिभा है। उसका सदुपयोग कर। अपनी देह की भस्मी का ध्यान कर, जो तेरी संहारित देह का प्रमाण है। अपने निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य भस्मी को जीते जी आत्मसात् कर ले।

संहारित देह हमेशा अदृश्य व अप्रकट रहती है और अपनी उपस्थिति का प्रमाण **'भस्मी'** रूप में छोड़ देती है। अब अपना प्रतिनिधित्व **'मैं'** शब्द में प्रकट करने के बाद इसी देह का तनिक अवलम्बन ले। तूने यह मान रखा है, कि 'मैं देह हूँ'। यदि तू देह है, तो तू मृतक भी होगा। अवचेतनामयी देह के लिए मृत्यु एवं मृतकावस्था हमेशा भविष्य ही बनी रहती है। अब तू जीते जी ध्यान में मानस-चिन्तन द्वारा देह को इसके अन्त (मृत्यु) तक ले आ और स्वयं को मृतक अथवा शव रूप में पड़ा देख। फिर चिता और चिताग्नि में दहन की अवधारणा कर। अपनी देह के संहार के दोनों आयामों (मृत्यु एवं चिताग्नि में मृतक देह के दहन) का दर्शन करने के लिए तुझे देह के दौरान जीते जी संहार को आत्मसात् करना होगा। ध्यान में तुझे स्वयं अपना क्रियाकर्म करना होगा। उसमें एकाग्रता एवं ध्यानस्थता तुझे सद्‌गुरु ही दे सकता है। उसमें अगाध श्रद्धा रख। देह से परे होकर देह के शव के एक-एक अंग को चिता में जलते देख। जब कोई भी मृतक देह पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय हो जाती है, तो कुछ क्षण के लिए जलता हुआ नर-कंकाल रह जाती है। इस प्रकार ध्यान में अपनी देह को स्वयं से बिछुड़ता और पंच-महाभूतों में विलय होता अनुभव कर। **वहाँ भस्मी अग्नियुक्त होगी।** मानस में ध्यान द्वारा अपने अग्नियुक्त एवं भस्मीभूत नर-कंकाल को देख। यह तेरी पंच-महाभूतों में विलय हो चुकने के बाद की देहातीत, **देह सी** है। यही तेरी अदृश्य व अप्रकट संहारित देह का स्वरूप है।

इस क्रियाकर्म का अवलोकन तेरी संहारित देह करती है, जिसकी तुझे सद्‌गुरु कृपा से कभी न कभी अवश्य अनुभूति हो जाएगी। संहार में

**'रूप सा'** समाप्त हो जाएगा और **'भस्मी'** रूप में एक **'संज्ञान'** का अभ्युदय होगा। तू उससे जीते जी आत्मसात् हो और अवचेतना में उठकर इस **'पदार्थ'** के साथ **'मैं'** जोड़ दे। ध्यान कर, कि मैं भस्मी हूँ'। **'भस्मी' का कोई अपना रूप नहीं है।** इसके साथ तू **'तद्रूप सा'** होना भी चाहे, तो नहीं हो सकता। **भस्मी किसी रूप की नहीं है। इसलिए नाम की नहीं है।** जब तेरा **'मैं'** तत्त्व **'भस्मी'** के साथ आत्मसात् हो जाएगा और तब तुझे अपनी **'संहारित देह'** की अनुभूति हो जाएगी और **'रूप से'** से हमेशा के लिए मुक्ति मिल जाएगी। यहाँ तू समस्त कुण्ठाओं, गुण्ठाओं एवं घुण्डियों से मुक्त हो जाएगा।

जीते जी अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होने का मानस प्रकरण सद्गुरु की कृपा से ही सम्भव है। भस्मी से मात्र आत्मसातता ही पर्याप्त नहीं है, तुझे उस समस्त अग्नियुक्त भस्मी को माँ जगदम्बा और परम पिता शिव को अर्पित करना होगा। तेरी अपनी देह की **'भस्मी'** अविरल व अखण्ड नहीं है, लेकिन यही पदार्थ भसम **(भावसम),** भाव में तुझे उस स्थिति तक ले जाएगा, जहाँ तू इसे शंकर को समर्पित कर सकेगा। शंकर स्वयं इसे ओढ़ेगा, तो यह अविरल व अखण्ड हो जाएगी। तेरी अपनी **'अग्नि'** अविरल व अखण्ड नहीं है। जब तू आद्याशक्ति माँ भवानी को समर्पित करेगा तो अग्निगर्भा माँ का स्पर्श पाते ही तेरी अग्नि अविरल व अखण्ड हो जाएगी। तेरे निश्चल भाव से विह्वल होकर माँ तुझे प्रसाद रूप में अपने गर्भ से एक पंच प्राणमयी व अदृश्य टिमटिमाती **'लौ'** दे देगी; जिसका आधार शंकर के तन की चुटकी भर अविरल व अखण्ड **'भस्मी'** बनेगी। तुझे अपने स्वरूप की **'स्मृति'** आ जाएगी। यह विरक्ति-दर्शन है। संहारित देह के प्रमाण इस पदार्थ (भसम) को जीते जी वर्तमान में **'उतार'** कर निस्सार संसार का **'सार'** पाते हुए तू पार हो जाएगा। वही देह जो निर्मित और पालित है, तेरी दृष्टि में **'संहारित'** हो जाएगी एवं यथार्थ (यथा+अर्थ) हो जाएगी। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

दृश्यमान सृष्टि का जो स्रष्ट्यातीत है, वह अदृश्य है और वह **'नित्य'**

है। दृश्यमान देह सहित सम्पूर्ण जगत का देहातीत, देह के दौरान अदृश्य है। पंच-महाभूतों की सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि में एक ही देहातीत पदार्थ दृश्यमान है, जिसकी सहायता से जीव-कोटि में भटका हुआ जीव अपने अदृश्य आत्मस्वरूप की अनुभूति करता हुआ परमात्मा का दर्शन कर सकता है, वह है—**'भसम'**। अदृश्य, अदृश्य ही है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था का द्योतक व प्रतिनिधि कोई पदार्थ नहीं है। समस्त दृश्यमान में मेरी दृश्यमान देह का जो सब कुछ मेरे लिए अदृश्य है, उसका प्रतिनिधित्व यह एक पदार्थ (भसम) है। मेरी एक देह का देहातीत, जो अवचेतना में प्रकट देह के दौरान अदृश्य है और सम्पूर्ण सृष्टि **का** स्रष्ट्यातीत जो प्रकट सृष्टि के दौरान अदृश्य है, उसकी प्रतिनिधि मात्र भस्मी है। अन्य का **'संहार'** अर्थात् मृतक होते, चिताग्नि में जलते तथा पूर्ण **'भस्मी'** का प्रकाट्य देखा जा सकता है। पंच-महाभूतों की दृश्यमान सृष्टि में एक ही **'पदार्थ'** ऐसा है, जो पंच-महाभूतों के प्रपंच से परे है। जहाँ प्रपंच पूर्णतः समाप्त हो जाता है, वहाँ पंच-महाभूतों की देह सहित जगत का **'परिणाम'** संहारित देह का प्रमाण एक पदार्थ रूप में प्रकट होता है, देह सहित सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि के पूर्णतः विलय होने के बाद यह पदार्थ पूर्णतः दृश्यमान होता है, जो उस परिणाम (संहारित देह) का प्रमाण है।

पंच-महाभूतों का समस्त प्रपंच **'जादू'** है और जादू के अतिरिक्त **'दूजा'** नहीं है। **'भस्मी'** पंच-महाभूतों से पृथक् छटा तत्त्वातीत तत्त्व है। निर्मित व पालित देह के मृत्योपरान्त नाम-रूप की पहचान (I.D.) का जब पूर्णतः **'संहार'** (दाह संस्कार) हो जाता है, तो अनाम-अरूप (संहारित देह) की पहचान (I.D.) एक पदार्थ **'भसम',** प्रमाण रूप में प्रकट होता है। संहार में वह **'नामक व्यक्ति'** महत्त्वपूर्ण है, जिसका **'रूप'** (देह) पंच-महाभूतों में निर्मित एवं पंच-महाभूतों द्वारा पालित था। निर्मित व पालित की पहचान रूप था, जो एक नाम से कुण्ठित था। व्यक्ति की पहचान के प्रमाण-पत्र (I.D.) में रूप और नाम होता है, कि अमुक **'रूप'** के व्यक्ति का अमुक **'नाम'** है। उसका **'रूप'** पूर्णतः जलने के बाद पंच-महाभूतों में ही विलय हो

गया। उस पहचान का पूर्णतः संहार हो गया और वह **'नाम-रूप'** की पहचान (I.D.) पूर्णतः पंच-महाभूतों में ही विलीन हो गई। समस्त प्रपंच (निर्माण, पालन, संहार) समाप्त हो गया, तो सबकी **'एक ही'** वह अदृश्य संहारित देह प्रकट हुई, जिसका प्रमाण **'भस्मी'** प्रपंचमय सृष्टि में दृश्यमान पदार्थ एवं वास्तविक वस्तु है। **'मैं'** शब्द (जटिल्य) और **'भसम'** प्रकट अथवा अप्रकट दोनों स्थितियों में प्रपंच से परे है, इसलिए मायातीत है।

दैवीय चेतना के बिना संसार का भोग सम्भव नहीं है। दैवीय चेतना **'विरक्ति'** है, **'संहार-दर्शन'** है। जो देह निर्मित व पालित है, वह संहारित भी है। देह का संहारित आयाम अदृश्य है और अवचेतना में दृष्टिगत नहीं होता। तू मानव है, तू अपनी दृश्यमान देह से देह के अदृश्य आयामों का दर्शन एवं अनुभूति कर सकता है। तू मानव है, तेरे पद का अर्थ तेरे संहार के बाद प्रकट हो, तो तुझे धिक्कार है। तू जीवन-काल में क्या करता रहा? जिन **'पदों'** में विचरता रहा, वे पद तेरी सुषुप्ति में तेरे लिए नहीं रहते, तो मृत्यु और पूर्ण संहार के बाद कहाँ रहेंगे? **'संहारित देह'** तेरा पद है, जिसका अर्थ **'भस्मी'** प्रमाण रूप में तुझे दृश्यमान है। अतः भस्मी ही तेरे योग्य एकमात्र पदार्थ (पद+अर्थ) है। तेरी संहारित देह अदृश्य है और समस्त कलाओं की स्वामिनी है, इसलिए स्वयं में कलारहित एवं मायातीत है। जगत की कोई भी कला इसे भ्रमित नहीं कर सकती। तेरी यह **'संहारित देह'** समस्त जगत की है और एक ही है।

**'संहारित देह'** पूर्ण संहार का परिणाम है। तुझे परमात्मा ने तेरा परिणाम नहीं दिखाया, लेकिन उस परिणाम (संहारित देह) का प्रमाण एक पदार्थ रूप में तुझे दिखाया है। एक देह के एक ही **'पदार्थ'** भसम, जो सब देहों का एक ही है, था और होगा; जीते जी उसके साथ आत्मसातता में, जिस देह को सम्मान देगा, वह **'मैंमयी'** यथार्थ देह हो जाती है। वहाँ पर अदृश्य व अप्रकट **'संहारित देह'** का अभ्युदय होना प्रारम्भ हो जाता है। यह स्थित्यातीत स्थिति **'संहारित देह'** की अनुभूति के लिए एक सुनिश्चित पूर्वानिवार्यता (Pre-requisit) है। **'भावसम'** है, **'भसम'**। एक **'अर्थ'** एक

पद का है और एकपद एक **'अर्थ'** का है। **'पद'** है तेरी **'संहारित देह'** और **'अर्थ'** है **'भसम'।** अन्य **'पद'** तेरे इस पद की पाद-धूलि भी नहीं हैं। तुझ **'एक'** (जीवात्मा) की जो **'एक'** (संहारित देह) है, वह सबकी **'एक'** है। तू परमात्मा से अपने इस पद के लिए आर्तनाद कर, कि 'हे एक (स्रष्टा परमात्मा) ! मुझ एक (दृष्टा जीवात्मा) की एक (भस्मी) द्वारा मुझे मेरी एक (संहारित देह) की अनुभूति करा दो।'

संहारित देह की अनुभूति विरक्ति है। इसे विदेह देह भी कहा गया है। यही तेरा अपना विशुद्ध स्वरूप है और तेरी विरूपता एवं अरूपता है। विदेह देह के स्वामी संत महापुरुषों में विरूपता एवं अरूपता का ईश्वरत्व प्रकट हो जाता है। विवेक, मेधा, प्रज्ञा एवं ऋतम्भरा आदि दिव्य बुद्धियाँ और सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति, ऐश्वर्य आदि विभूतियाँ जाग्रत हो जाती हैं। जो उनकी वाणी से निःसृत होता है और जो उनके कर्ण सुनते हैं, वे स्वयं में स्तोत्र ही होते हैं। उनका प्रत्येक कर्म-अकर्म प्रभु की आराधना एवं ब्रह्मसूत्रों के विषय भोग, पूजा प्रकरण होते हैं। उनके चलने और स्थिरता में कोई अन्तर नहीं होता। उनके समस्त कार्यक्रम अन्य के लिए होते हैं, क्योंकि वे **'स वयम'** (स्वयं) संहारित देह की अनुभूति से अभावमय आनन्द से आविर्भूत रहते हैं।

***''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''***

**(9 मार्च से 15 मार्च एवं 21 अप्रैल से 25 अप्रैल 2012)**

# संहार (पहचान)

## (भाग – 4)

**अ**ध्यात्म एवं आत्मविद्या स्वयं में परम ऐश्वर्यमयी एवं अलंकृत है। निर्माण, पालन और संहार दृश्यमान प्रपंच की तीन विधाएँ हैं। स्वयं में निराकार पंच-महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश) दृश्यमान हैं। इनके अद्‌भुत संगम से प्रत्येक साकार मानव देह सहित समस्त चराचर प्राणी जगत (जलचर, थलचर, नभचर आदि) का निर्माण, पालन होता है और अन्ततः संहारोपरान्त इन्हीं पंच महाभूतों में विलय होता है। निर्माण और पालन दोनों पंच-महाभूतों **'से'** और पंच महाभूतों **'में'** **'पंच महाभूतोंमय'** हैं तथा संहार पंच महाभूतों **'में'** विलय है। निर्माण हो **'चुका'** है, पालन हुआ **था** और हो रहा **है** तथा संहार **'होगा'। 'निर्मित'** का निर्माण हुआ **'था',** पालित का **'पालन'** हो रहा **है** और **'संहार'** हो**गा**। यह **'गा' 'था'** मायिक है। निर्माण और निर्मित, पालन और पालित तथा संहार **'माया में'** और **'मायामय'** हैं। लेकिन **'संहारित'; 'मायातीत'** एवं **'अदृश्य'** है। वस्तुतः निर्मित का निर्माण हो **'चुका'** है, पालित का पालन हो **'चुका'** है और जो संहारित है, उसका संहार हो **'चुका'** है। अतः निर्माण, पालन और संहार तीनों हो **'चुके'** हैं।

निर्माण हुआ **'था'**, पालन हो रहा **'है'** और संहार हो**'गा'**; यह **'गाथा'** जन्मों-जन्मान्तरों से सन्देह (मैं देह हूँ) रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में मेरी **'चूक'** (भूल) **है।** यह एक **'चूक'** मुझे बहुत मंहगी पड़ी है। कहा जाता है, कि भूल-चूक लेनी-देनी, लेकिन संदेहवश न मेरी यह **'भूल'** सुधरी, न **'चूक'** सुधरी, न **'लेना'** समाप्त हुआ और न **'देना'**। मनवन्तरों, कल्पों, कल्पान्तरों

से **'मैं'** जन्मों-जन्मान्तरों के स्व कल्पित **'कालचक्र'** में भटक गया। इस भटकन में मेरा स्वरूप, मानव-देह का यथार्थ और प्रभु के श्री चरणों के दर्शन का अधिकार खो गया। इस अज्ञान में मैंने अपनी चाहतों के लिए होते हुए प्रभु के **'यत्नों'** को अपना **'कर्म'** व **'प्रयत्न'** मान लिया। इस **'चूक'** से **'काल'** में फँसा **'मैं',** कैसे बाहर आऊँ? निर्माण हो **'चुका'** है, पालन हो **'चुका'** है और संहार हो **'चुका'** है। यह **'चुका' 'अकाल'** है। **'संहारित'** देह निर्माण-निर्मित, पालन-पालित एवं संहार सबसे परे **'अकाल'** अर्थात् काल की सीमा से परे है। **'काल'** और **'अकाल'** का स्वामी **'अचूक'** है और **'अचूक'** स्वयं में **'अच्युत'** है। वही मेरी **'संहारित देह'** का स्वामी महाकाल है।

निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में चलती दृश्यमान सृष्टि **'नित नूतन'** है। यहाँ **'नित'** भी **'नूतन'** है और **'नूतन'** भी **'नूतन'** है। हर दिन, हरेक दिन, प्रतिदिन अर्थात् बहुत से **'एक'** हैं। प्रत्येक, अर्थात् प्रति **'एक'।** दूसरे शब्दों में प्रत्येक दिन जो **'नित नूतन'** है, वह **'नित संहारित'** भी है। **'नूतन'** दिन चढ़ा और **'संहारित'** दिन में अवसान हुआ। आरोहण के साथ अवरोहण भी होगा ही। हर दिन स्वयं में एक दिन ही है। जिसका आरोहण होगा, उसी का अवरोहण होगा। इस प्रकार एक दिन ही सप्ताहों, महीनों, वर्षों, सदियों, युगों, महायुगों के बहुत से दिनों में अन्तिम दिन बनता है। उदाहरणतः, मार्च का महीना प्रारम्भ हुआ, तो एक दिन (एक मार्च) से शुरू हुआ और समाप्त हुआ, तो एक दिन (31 मार्च) पर समाप्त हुआ। मार्च महीने के अन्य दिन भी एक-एक दिन ही थे। 31 मार्च के बाद, 1 अप्रैल से वर्ष का चौथा महीना शुरू हुआ। **'नित नूतन'** दिन से महीना शुरू और **'नित नूतन'** दिन पर ही महीना समाप्त होता है। इसी प्रकार **'नित नूतन'** दिन पर ही वर्ष शुरू होता है और **'नित नूतन'** दिन पर ही वर्ष समाप्त होता है। इसी तरह वर्ष, सदियाँ, युग, महायुग व्यतीत होते चले जाते हैं। यह दिनों, सप्ताहों, महीनों, वर्षों, सदियों की मानवीय गणना है, जो **'काल'** में है।

तेरी प्रत्येक अवस्था, स्थिति, समय की प्रत्येक देह **'नित नूतन'**

**निर्मित व पालित के** साथ-साथ **'नित संहारित'** भी है। जो देह **'नित नूतन'** है वह माया में, मायासहित एवं मायामय है। जो माया सहित है, वही **'माया रहित'** है। क्योंकि **'नित नूतन' 'नित संहारित'** भी है, तभी **'नित नूतन'** है। देहातीत एक **'स्थिति'** है, **'नित नूतन'** व **'नित'** अवस्थाएँ हैं। स्थित **'देहातीत'** एवं **'कालातीत'** ही होता है। वह कालातीत दिन **'नित नूतन'** नहीं **'नित्य'** होगा। वह आदि-अन्त से रहित अनादि-अनन्त होगा। वहाँ आरोह-अवरोह की, दिन के चढ़ने-उतरने की बात ही नहीं है। यह अनुभूति का विषय है, समझ का विषय नहीं है। **'नित नूतन'** और **'नित्य'** में अन्तर वहाँ स्पष्ट होगा, जहाँ तू अपनी देहातीत एवं कालातीत अदृश्य संहारित देह की अनुभूति करेगा। ईश्वर सदा नित्य है, जीवात्मा नित्य है और दोनों का काल एवं जन्म-मृत्यु से सम्बन्ध नहीं है।

**'संहारित देह'** अवचेतना में दृश्यमान नहीं है। **'देह अवचेतना'** में जो पहचाना जाता है वह तमाशा, जादू, प्रपंच या इन्द्रजाल है। यह **'जादू'** के अतिरिक्त **'दूजा'** नहीं है। प्रभु ने तेरे लिए इन्द्रजाल व प्रपंच की तरह जादुई निर्माण व पालन किया है। तू इस जादू का लाभ उठा। निर्मित व पालित एवं अवचेतना में दर्शित मानव देह का पहचान पत्र (I.D.) लेने के लिए प्रमाण एकत्र करने पड़ते हैं। प्रमाणों के सत्यापन एवं पुष्टि के बाद पहचान पत्र (Identity Card) मिलता है। इन प्रमाणों में बहुत से हेर-फेर किए-करवाए जा सकते हैं। लोग जाली सर्टिफिकेट बनवा कर नकली पासपोंट तक बनवा लेते हैं। निर्मित व पालित पंच-महाभूतों की देह की कोई भी, जैसी भी चाहे पहचान (I.D.) बनवा सकता है। निर्मित और पालित के प्रमाणों की औपचारिकताओं की पूर्ति में जिन प्रमाणों की वजह से वह पहचान (I.D.) मिली, उस पहचान-पत्र (Identity Card) से वह व्यक्ति पहचाना जाता है। भौतिक जगत में देह से देह की पहचान (I.D.) बनी और उससे देह को पहचाना।

**'संहारित देह'** की पहचान (I.D.) का प्रमाण **'भसम'** प्रत्यक्ष पदार्थ रूप में दृश्यमान है। अदृश्य **'संहारित देह'** बिना नाम-रूप की है। उसका

प्रमाण भस्मी बिना देह की पहचान (I.D.) है। समस्त मानव जाति की पहचान (I.D.) का प्रमाण एक ही है और तू उसके लिए Insured है। **'संहारित देह'** की पहचान (I.D.) के प्रमाण भस्मी से आत्मसात् होते-होते हो सकता है, तुझे कुछ जन्म लग जाएँ, लेकिन इस मानस प्रकरण में वह अदृश्य व अप्रकट **'संहारित देह'** तुझे अनुभूतिगम्य हो जाएगी। इसी को अन्तर्आत्मा या जीवात्मा कहते हैं। यह तेरी पहचान (I.D.) का देहातीत एवं कालातीत क्षेत्र है। देह व जगत की सीमित सीमाओं में उसका दर्शन असम्भव है।

सभी मानवों की **'संहारित देह' 'है'**, अदृश्य है और एक ही है; क्योंकि उसका प्रमाण **'भस्मी'** एक ही है। अनेकानेक मानवों की एक ही **'संहारित देह'** का दृश्यमान प्रमाण एक है। इसलिए अदृश्य **'संहारित देह'** भी एक ही है। पंच-महाभूतों से निर्मित व पालित देहें, जगत सहित अवचेतना में दर्शित हैं और पृथक्-पृथक् हैं, क्योंकि नाम-रूप पृथक्-पृथक् हैं। इनका पंच महाभूतों **में** ही विलय (संहार) हो जाएगा। अनाम व अरूप अपनी उस पहचान को यदि तूने लेना है, तो सद्गुरु में पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास परमावश्यक है। यह कोई औपचारिकता नहीं है। सद्गुरु कृपा से ही तुझे अपनी अनाम, अरूप, तदर्थ एवं अदृश्य **'संहारित देह'** का दर्शन व अनुभूति होगी। समर्थ सद्गुरु शमशान में पड़ी किसी भी **'भस्मी'** के प्रमाण द्वारा जीते जी तुझे तेरी **'संहारित देह'** का दर्शन एवं अनुभूति कराने में समर्थ है।

शमशान में पड़ी कोई भी **'भस्मी'** किसी पंच महाभूतों से निर्मित व पालित देह की नहीं है, क्योंकि निर्मित व पालित देह संहारोपरान्त चिता में जलकर पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय हो **'चुकी'** है। इसलिए 'भस्मी' **मानव की 'संहारित देह'** की है। निर्मित व पालित में असंख्य भिन्नताओं के जादू व प्रपंच के संहार और मृतक देह के चिता दहन के बाद भस्मी प्रकट होती है। भस्मी है तो **'संहारित देह'** भी है। किसी की भस्मी का गंगा में विसर्जन **अदृश्य संहारित देह के दृश्यमान प्रमाण का सम्मान एवं संहारित देह को प्रणाम है।**

**ईश्वर स्वयं में अकर्ता है और मायातीत, आकारातीत एवं अदृश्य है।** अपनी परम विलक्षण एवं सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह पर ईश्वर को भी गर्व है। मानव को इस **'दिव्य सुकृति'** के लिए ईश्वर का पल-पल आभारी और प्रशंसक होना ही चाहिए। अन्यथा ससम्मान विचरण करने के अधिकारी मानव को दैवीय शक्तियाँ पशु के समान चरने पर विवश कर देती हैं। मानव को यह देह किसी कालातीत एवं अक्षुण्ण-क्षण की खोज के लिए मिली है। जो भी मानव इस देह पर अधिपत्य करेगा कि यह मेरी है; वह दैवीय संविधानानुसार अवैध ही होगा। यहाँ जो हो रहा है, वह हो **चुका** है। तुझे निर्मित देह और बना-बनाया जगत मिला है। निर्माण हो चुका है। तू स्वयं को न पाल रहा है, न पाल सकता है। दम घुटने व हवा की कमी से मरे और पानी के अभाव में प्यास से **मरे व्यक्ति** को हवा और पानी देने से जिलाया नहीं जा सकता। भूख से मरते हुए को यदि उसकी आयु है, तो कुछ खिला-पिला कर जिलाया जा सकता है, लेकिन मृतक को जिलाना असम्भव है। जिसे तू **'पालन'** कहता है, वह **'पालित'** है, तो **'पालन'** होता है। *'त्वं मम् पालय नित्यं कृपया जगदीशः।'*

निर्माण तूने न देखा, न देख सकता है, न कर सकता है। पालन कैसे हो रहा है, तू देख नहीं सकता और कर भी नहीं सकता। **निर्माण हो चुका है, पालन हो रहा है, संहार होगा। 'काल'** की तीनों विधाओं (समय, स्थान, स्थिति) में से एक विधा समय है, जिस के भूत, वर्तमान, भविष्य तीन रूप हैं। निर्माण अतीत है, पालन वर्तमान है और संहार भविष्य है। तीनों हो **'चुके'** हैं। जो हुआ (निर्माण) वह हो चुका है। जो हो रहा (पालन) है, वह हो चुका है और जो होगा (संहार) वह भी हो चुका है। हुआ **था,** हो रहा **है,** हो**गा** तीनों **'काल'** से बँधे हैं, लेकिन जो हो **'चुका'** है, वह **अकाल** है और करने तथा **'चुकाने'** वाला **महाकाल** है। इसमें जो **'चूका'** है, वह **'काल'** से बँधा रहता है और वही काल-चक्र में भ्रमित भटकता रहता है।

**'चुका'** और **'चूका'** शास्त्रीय शब्द हैं। तू हर जन्म में **'चूका'** है, इसीलिए काल, कर्म व प्रारब्ध से बँधा है। **'चुका'** हुआ **'अकाल'** है और हर

**'चुके'** का स्वामी **'महाकाल'** है। वही **'अचूक'** है, महा+काल= **'महाकाल'**/ महा+अकाल=**'महाकाल'**, इसी प्रकार चूक+अचूक=**'चूकाचूक'**/चुका+ अचूक=**'चुकाचूक'**। जो **'अचूक'** है, वह **'अचुका'** भी है अर्थात् जो अव्यय है वह कभी चुकता (समाप्त) नहीं। तू वस्तुतः **'अचुका'** है, लेकिन तू हमेशा **'चूका'** है। तू हर जन्म में 'मैं देह हूँ' सन्देहवश अपने ख्यालों की नई सृष्टि बनाता है। तेरी **'चूक'** और लेने-देने में वृद्धि होती रहती है। तू आसक्त है, तू एक तुच्छ संकल्प में जन्मों-जन्मान्तरों से जकड़ा हुआ हर जन्म में अपनी ही **'चूक'** के कारण चुकता रहा है। **'चुका हुआ'** तू देख रहा है, निर्माण हो चुका है, पालन भी हो चुका है। यदि तू **'संहारित देह'** दर्शन से चूक गया, तो फिर प्रभु तुझे जन्म देंगे। अब अविलम्ब शीघ्रातिशीघ्र अति सद्गुरु कृपा से **'संहारित देह'** के दर्शन के लिए उस **'अचूक'** महाकाल का आश्रय ले। तू स्वयं में मायामय जीव नहीं, मायातीत एवं कालातीत दृष्टा आत्मतत्त्व है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

'मैं देह हूँ' सन्देह रूपी अज्ञान तेरी आत्मा में रच-बस चुका है। अवचेतना में देह के नाम-रूप से के साथ तू तद्रूप सा हो चुका है। मूलतः **'मैं'** शब्द आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि है, लेकिन स्वयं में आत्मतत्त्व नहीं है और जड़ता एवं चेतना में शब्द रूप में प्रकट नहीं होता। **'मैं'** शब्द को आत्मतत्त्व का प्रतिनिधित्व प्रकट करने के लिए अवचेतना में, देह सहित जगत में नाम से कुण्ठित एक मानव-देह का तनिक अवलम्बन अति आवश्यक है। उदाहरणतः हिन्दी वर्णमाला के स्वरों की प्रतिनिधि मात्राएँ ध्वनि रूप में अपने-अपने स्वरों का प्रतिनिधित्व करती हैं। मात्राएँ विभिन्न वर्णों के साथ लगकर वर्णों से बने शब्दों और शब्दों से बने वाक्यों को उनका **'अर्थ'** प्रदान करती हैं। साथ ही वाक्यों के विभिन्न वर्णों के साथ लगकर उन शब्दों तथा उनसे बने वाक्यों को सार्थकता प्रदान करती हुई, उन्हीं के अर्थों में समाहित हो जाती हैं। उन मूल स्वरों को भूल जाती हैं, जिनका वे ध्वनि रूप में प्रतिनिधित्व कर रही थीं। स्वरों की प्रतिनिधि मात्राएँ स्वयं में वे **'स्वर'** नहीं हो सकतीं।

दृश्यमान जगत प्रपंच है। यह प्रकट होता है और अप्रकट होता है। इसका प्रकाट्य **'अवचेतना'** में ही होता है। अप्रकट-अप्रकट देह अवचेतना **'मैं'** शब्द के द्वारा देह सहित जगत बनकर प्रकट हुई। इसमें आत्मतत्त्व का प्रतिनिधित्व करता **'मैं'** शब्द नाम के साथ कुण्ठित रूप (देह) **से** के साथ नाम-रूप में तदरूपता **सी में** गुण्ठित हो गया। एक साकार मानव-देह द्वारा अरूप **'नाम'** की स्वीकृति और अनाम **'रूप'** की तद्रूपता का क्रियान्वयन **'मैं'** शब्द द्वारा होने में कई वर्षों की अवधि लगी, जबकि रखते ही **नाम ने 'रूप' को** तुरन्त **स्वीकार** कर लिया। लेकिन उस स्वीकृति का क्रियान्वयन **'मैं'** शब्द द्वारा तुरन्त नहीं हुआ। अतः नाम की किसी भी **'रूप'** के साथ तद्रूपता अदृश्य ही रही और अदृश्य ही रहती है। किसी देह द्वारा नाम की स्वीकृति और स्वीकृति का सत्यापन **'मैं'** द्वारा साथ-साथ होता है। **'मैं'** शब्द स्वयं में **'सर्वनाम'** एवं **'सर्वभाव'** आत्मतत्त्व का द्योतक होते हुए भी स्वयं में आत्मतत्त्व नहीं है। दृष्टा **'मैं'** (जीवात्मा) ही है, लेकिन वह किसी एक रूप व किसी एक नाम की नहीं है। शब्द **'मैं'** का **'आत्मत्व'** इस कुण्ठा व गुण्ठा की घुण्डी में आच्छादित हो गया और मानव-देह भी अपना यथार्थ खो बैठी। साथ ही जीव के लिए ईश्वरत्व आच्छादित हो गया।

**'मैं अमुक-अमुक हूँ'** में **'मैं'** सबकी एक ही है। नाम एवं रूप अलग-अलग हैं। यहाँ एक ही **'मैं'** अलग-अलग हो गई। हरेक की **'मैं'** उस नाम-रूप को प्रमाणित करने वाली है, जो **'रूप'** एक नाम से **'कुण्ठित'** है, इसलिए रूप सा है। उसके साथ तद्रूपता सी में **'मैं'** गुण्ठित है। देह अवचेतना (Body Consciousness) का प्रकाट्य वस्तुतः **'मैं'** जटिल्य (Complex) का प्रकाट्य है। इसके चार अंग हैं—नाम, रूप (देह), होना और **'आत्मीयता'** अथवा **'आत्मत्व'** भूला हुआ आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द **'मैं'**। इस जटिल्य की सशक्त घुण्डी ने तेरी अदृश्य **'संहारित देह'** को आच्छादित किया हुआ है। **'मैं'** जटिल्य का निर्माण नहीं होता, पालन नहीं होता और संहार भी नहीं होता। यह अदृश्य है और दूसरी ओर तेरी संहारित देह अदृश्य है। यद्यपि यह जटिल्य संहारित देह की तरह

अप्रकट-अप्रकट ही होता है, लेकिन इस जटिल्य ने ही तेरी संहारित देह को आच्छादित किया हुआ है।

**'मैं'** जटिल्य के अप्रकट-प्रकाट्य में तेरी पहचान खो जाती है और अदृश्य संहारित देह के अप्रकट प्रकाट्य में तुझे अपनी स्मृति आ जाती है। तेरी **'संहारित देह'** तेरी ही तरह स्वयं में अदृश्य, अनाम और अरूप है और वही तेरी पहचान (I.D.) है। । यदि तेरा कोई नाम होता, तो प्रभु तुझे नाम के साथ भेजते। प्रभु ने तुझे उस रूप (मानव देह) के साथ संसार में भेजा, जो अनाम है। नित नूतन और सतत् बदलते तेरे **'रूप'** का कोई एक नाम कैसे हो सकता है? देह अवचेतना में तूने आज तक अपना स्वयं का **'रूप'** न देखा है, न देख सकता है। तू अनाम के साथ अरूप भी है। मात्र सम्बोधन और देह की सांसारिक पहचान के लिए **'नाम'** की आवश्यकता थी। जिसका अपना कोई रूप ही नहीं और जिस **'रूप'** का रखा, उससे प्रत्यक्ष दृष्टिगत भी नहीं होता तू वह नाम कैसे हो गया। यह **'मैं'** जटिल्य है। इस जटिल्य (Complex) से तू युगों-युगान्तरों से पीड़ित है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था में यह जटिल्य अप्रकट-अप्रकट ही रहता है। अप्रकट के प्रकट होते ही **'देह अवचेतना'** भी स्वयं में अप्रकट रहती हुई देह सहित जगत बनकर प्रकट हो जाती है। यही तेरा जीवन है। तेरे समस्त सुख-दुःख, रोग-दोष, पाप-पुण्य और तेरा सब कुछ तेरी इस घुण्डी में हैं, कि 'मैं देह हूँ'।

स्वभाविक चेतना जिसे **'सोच'** कहते हैं, मानव में अन्य समस्त प्राणियों से अधिक है। जिनमें यह सोच अल्प मात्रा में है, उनमें प्रभु ने अन्य विशेष प्रतिभाएँ दी हैं। अतः यह सोच किसी में कम, किसी में अधिक और किसी-किसी में बहुत अधिक होती है, फिर भी इसकी **'सीमा'** है। जब मानव की सर्वोच्च सोच, अपनी सोच द्वारा प्रभु चरणों में समर्पित हो जाती है, तो उसकी दैवीय चेतनायुक्त **'बुद्धि'** का स्फुरण होता है। इसकी विवेक, मेधा, प्रज्ञा और ऋतम्भरा चार विधाएँ हैं। एक शिशु अबोध है। उसे अपने स्वयं के शैशव का कोई बोध या ज्ञान नहीं होता। वह कौन है ? किसका पुत्र या

पुत्री है ? कहाँ पैदा हुआ? अपनी दृश्यमान देह व जगत की विभिन्न विधाओं धर्म-कर्म, लिंग-जाति, सम्बन्ध-कुल, देश-काल, शुभ-अशुभ, भक्ष्य-अभक्ष्य, ज्ञान-अज्ञान, लाभ-हानि आदि-आदि का उसे कोई बोध नहीं होता। जागता और खेलता हुआ शिशु भी इन समस्त विधाओं से अनभिज्ञ होता है। उसके लिए यह **'सब कुछ'** स्वयं में **'कुछ नहीं'** है, लेकिन अबोधतावश उसे इसका ज्ञान भी नहीं है, कि **'सब कुछ' 'कुछ नहीं'** है। यह अबोधता मात्र उसका अज्ञान नहीं, **'जड़ता'** है। उसकी समस्त प्रसन्नता, खुशी, रोना-धोना अबोधता में ही होता है। बोधता में जब तू शैशव के इस मानस को आत्मसात् करेगा अथवा शैशव-दर्शन करेगा, तो तुझे अपने शैशवमय मानस का बोध हो जाएगा।

बोधता में जब कोई मानव, शिशुवत् हो जाता है और उसका शिशुवत् स्वभाव परिपक्व हो जाता है, तो उसकी बोधता आत्मज्ञानमयी होती है। जो बुद्धि तुझे यह बोध करा दे और ज्ञानमय कर दे, वही वास्तव में बोध है, बुद्धि है और स्वयं में **'बुद्ध'** है। **'सब कुछ'** और **'कुछ नहीं'** का साथ-साथ बोध स्वयं में आत्मज्ञान है। **'वृद्ध'** शब्द में **'बोध'** छिपा हुआ है। उस मानस में कोई भेद-भाव नहीं है। उसमें छोटे-बड़े, ऊँचे-नीचे, अपने-पराए का कोई अन्तर व भिन्नता नहीं है। उस मानस में तेरा सम्पूर्ण जगत तेरे लिए होता है और तू किसी से सम्बद्ध नहीं होता। **'सुषुप्ति'** में **'मैं'** जटिल्य की घुण्डी अप्रकट होती है। इसके प्रकट होने पर तू इसी **'घुण्डी'** में जगत को देखता है। मृत्यु के बाद देह के जलने और पूर्णतः पंच महाभूतों में विलय होते हुए अदृश्य हो जाने पर भी यह **'घुण्डी'** ज्यूं की त्यूं बनी रहती है। क्योंकि न **'नाम'** जलता है न शब्द **'मैं'**। तू जला दिया गया, मिट्टी में दबा दिया गया लेकिन तेरा **'मैं देह हूँ', 'मैं अमुक-अमुक हूँ'** जटिल्य (Complex) वैसे का वैसे ही रहेगा। देह के छूटने पर भी 'मैं देह हूँ' 'मैं अमुक हूँ' यह भाव नहीं छूटेगा। यह भाव ही उस जटिल्य की घुण्डी है।

अगले जन्म में गर्भावस्था व शैशवावस्था के काल में तेरी देह की पुरानी स्मृतियाँ लुप्त हो जाएँगी। **'मैं'** जटिल्य की अप्रकट घुण्डी ज्यूं की

त्यूं रहेगी। **'देह अवचेतना'** के प्रकट होने पर भी तुझे देह निर्मित व पालित लब्ध हुई। इस जटिल्य में देह के निर्मित व पालित होने की तुझे धारणा है, इसीलिए तुझे लगता है, कि निर्माण हुआ, पालन हुआ और संहार होगा। रात को सुषुप्ति में जो तूने स्वप्न देखा, उसमें तू और अन्य लोग जो थे, उनका निर्माण और पालन कहाँ हुआ? सपने वाली तेरी उस देह का जन्म कब हुआ ? अब तो वह देह है ही नहीं, तो उस स्वप्न वाली देह की भस्मी कहाँ है? उस समय तेरा **'मैं'** जटिल्य प्रकट हुआ, तो तूने सोते हुए भी एक सृष्टि **'देह अवचेतना'** के प्रकाट्य में देखी। उस सृष्टि का अब नामो-निशान नहीं है। उसे स्वप्न मानता हुआ भी तू उससे प्रभावित है। मरने से डरता है और रोज़ सोना चाहता है। जैसे तूने निद्रा नहीं देखी, वैसे ही मृत्यु भी नहीं देखनी, लेकिन उससे भयभीत है।

तू जन्मों-जन्मान्तरों से देह की अवचेतना की मोह-निद्रा में सोया-सोया उठा है। अब तू अपनी चेतना को जाग्रत कर। यदि जीते जी अपने संहार को नहीं देखेगा, तो तेरा जटिल्य बना रहेगा। तू फिर जन्म लेगा, मरेगा और वहीं का वहीं कालचक्र में भ्रमित ही भ्रमण करता रहेगा। यह जटिल्य (Complex) 'भसम' नहीं होता, न कभी जलता है, न दिखाई देता है और न लुप्त होता है। आच्छादित होने पर अप्रकट हो जाता है, फिर प्रकट हो जाता है। तूने अपना मरना और भस्मी बनना नहीं देखा, अतः जटिल्य ज्यूं का त्यूं बना रहता है। यह जटिल्य ही फिर कोई रूप बनाएगा। जब वह रूप, नाम से कुण्ठित हो जाएगा और इसकी स्वीकृति तेरे **'मैं'** जटिल्य द्वारा होगी तो ज्यूं का त्यूं अवचेतना में अप्रकट-प्रकट हो जाएगा। तू जो करते-करते मरा था, फिर वही खोजने लगेगा। युगों- युगान्तरों से यही होता चला आ रहा है और तेरा ह्रास ही हो रहा है। इस जटिल्य में क्या विकास हो सकता है। तुझे सद्गुरु का शरणागत होकर उसकी कृपा से जीते जी अपनी संहारित देह का दर्शन करना होगा।

देह के अन्तान्त (भस्मी) से पहले शव या देह के **'रूप'** का दर्शन अन्तिम दर्शन है। किसी के अन्तिम दर्शन करने के लिए जो तेरा अपना

चेहरा (रूप) या देह थी, वह भी अन्तिम थी। तू जिस चेहरे से है, वह भी अन्तिम है और किसी अन्य का जो चेहरा तू देख रहा है, वह भी अन्तिम है। जब तू किसी का दर्शन करता है, वह अन्तिम ही होता है और तेरा वह चेहरा भी अन्तिम होता है। इस रहस्य को हृदयंगम करने के लिए तुझे जीते जी देह के अन्तान्त में प्रकट **'भसम'** से आत्मसात् होते हुए अपनी अप्रकट एवं अदृश्य संहारित देह का दर्शन एवं अनुभूति करनी होगी। अपने **'संहार'** का चिन्तन करते हुए जीते जी इस 'मैं' **'जटिल्य'** की घुण्डी को खण्डित कर। इसके लिए तुझे सद्‌गुरु का शरणागत होना ही होगा, यह तू स्वयं नहीं कर सकता। **'मैं' 'जटिल्य' (Complex) की घुण्डी' 'की'** भस्मी भी नहीं है। इसका प्रमाण है, कि रात्रि के स्वप्न में तू जो था, वह अब तू नहीं है और अब उसकी भस्मी भी नहीं है। तू अप्रकट **'मैं'** जटिल्य (Complex) और अपनी जड़ सुषुप्तावस्था में देह व देहों के नाम-रूप की जिस स्वप्न-सृष्टि में विचरता है, निद्रा से उठने पर तेरी उस देह की भस्मी भी नहीं है। इस जटिल्य (Complex) की **'भस्मी'** नहीं होती, **'भस्मी' 'संहारित देह'** का ही प्रमाण है। वहाँ निर्माण, पालन व संहार तीनों नहीं होते।

पंच-महाभूतों में दृश्यमान सृष्टि में निर्माण, पालन और संहार तेरा अपना दृष्टिकोण (Concept) बन चुका है। यह मानसिकता ही तेरा **'मैं'** जटिल्य है, जो तेरी अदृश्य संहारित देह की तरह स्वयं में अप्रकट है। तू जीते जी अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् हो। निर्माण, पालन और संहार तेरे दृष्टिकोण (Concept) में ही नहीं रहेंगे। तुझे संसार में सब कुछ निर्मित व पालित ही लब्ध होगा और निर्लिप्त रहता हुआ तू उसका पल-पल रसास्वादन ही करेगा। निर्माण, पालन और संहार व समस्त पंच महाभूत अदृश्य **'संहारित देह'** के अधीन हैं। जब तू अपनी यथार्थ **'संहारित'** देह की अनुभूति कर लेगा, तो तेरा मानस **'संहारित देह'** का होगा। तेरी देह व जगत उससे निर्देशित होगा।

तू जिस दिन अपनी देह की भसम से आत्मसात् होने की इच्छा, चेष्टा, अथवा सद्‌गुरु के सद् निर्देशन में अनुभूति करेगा, उसी दिन से तेरा उत्थान

होना शुरू हो जाएगा। अपनी अप्रकट संहारित देह की अनुभूति तेरी धारणा से समस्त प्रपंच का उन्मूलन कर देगी, क्योंकि पंच महाभूत भी तेरी अपनी धारणा (Concept) में हैं। सार सहित संसार का रसास्वादन करने के लिए तुझे अपनी उस **'भस्मी'** से जीते जी आत्मसात् होना पड़ेगा, जो मात्र संहारित देह का ही प्रमाण है। अन्यथा तू निर्माण, पालन और संहार की अपनी मिथ्या धारणाओं से कभी मुक्त नहीं हो सकता।

निर्माण तूने देखा नहीं, न देख सकता है और न कर सकता है। निर्मित देह का निर्माण हुआ था, यह अवचेतना में तेरा दृष्टिकोण (Concept) है, तेरी **'चूक'** है। निर्माण हो **'चुका'** है, यह तू अवचेतना में देख रहा है। निर्माण **'चूक'** है और निर्मित हो **'चुका'** है। पालन हो रहा है, यह तू अवचेतना में देख रहा है। पालन **'चूक'** है और पालित हो **'चुका'** है। निर्माण व निर्मित पंच महाभूतों **में** है, पालन व पालित पंच महाभूतों **से** है। दोनों अप्रकट-अप्रकट देह अवचेतना में **'मैं'** जटिल्य के प्रकाट्य में दृश्यमान हैं, इसलिए गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था में दृश्यमान नहीं होते। इसी प्रकार संहार पंच-महाभूतों **में** होता है और होगा। अपना संहार भी तुझे दृश्यमान नहीं है। अतः संहार **'चूक'** है और तेरी देह **'संहारित'** हो **'चुकी'** है। अनाम, अरूप व अदृश्य संहारित देह **'अचूक'** है। **'चूक'** काल है, **'चुका'** अकाल है। **'अचूक'** महाकाल है। महाकाल का प्रतिनिधित्व वह अचूक **'संहारित देह'** युगों-युगान्तरों से सभी मानवों की एक ही है। उसकी पहचान का प्रमाण **'भसम'** एक ही है। उस पहचान (I.D.) को तू जीते जी धारण कर। यही तेरा एकमात्र कर्म है, जो सद्गुरु कृपा (**करम**) के बिना सम्भव नहीं है। इसके बाद तू अचुकाचूक अथवा अचूकाचूक कालातीत व स्थित्यातीत स्थिति में विचरण करेगा और समस्त प्रपंच तेरे बन्धन हेतु नहीं, रसास्वादन हेतु ही होगा।

***''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''***

**(13 फरवरी से 11 अप्रैल 2012)**

# संहार (शून्य)

## (भाग – 5)

**मा**नव-देह परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट, परम रहस्यमयी, विशेष चमत्कारिक एवं अति विलक्षण सुकृति है। मानव-देह, मानव के लिए है, लेकिन यह देहाकृति किसी मानव की नहीं है। युगों-युगान्तरों में विस्तृत सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का प्रतिनिधित्व करती सर्वोच्च एवं उत्कृष्टतम देह पाकर **भी** मानव **ही** सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक दुःखी प्राणी है। सुख और दुख परस्पर सापेक्षिक हैं। दुःख की अपेक्षा सुख है और सुख की अपेक्षा दुःख है। विभिन्न भावमय सुखों-दुःखों में विचरते मानव का अभावमय **'आनन्द'** स्वरूप **'मैं देह हूँ'** सन्देह में आच्छादित हो गया। मानव-देह सर्वोत्कृष्ट है, लेकिन मानव के **ही** दुःख सबसे अधिक हैं। ऐसा कोई प्राणी विश्व में नहीं है, जिसे कभी रोग न आएँ हों। आश्चर्य की बात है, कि नेत्रों से न दिखाई देने वाले सूक्ष्मतम वायरस एवं बैक्टीरिया भी मारक शक्तियुक्त हैं। ये बैक्टीरिया और वायरस मानव-देह में देह के रोगों के कारण हैं और कभी-कभी मृत्यु के कारण भी बन जाते हैं।

जन्म हुआ है, तो मृत्यु भी होगी तथा मृत्यु कभी भी, किसी भी क्षण, किसी भी स्थान व स्थिति में हो सकती है। प्रत्येक देह जो, जब, जहाँ, जैसी है, स्वयं में जगत सहित है। अतः सगे-सम्बन्धियों, मित्रों-शत्रुओं की वजह से मानसिक कष्ट भी सभी मानवों को समय-समय पर ग्रसित एवं त्रसित करते रहते हैं। साथ ही मानव **ही** उत्कृष्ट एवं आनन्दमय जीवन जीने का अधिकारी भी है। मानव देह में ईश्वरीय चेतना का स्रोत बुद्धि है। आनन्द,

मन का है, जिसमें मानव, **’देह सहित जगत सहित’** विचरण करता है। मन और बुद्धि दोनों अदृश्य हैं। दोनों के अदृश्य समन्वय का प्रकाट्य **‘सद्’** पंच-महाभूतों की देह सहित जगत में निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में दृश्यमान है।

परमात्मा स्रष्टा है और जीवात्मा दृष्टा है तथा दोनों अदृश्य हैं। मानव-देह दृश्यमान है और जब भी है, जगत सहित है। जीवात्मा, जो स्वयं में अदृश्य है, वह दृश्य को कैसे देखेगा? मानव-देह एक ऐसा जीवन्त उपकरण है, जिसका तनिक अवलम्बन लेकर ही आत्मतत्त्व **’मैं’** शब्द में प्रकट हो कर परमात्मा (स्रष्टा) द्वारा निर्मित, पालित व संहारित सृष्टि का दृष्टा बनते हुए रसास्वादन करता है। **‘मैं देह हूँ’** एक अदृश्य भाव है और स्वयं में सन्देह है। **‘समष्टि’** में **‘व्यष्टि’** और **‘व्यष्टि’** में **‘समष्टि’** मानव है। कोई मानव स्वयं में **‘एक’** व्यक्ति नहीं है। हर मानव जो, जब, जहाँ, जैसा व्यक्ति रूप में होता है, प्रकट अथवा अप्रकट अपनी कुल **‘समष्टि’** के साथ होता है। एक देह होते ही **‘अनेक’** स्वतः गले पड़ जाता है। जो, जब, जहाँ, जैसा है, वह कभी **‘एक’** नहीं होता। **‘एक’, ‘अनेक’** के साथ ही होता है। अनेक होंगे, तो **‘एक’** होगा ही। एक व्यक्ति सोता है, तो अनेक के साथ सोता है और उठता है, तो अनेक के साथ उठता है। सुषुप्ति जड़ता है, जिसमें एक सहित अनेक के नहीं होने का ज्ञान एवं अनुभूति भी नहीं होती।

योगी की निद्रा स्वयं में समाधि स्थिति है। योगी **‘एकान्त’** में विचरता है। यह विचरण स्थित्यातीत स्थिति एवं परम स्थिरता है। वह प्रभु से जुड़ा हुआ सहज समाधि में **‘निशास्थिर’** एवं **’समाधिस्थ’** रहता है। भाव में जब **‘एक’** नहीं होता, तो अनेक स्वतः नहीं रहते। वहाँ **‘कुछ नहीं’** होता है। एकान्त की मानसिक स्थिति में समाधिस्थ होते हुए तू देख लेगा, कि न तू एक है, न अनेक है। एक और अनेक के न रहने पर जो स्थिति होती है, वह आत्मतत्त्व की जागृति होती है। वह अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति तेरा अपना स्वरूप है। शास्त्र में आनन्द के लिए

**'अभावमय'** शब्द का प्रयोग किया है। जहाँ देह सहित जगत की किसी भी दृश्य अथवा अदृश्य विधा के प्रति कोई भाव न हो, उस **'अभावमयता से सराबोर आनन्दानुभूति'** समाधि स्थिति है।

सच्चिदानंद का **'सद्',** चेतन व आनन्द, **'चेतन',** सद् व आनन्द तथा **'आनन्द',** चेतन व सद् युक्त है। ईश्वर सद्, चेतन और आनन्द की त्रिवेणी का संगम **'सच्चिदानंद'** है। संगम होने के बाद सहस्त्र धाराओं में प्रवाहित सब कुछ त्रिवेणी ही होगा। ईश्वर अति विलक्षण कलाकार है, उसकी सृष्टि की प्रत्येक दृश्यमान विधा स्वयं में कलात्मक है। सच्चिदानंद जो भी रूप लेकर जब, जैसे क्रीड़ा में उतरा, वह समस्त प्रदर्शन **'सद्'** ही होगा। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड ईश्वर की बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन हैं। प्रदर्शन के बाद स्वयं में अदृश्य कलाएँ अधिक परिष्कृत होती हैं। इस प्रदर्शन का अनुपम एवं सर्वोत्कृष्ट नमूना मानव-देह है, जो ईश्वर द्वारा **ही** निर्मित, पालित एवं संहारित है। जब भी मैंने देह को देखा, तो देह निर्मित व पालित होती है। मैं **'संहार'** भूल जाता हूँ। पालन सहित प्रत्येक छोटे से छोटा निर्माण एवं अन्यथा सब कुछ संहार के अधीन है। संहार द्वारा कहीं भी, किसी का भी निर्माण, पालन रोका जा सकता है और आरम्भ किया जा सकता है।

**'संहार'** और **'संसार'** साथ-साथ हैं। जब तू जानबूझ कर (Delebrately), अज्ञानवश (Ignorantly) अथवा मूर्खतावश (Foolishly) **'संहार'** को उपेक्षित करता है, तो delebrately, ignorantly और foolishly ऐसा **'संसार'** खड़ा हो जाता है, जो सिरदर्दी व तनाव का कारण बना रहता है। न जीने देता है और न मरने देता है। संहार को उपेक्षित करने के कारण संसार पत्नी, सन्तान, कारोबार, मित्र, शत्रु, वैर-वैमनस्य, राग-द्वेष, ईर्ष्या-स्पर्धा, सुख-दुःख, रोग-दोष आदि कुछ भी बनकर जन्म-दर-जन्म तेरे गले पड़ा रहता है। यह संसार ईश्वर से विमुख ही करेगा। तुझे, तुझसे मिलने नहीं देगा। संहार का नाम लेते ही मृत्यु, शव, कफन, अर्थी, शमशान, चिता, भस्मी, भस्मीभूत शिव, विरक्ति आदि शब्द मन-मस्तिष्क में कौंधने लगते हैं। संहार को ध्यान में

रखना प्रभु के ध्यान का प्रथम सोपान है।

अध्यात्म और आत्मज्ञान सम्पूर्ण विश्व को भारत की देन है। भारत ने जो विश्व को दिया है, उसके सम्मुख समस्त विश्व को नत मस्तक होना होगा। गणित में शून्य (ज़ीरो) विश्व को भारत ने दिया। आध्यात्मिक दृष्टि से यह शून्य भी वास्तविक (Factual) शून्य नहीं है, क्योंकि देह-धारणा में सन्देह (मैं देह हूँ) रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में धारित (Conceptual) शून्य है। हमें मानव-देह अपने वास्तविक (Factual) एवं Insured शून्य (**'कुछ नहीं.'**) को Assure करने के लिए मिली है। संसार में हम **'कुछ नहीं'** (Nothing) लेकर आए थे और अन्ततः हमारा **'कुछ नहीं'** (भसम) यहीं रह जाता है। **'भस्मी'** स्वयं में शून्य नहीं है, बल्कि तेरे अपने स्वयं के **'कुछ नहीं'** (शून्य अथवा संहारित देह) का प्रमाण है। अपने Insured **'कुछ नहीं'** (शून्य) को Assure किए बिना हम पुनः पुनः संसार में **'जन्म-मृत्यु'** के स्वकल्पित काल-चक्र में भटकते रहते हैं। निर्माण, पालन और संहार दृश्यमान सृष्टि की तीन विधाएँ हैं और निश्चित रूप से **'माया में'** हैं। निर्माण **'माया में'** है और निर्मित **'मायामय'** है। पालन **'माया में'** है और पालित **'मायामय'** है। निर्माण और पालन **'माया में'** एवं निराकार हैं। निर्मित व पालित **'मायामय'** एवं साकार है। **'संहार' 'माया में' है, लेकिन 'मायामय' नहीं है। 'संहार'** हर पल हमारे सिर पर लटकता रहता है। लेकिन इसे उपेक्षित करके हम अपने भौतिक शून्य बढ़ाने में जन्म-दर-जन्म भटकते रहते हैं। भौतिक शून्य अति विस्तृत एवं सीमित गणनाओं में प्रयुक्त होता है, लेकिन इसका आध्यात्मिक स्वरूप सूक्ष्म, गणनातीत और असीम है। वहाँ भौतिक गणनाएँ भी असीम होने लगती हैं। आज मैं अपने इष्ट व सद्‌गुरु श्री श्री हनुमान जी की कृपा से शून्य (Zero) के आध्यात्मिक स्वरूप को आप अति जिज्ञासुओं के सम्मुख अनावृत करूँगा।

आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** मानव-देह की विशिष्ट चेतना के स्तर पर ही प्रकट होता है। मानव ही **'मैं'** शब्द लगाता है और मानव ही नाम रखता है। मानव जीवन के विभिन्न पहलू जिसके निर्देशन में चलते हैं, वह है

**'मानव-मन'**। मानव का मानव से अन्तर **'मन'** की दृष्टि से है। व्यक्ति तभी परिवर्तित होता है, जब उसका मन बदलता है। मन के बदलने से सोच व सोच की दिशा बदल जाती है। यह मन स्वयं में अदृश्य व अप्रकट है और मानव देह जगत सहित दृश्यमान है। दिमाग, ह्रदय, गुर्दे आदि अवयवों की तरह मन देह के भीतर नहीं है। सम्पूर्ण मानव-देह की आन्तरिक कार्यप्रणालियाँ एवं सभी अवयव सुचारू, परस्पर सुसम्बद्ध एवं दशानन (अविरल, अकाट्य, अबाध, निरन्तर, चिरन्तन, अति सारगर्भित, परम विशिष्ट, अति संक्षिप्त, उद्देश्यात्मक एवं गुणात्मक) रूपों में गतिमान रहते हैं और गतियाँ अदृश्य रहती हैं। साथ ही बाह्य जगत भी दशानन रूपों में सहभागी होता है। तेरे **'एक'** के मन में जगत सहित तेरी देह है। जो तेरा जगत है, वह तेरा है, जिसमें तेरी देह, जगत सहित है। तेरा दृष्टिकोण तेरे **'मन'** के अनुसार होता है। तेरे जगत में तेरे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। जब तूने अवचेतना में स्वयं को पहचाना, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, तो जो जगत तेरे साथ प्रकट हुआ है, वह तुझसे भिन्न नहीं है।

निद्रा ऐसी जड़ता की स्थिति है, जिसमें चेतना का स्तर बहुत कम होता है। इसलिए **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट नहीं होती। सोए हुए न तेरी देह होती है, न जगत होता है, लेकिन मन होता है। **यही मन निद्रावस्था में स्वप्न दिखाता है।** चेतना का स्तर तनिक बढ़ने पर जब **'मैं'** प्रकट होती है, तो सपना आना शुरू हो जाता है। एक सृष्टि प्रकट होती है, भले ही वह परस्पर असम्बद्ध हो। स्वप्न तेरे मानस से प्रकट हुआ, जिसमें तू भी था और जगत सहित था। अर्थात् **'मानस'** तुझमें नहीं है, तू मानस में है। फिर चेतना का स्तर कम होने पर पुनः निद्रा आ जाती है और शब्द **'मैं'** लुप्त हो जाता है। पुनः चेतना का स्तर बढ़ता है, तो निद्रा से उठकर तथाकथित जाग्रत हो जाता है। चाहे स्वप्न सृष्टि हो अथवा तथाकथित जागृति का प्रपंच हो समस्त सृष्टि बनी-बनाई नित-नूतन प्रकट होती है। उस स्वप्न में तुझ सहित अन्य अनेक लोग तेरी सृष्टि में थे और तू था, तो थे। तेरा ही मानस स्वप्न सृष्टि बन कर प्रकट हुआ। अब निद्रा से उठ कर जिसमें तू उसे स्वप्न

घोषित कर रहा है, यह भी तेरा स्वप्न है और उसी स्वप्न की निरन्तरता है। उस स्वप्न में तुझे नहीं पता था, कि यह स्वप्न है, क्योंकि तुझे ज्ञान नहीं था, कि तू सोया हुआ है। निद्रावस्था में तू निद्रा स्थिति का दृष्टा नहीं है। इसलिए तुझे स्वप्न सृष्टि की स्वप्नवत् प्रतीति नहीं होती। इसी प्रकार अब भी तुझे ज्ञान नहीं है, कि यह स्वप्न है।

तूने अपनी **'निद्रा'** देखी होती, तो तुझे उस मानस की अनुभूति होती, जिसमें तू न देह था, न तेरा कोई जगत था, लेकिन तू था। तभी तो उठकर कह रहा है, कि मैंने स्वप्न देखा। एक मानस से तू **'एक'** जगत सहित प्रकट होता है और उसी में सिमट कर अप्रकट हो जाता है। जो तू देखता है, वह सब अवचेतना में उठा हुआ देखता है। तू मात्र दृष्टा है। चेतना के विशिष्ट स्तर पर उस स्रष्टा (परमात्मा) ने तुझे जो दिखाना है, तेरे सम्मुख वही आएगा। दृश्यमान में कुछ परिवर्तन आएगा, तो उसी की इच्छा से आएगा। निद्रा से उठकर तथाकथित जाग्रत हो, तू दूसरी स्वप्न सृष्टि में निद्रावस्था में देखी स्वप्न सृष्टि को स्वप्न घोषित करता है। इसी प्रकार युगों-युगान्तरों से भ्रमित हुआ तू प्रारब्धवश, कर्मवश और कालवश भटक रहा है। इस दृश्यमान देह सहित जगत की तुझे स्वप्नवत् प्रतीति तब होगी, जब तू अपने आनन्दमय एवं अभावमय आत्मस्वरूप को पहचान जाएगा। **'मैं'** शब्द के प्रकट होने का अर्थ है, कि उस अदृश्य जीवात्मा (दृष्टा) के लिए पंच-महाभूतों का खेल (चलचित्र) प्रारम्भ हो गया। जीवन रूपी चलचित्र में जब मानव की प्रविष्टि होती है, तब तक उसके जीवन के बहुत से दृश्य निकल चुके होते हैं।

किसी मानव ने अपने जीवन रूपी चलचित्र का प्रारम्भारम्भ (गर्भावस्था), प्रारम्भ (जन्म) और शैशवावस्था (पालन-पोषण) नहीं देखी। जब किसी ने स्वयं को देखा, तो जगत सहित जो, जब, जहाँ, जैसा निर्मित और पालित पाया। साथ ही किसी मानव ने जीवन रूपी फिल्म का अन्त (मृत्यु) और अन्तान्त (भस्मी) भी नहीं देखा। अर्थात् हर मानव चलते चलचित्र में संसार रूपी महानाट्यशाला से बाहर निकाल दिया जाता है।

अगले जन्म में गर्भावस्था, जन्म और शैशव पुनः अतीत बना रहता है और मृत्यु तथा भस्मी भविष्य बनी रहती है। अर्थात् इस प्रपंचमय चलते चलचित्र के नेपथ्य में छिपे परदे को, चलते चलचित्र के दौरान कोई मानव देख नहीं पाता। रंगीन चलचित्र परदे पर ही चलता है, लेकिन पर्दा श्वेत एवं अचल है। साथ ही परदा भावपूर्ण चलचित्र के किसी **'भाव'** से प्रभावित हुए बिना विविध भावपूर्ण चलचित्र की प्रस्तुति करता है।

चलचित्र का निर्माता यह श्वेत पर्दा नहीं है। सफेद पर्दे पर वही फिल्म पीछे से प्रस्तुत होती है, जो पहले से अंकित (Recorded) होती है। पर्दा उस अंकित फिल्म को मात्र चलचित्र के रूप में प्रस्तुतिकरण का माध्यम है। सम्पूर्ण जीवन रूपी फिल्म जो चलती है, वह बन चुकी है। निर्माण, पालन और संहार हो **चुका है**। यह अचल, अप्रभावित एवं श्वेत निर्मल पर्दा आनन्दमय एवं अभावमय आत्मतत्त्व है। चलचित्र शुरू होने से पहले कुछ ट्रेलर आदि चलते हैं। उनसे पहले सफेद पर्दा दृश्यमान होता है और समाप्त तथा समाप्त की समाप्ति के बाद सफेद पर्दा पुनः दृश्यमान होता है। जीवन रूपी चलचित्र में मृत्यु **'समाप्ति'** है और **'भस्मी'** समाप्त की समाप्ति है। साथ ही मध्यान्तर में भी सफेद पर्दा दृश्यमान होता है, लेकिन फिल्म के दृष्टा को पूर्ण ज्ञान होता है, कि चलचित्र मध्यान्तर से पहले जहाँ छोड़ा गया था; मध्यान्तर के बाद वहीं से शुरू किया जाएगा। मानव-जीवन रूपी चलचित्र के मध्य में निद्रावस्था मध्यान्तर की तरह होती है। क्योंकि अगले दिन की फिल्म वहीं से शुरू हो जाती है, जहाँ पिछली रात्रि सोने से पहले छुटी थी। मानव चलती फिल्म में आया और चलते चलचित्र में ही चला गया।

यज्ञ-हवन, तीर्थ-यात्रा, जप-तप, ध्यान-समाधि, प्राणायाम-प्रत्याहार, विशिष्ट प्रकरणों श्रवण-प्रवचन आदि द्वारा सद्‌गुरु चलते चलचित्र में रुकावट डालते हुए कृपा करके नए दृश्य दिखाता है। प्रारब्धवश, कालवश, कर्मवश अबाध चलते चलचित्र को सद्‌गुरु रुकावट डालकर रोक देता है और सफेद पर्दा (समाधि) दिखा देता है, जिस पर कोई चलचित्र नहीं चल रहा। उसके

बाद जीवन रूपी फिल्म पुनः शुरू करा देता है। परदा **'कुछ नहीं'** है, यह **'कुछ नहीं'** तेरा आनन्द स्वरूप है और एक ही है। तू भी **'एक'** है, तेरा स्वरूप भी **'एक'** है। चलते चलचित्र में तू एक, अनेकों के साथ है। सद्‌गुरु द्वारा डाली गई रुकावट के बाद चलने वाला चलचित्र वहाँ से प्रारम्भ नहीं होता, जहाँ रुकावट से पहले छोड़ा गया था। आगे चलने वाला चलचित्र काल व कर्म की वशताओं से परे और प्रारब्ध के लेखे-जोखे से अतीत होता है। इसके बाद सब कुछ आनन्दमय एवं दैवीय ही होता है। तेरा एक का मानस **'अदृश्य'** है, जब वह प्रकट होता है, तो तू जगत सहित देह रूप में दृश्यमान होता है। जब अप्रकट होता है, तो तू देह सहित जगत सहित अदृश्य हो जाता है। प्रकटीकरण में तेरा एक का होना आवश्यक है। वह अदृश्य मानस तेरे एक का है, तू स्वयं में अदृश्य है। जब प्रकट होता है, तो तुझे अदृश्यता का भास नहीं होता। तू अवचेतना में दृश्य के साथ तद्‌रूप सा हो जाता है। तेरे अदृश्य में तू एक भी नहीं है। निद्रा, मृत्यु, भस्मी तेरा अदृश्य है। तुझे तेरे इस अदृश्य का ज्ञान होते हुए भी तू उसे देख नहीं सकता, मात्र उसकी अनुभूति कर सकता है।

पंच-तत्त्वों का संगम एक मानव-देह सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि (जो अनादि काल से निर्मित, पालित और संहारित है और अनन्त तक होगी) का संघनित स्वरूप एवं प्रतिनिधि है। लेकिन मानव न दृष्टा है और न अपनी देह व जगत का स्रष्टा है। पंच-महाभूतों में **'अग्नि'** और **'जल'** दो तत्त्व बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अग्नि द्वारा जल चुकने के बाद मृतक काया पंच-महाभूतों में ही विलीन हो जाती है। **'अग्नि'** के साथ **'जल'**, जलना, जलाना, जल चुकना, जलाल, जलवा है ही। जलनोपरान्त भस्मी है। समस्त जलवा **'जल'** का है। **'जल'** जाने के बाद **'अग्नि'** सहित अन्य तीन (पृथ्वी, वायु और आकाश) तत्त्व स्वतः नहीं रहते। मृत्यु हुई अर्थात् मौत आई। शव का अग्नि दहन हुआ और **'शव'** जल गया। **'जल'** ने जल छिपा दिया और जो जल चुका उसकी **'भस्मी'** दिखा दी। **'जलने'** के बाद का प्रमाण भस्मी पंच-तत्त्वों से परे तत्त्वातीत तत्त्व है। **'भस्मी'** से किसी की पहचान सम्भव

नहीं है। **'भस्मी'** किसी मृतक की नहीं, बल्कि जो जल कर **'संहारित'** हो गया, उसका प्रमाण है। जिसका संहार हो चुका है, उसका नाम **'संहारित देह'** है। संहारित देह सबकी एक ही है। **'भस्मी'** एक पदार्थ है, जो पदार्थातीत है और देहातीत है। यदि तू उस भस्मी को जीते जी आत्मसात् कर ले, तो तेरी **'संहारित देह'** प्रकट हो जाएगी। यह तेरी यथार्थ देह है, जो स्वयं में विदेह है। अतः तू सद्गुरु का शरणागत हो, वही तुझे जीते जी भस्मी से आत्मसात् कराते हुए सफेद पर्दा (आत्मतत्त्व) दिखा देगा। उसकी कृपा से अभावमय आनन्द की अनुभूति से तुझे तेरे अपने **'कुछ नहीं'** (सफेद पर्दा, आनन्दमय मानस अथवा आत्म स्वरूप) का दर्शन हो जाएगा।

परमात्मा (स्रष्टा) **'एक'** है और जीवात्मा (दृष्टा) भी **'एक'** ही है। इस चलचित्र में एक से अनेक होते हुए तू जो कर-करवा, पा-खो, बन-बना रहा है, वह तो पहले से ही अंकित (Recorded) है। तू चलते चलचित्र के ख्यालों में युगों-युगान्तरों से चल रहा है। सद्गुरु का मिलना और उसके द्वारा प्रकट रुकावट तथा उसके द्वारा करवाए गए प्रकरण यज्ञ-हवन, जप-तप आदि प्रारब्ध रूपी कैसेट में अंकित नहीं होते। सद्गुरु प्रारब्ध के लेखे-जोखे के अनुसार चलते चलचित्र को काट कर अचल, अप्रभावित सफेद पर्दे अथवा आनन्दमय व अभावमय आत्मस्वरूप की **'स्मृति'** जाग्रत कर देता है। इस चलायमान सृष्टि रूपी चलचित्र में अपनी अचल स्थिति में प्रविष्टि पाने के लिए तुझे जीते जी संहार का आश्रय लेना पड़ेगा। तुझे इस चलायमान प्रपंचमय पंच-महाभूतों की सृष्टि का वह **'पदार्थ'** (भस्मी) जीते जी अधिग्रहण करना होगा, जो तेरे आत्मस्वरूप की भाँति स्थिर, अचल व अभावमय है। इस प्रपंच में तू जो भी बन-बना ले, यही भस्मी तेरा निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है। तू जीते जी इस वास्तविक वस्तु से स्वयं को पहचान और अवधारणा कर, कि **'मैं भस्मी हूँ'** अन्यथा ये प्रपंचमय दृश्य तुझे न जीने देंगे, न मरने देंगे।

भौतिक गणनाओं में **'शून्य'** का महत्त्व बहुत अधिक है, लेकिन तभी तक है, जब तक वह किसी अंक (Figure) के दाईं ओर लगे। एक अथवा

नौ तक किसी भी अंक के दाईं ओर एक-एक शून्य का बढ़ना दस गुना वृद्धि है। केवल शून्य का अर्थ है–'**कुछ नहीं**' (Nothing)। किसी अंक से पहले (**01, 001, 09, 009**) चाहे कितनी भी ज़ीरो लगें, रकम में वृद्धि नहीं होगी। भौतिक जगत में यह रकम की वृद्धि भी किसी के हाथ में नहीं है। क्योंकि रकम या धन की वृद्धि के लिए दो अंकों के मध्य में और किसी अंक के दाईं ओर शून्य लगाना कोई गणित के प्रश्न का हल करना नहीं है, जो मानव के हाथ में हो। यह भी पूर्णतः परमात्मा के ही अधीन है। साथ ही अपने धन को दस गुणा, सौ गुणा, हज़ार गुणा बढ़ाने के लिए मात्र शून्य लगाने से काम नहीं चलेगा। तुझे जुगाड़ लगाने पड़ेंगे, दुकान या व्यापार में परिश्रम करना पड़ेगा और अनेक प्रकार के प्रबन्धन करने पड़ेंगे। तूने जितना धन अर्जित किया है, तदनुसार गणना के बाद पता चलेगा, कि शून्य कहाँ लगा है–दाँयी तरफ, बाँयी तरफ अथवा दो अंकों के मध्य में।

पंच-महाभूतों का खेल प्रपंच है। निर्मित और पालित का संहार अवश्यम्भावी है और किसी भी पल हो सकता है। अतः दोनों पर संहार का अधिपत्य है। जैसे ही निर्माण शुरू होता है, उससे पहले से संहार का वर्चस्व रहता है। निर्माण अथवा निर्मित, पालन अथवा पालित की कोई भी अवस्था, कोई भी स्थिति '**संहार**' के बिना नहीं है। संहारोपरान्त निर्माण और पालन समाप्त हो जाता है, वस्तुतः संहार निर्मित और पालित का ही होता है। संसार में निर्माण-निर्मित, पालन-पालित दृश्यमान है, लेकिन '**संहार**' अदृश्य है। तेरा सारा ध्यान निर्माण और पालन में ही लगा रहता है, जबकि संहार का शिकंजा तेरी देह के लिए गर्भाधान से पहले पड़ा हुआ है। तू '**संहार**' के स्वामी के अधीन है। '**संहार**' का अर्थ है '**विरक्ति**'। भस्मी शिवत्व की स्थिति विरक्ति की द्योतक है। शिव का एक नाम '**संख्यासमापनाय**' भी है। जहाँ समस्त संख्याएँ समाप्त हो जाती हैं। एक '**संहार**' की मान्यता अन्य समस्त सांसारिक मान्यताओं से बाहर ले आएगी। तूने जगत में अन्य लोगों का संहार होते देखा है। ऐसा ही तेरा भी होगा, तू जानता और मानता भी है। जीते जी तू उसकी अवधारणा करते हुए अनुभूति कर। भविष्य ढोने की

प्रतिभा तेरी शक्ति है। **'भस्मी'** तथाकथित तेरी देह का ऐसा निश्चित, दर्शित व परिलक्षित भविष्य है, कि इसकी अवधारणा का बोझ तेरा कोई वर्तमान नहीं ले सकता। भस्मी का चिन्तन जब वर्तमान पर **'हावी'** होता है, तो इतना **'हैवी'** (भारी) होता है, कि वर्तमान टूट जाता है। वर्तमान के टूटते ही अतीत व भविष्य रहता ही नहीं। तेरी हाय! हाय!, स्वतः वाह ! वाह ! हो जाती है। तू काल से अकाल में प्रविष्टि पा लेता है। अब जो संसार प्रकट होगा, वह रसास्वादन का हेतु और तुझे भवसागर से तारने वाला होगा। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

सदेह जीव को सन्देह हो गया, कि 'मैं देह हूँ'। जन्म-मृत्यु, पाप-पुण्य, पाना-खोना, लाभ-हानि, प्रेम-घृणा, सुख-दुःख, काल-बन्धन, कर्म-बन्धन, प्रारब्ध-बन्धन सब इस सन्देह रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में हैं। इस सन्देह में मानव की समस्त सोच **'संशयात्मक'** हो गई और यह जन्म-दर-जन्म **'संचय'** व **'संग्रह'** करने में जुटा रहता है। जन्म देखा नहीं, लेकिन हर मानव उसे मानता है, मनवाता है और मनाता है। मृत्यु देखनी नहीं, उससे भयभीत रहता है और बचने के विविध उपाय करता रहता है। मृत्यु को मानते हुए भी मनाता नहीं और जाने-अनजाने उपेक्षित करता है, कि उसमें तो सारी कहानी समाप्त हो जाएगी। कहानी के दौरान दुःखी, विक्षिप्त, रोगों-दोषों से ग्रसित रहता है।

अपना निर्माण, होश सम्भालने तक पालन एवं अन्ततः (अन्त में तय) संहार (मृत्यु) होते किसी मानव ने नहीं देखा, लेकिन फिर भी होश सम्भालने से लेकर होश जाने तक हर मानव अपनी देह व देहों (जगत) के लिए सुख-साधन संचय करने एवं पालन-पोषण में ही जुटा रहता है। **'पालन'** शब्द का मूल **'पाचन'** है। जिस प्रकार **'संशय'** में **'संचय'** छिपा है, उसी प्रकार **'पालन'** में **'पाचन'** शब्द छिपा है। जिसे हम मानव **'पालन-पोषण'** कहते हैं, वस्तुतः वह **'पाचन-पोषण'** है। अज्ञानवश मानव अपने और बच्चों के लिए खाद्य सामग्री, सुख साधन एवं औषधि आदि का प्रबन्ध करने को **'पालन-पोषण'** समझता है। भोजन पचेगा, तो पोषण होगा और वह भोजन

हृष्ट-पुष्ट देह रूप में **'पुष्टिवर्धक'** होगा, अन्यथा वही भोजन विपरीत होता हुआ रोगों का कारण बनेगा और विष समान हो जाएगा। किसी-किसी को फल और दूध से भी एलर्जी हो जाती है। यह एलर्जी वास्तव में अल्लाह की मर्ज़ी है, क्योंकि पालन-पोषण करने वाला एक मात्र वही है।

जब-जब देह मिलती है, भस्मी के लिए Insured ही मिलती है। यह आध्यात्मिक शून्य तेरे अपने पास ही है। तू मरेगा, मरने के बाद तेरी मृतक देह का शव चिता की अग्नि में जलेगा, फिर तेरी भस्मी बनेगी। उस भस्मी और चिता के मध्य तेरी एक देह और प्रकट होगी, जो तेरी अदृश्य संहारित देह है। निर्माण-निर्मित, पालन-पालित और संहार से परे पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलयित अदृश्य संहारित देह तेरी है। उस संहारित देह का एक मात्र प्रमाण स्वयं में अनाम व अरूप भस्मी है। संहारित देह ही तेरी वास्तविक पहचान (I.D.) है। पंच-महाभूतों से निर्मित, पालित एवं नाम से कुण्ठित तेरी दृश्यमान देह प्रपंच या जादू है और पल-पल बदलती है। यह देह निर्मित व पालित ही नहीं संहारित भी है। तेरी दृश्यमान देह के प्रमाण (I.D.) बहुत से भिन्न-भिन्न हैं। ये प्रमाण बनते-मिटते रहते हैं, लेकिन तेरी अदृश्य संहारित देह बनने-मिटने वाली है ही नहीं और उसका प्रमाण **'भस्मी'** भी ऐसी ही है। **'संहारित देह'** तेरी यथार्थ विदेह देह है, जो समस्त प्रपंच से परे है और सबकी एक ही है। **यह संहारित देह शंकर का अपना शून्य है** जिसमें कोई विवाद नहीं है, क्योंकि यह **'सद्'** है। आध्यात्मिक दृष्टि से इस Insured शून्य (संहार) को Assure करना ही ऐश्वर्य है।

माँ के गर्भ में गर्भाधान के बाद जिनका जन्म से पहले गर्भपात भी हो जाए, वे भी अपने इस शून्य (कुछ नहीं) के लिए Insured ही आते हैं। हम सन्देहवश (मैं देह हूँ) देह धारणा में तथाकथित अपनी देह, धन, सम्पदा, बहुमूल्य आभूषण, जवाहरात, मकान, दुकान, कार आदि का बीमा (Insurance) कराते हैं। हम बीमा कम्पनी से जिस-जिस भौतिक उपलब्धि का दावा करते हैं, मानव-देह सहित डिग्रियाँ, पद, प्रतिष्ठा, प्रौपर्टी, धन-सम्पदा, सन्तान, परिवार आदि जो सब कुछ है, वह तो प्रभु का है। प्रभु

उसके लिए मुझे Insured करके क्यों भेजेंगे ! प्रभु ने एक न एक दिन हमसे अपना **'सब कुछ'** यहीं रखवा लेना है। प्रभु की इच्छा होती है, तो किसी अन्य को दे देते हैं, अन्यथा प्रभु की धरोहर को धरती अपने गर्भ में समेट लेती है। स्वर्ण, चाँदी, बहुमूल्य रत्न, अन्न, धन और दिव्य आध्यात्मिक ग्रन्थ प्रभु की धरोहर हैं। प्रभु का अपना सब कुछ उसके लिए **'कुछ नहीं'** है। हमारा अपना **'कुछ नहीं'** है और वही शून्य अथवा **'कुछ नहीं'** हमारा है, जो वस्तुतः हमारे लिए हमारा **'सब कुछ'** है।

संहार लगातार तेरे साथ ही है। तू जानता है और मानता है, कि अन्ततः तेरी मृत्यु होगी ही। तेरी देह में ही अद्‌भुत चमत्कारिक रहस्य छिपे हैं। तू जानता है, कि तेरी साँस टूटते ही तेरी डिग्रियाँ, प्रतिभाएँ, मकान, दुकान, सोना, चाँदी, आभूषण, पद, प्रतिष्ठा, जनबल, धनबल, प्रौपर्टी और तेरा परिवार आदि तेरे लिए **'कुछ नहीं'** (Nothing) ही हो जाएगा। तेरी मृत्यु तुझसे इतना सब कुछ पल भर में छीन सकती है, उसे तू उपेक्षित कैसे कर सकता है ? तेरी वे प्राप्तियाँ कैसे हो सकती हैं, जो तेरी सांस टूटते ही एकदम तुझ से छीन ली जाएँगी। जो मृत्यु एकदम तेरा **'सब कुछ'** छीन सकती है, वह तुझे क्या दे सकती है, इसका अनुमान भी तू नहीं लगा सकता। जीते जी अपनी मृत्यु की अनुभूति (Realisation) तुझे तेरा **'अमरत्व'** दिला देगी। तू स्वयं में जन्म-मृत्यु से परे जनमेजय व मृत्युंजय हो जाएगा।

'भस्मी' पंच-महाभूतों से निर्मित, पालित किसी देह की मृत्यु का प्रमाण नहीं है, बल्कि मृत्यु और चिताग्नि में दहन के बाद प्रकट उस अदृश्य व अप्रकट संहारित देह का प्रमाण है, जो युगों-युगान्तरों से चारों युगों के मानवों की एक ही है। किसी जीवित व्यक्ति को जलाया जाए अथवा कोई आत्महत्या करने के लिए आग में कूद पड़े, तो भी वह पहले मरेगा। अर्थात् पहले उसकी मृत्यु होगी, फिर पूर्णतः जलने और पंच-महाभूतों में देह के विलय होने के बाद उसकी भस्मी बनेगी। दूसरे शब्दों में **जल कर मरेगा और मर कर जलेगा, तब भस्मी प्रकट होगी।** (Died because of burns

and burnt because of death) जीते जी 'मैं देह हूँ' सन्देह में तू भीतर से ईर्ष्या, द्वेष, वैर, वैमनस्य, स्पर्धा, तनाव, कुण्ठा, आधि, व्याधि, उपाधि, मल, विक्षेप आदि-आदि से जल रहा है, क्योंकि अपनी अनिर्वचनीय सुख-शान्ति का प्रतीक अपना शून्य (कुछ नहीं) खो बैठा है। जब-जब तू मरता है, तेरे शून्य तेरे लिए कुछ नहीं रहते। अपनी सभी भौतिक प्राप्तियों का तो तू रख-रखाव भी नहीं कर सकता। इन्हें अपने साथ ले जाने की तो बात ही दूर है। भौतिक शून्य के पीछे भागते-भागते तूने अपने संहार रूपी शून्य को उपेक्षित कर दिया। जन्मों-जन्मान्तरों से अपने उस शून्य (संहारित) को भौतिक शून्यों में खोज रहा है। इसलिए तेरी यह दुर्गति हुई है। **'कुछ नहीं'** (Nothingness) या शून्य तेरा अपना है। उसे जीते जी सुनिश्चित कर ले। तू अपने शून्य से अवगत है और वह विरक्ति रूप में तेरे पास है। तू उसे जीते जी भस्मी की अवधारणा द्वारा Assure कर ले। इसके लिए तुझे आर्तनाद करना होगा। प्रभु के समक्ष रोते हुए गिड़गिड़ाना होगा, कि ''प्रभु ! मुझे मेरी मृत्यु दिखा दो। मेरी देह की भस्मी से आत्मसात् कर दो।'' यदि तू जीते जी अपनी देह की भस्मी **Assure** कर ले, तो भौतिक हिसाब-किताब और अपने खातों के शून्यों की ओर से बेपरवा ही रहेगा। ज़ीरो स्वतः तेरे धन के साथ जुड़ती रहेंगी। यही तेरी मानव-देह का सदुपयोग है और मानव होने के नाते तेरा यही **'धर्म'** और **'कर्म'** है, जो मात्र करम (कृपा) साध्य है।

***''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''***

**(20 मई से 25 मई 2012)**

# संहार (कालातीत)

## (भाग – 6)

**म**ानव-देह ईश्वर प्रदत्त सुवर्ण अवसर एवं स्वयं में एक कैरियर है। मुझे मानव-देह मिली है, जो मेरी नहीं है। देहावधि में जीते जी इसके संहार से आत्मसात् होना ही इसका लक्ष्य है। मानव-देह स्वयं में ईश्वर प्रदत्त **'उपहार'** नहीं है, **'संहार'** है। स्रष्टा किसी भी समय, स्थान और स्थिति में इसे ले जाता है। अतः **'संहार'** ही मानव देह का श्रंगार है। इतनी उत्कृष्ट एवं परम विलक्षण ईश्वरीय सुकृति मुझे क्यों मिली है, जो किसी भी क्षण बिना पूर्व सूचना के मुझसे छीन ली जाएगी ? यह प्रश्न नहीं, किसी भी मानव की रूह से उठी जिज्ञासा है। जो मानव देह प्रभु ने मुझे दी है, ऐसी समस्त चराचर प्राणी जगत (जलचर, थलचर, नभचर) में किसी की नहीं है और न हो सकती है। जीने के लिए अथवा मानव-देह के लिए बहुत कुछ की आवश्यकता नहीं है। जब मानव अपनी समस्त शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियों को **'देह के लिए'** कुछ न कुछ करने में ही झोंक देता है, तो वहाँ दैवीय अधिनियमानुसार डिवाइन पीनल कोड (DPC) के अन्तर्गत बहुत सी सज़ाओं में घिर जाता है।

समस्त पशु-पक्षी प्राणी जगत को बिना कुछ कारोबार, व्यापार किए उनके अनुकूल भोजन और रहने की पूर्ण व्यवस्था प्रकृति प्रदत्त सुलभ है। मानव होश सम्भालते ही अपनी देह व जगत के लिए किसी न किसी **'प्रयोजन'** से विभिन्न **'परियोजनाएँ'** बनाता रहता है। उन्हें क्रियान्वित करने के लिए **'प्रयत्न'** करते हुए व्यस्तता के नाम पर अस्तव्यस्त रहता है। हर मानव अपनी प्रतिभाओं के अनुसार यथाशक्ति कुछ न कुछ करता

है। किसी भी प्रयोजन से बनाई गई परियोजनाओं का सफल होना किसी के हाथ में नहीं है। कई बार प्राप्ति होती नहीं है, कई बार सोच से कम या अधिक होती है और अनेक बार ऐसा भी होता है, कि सोचा कुछ होता है और जो होता है, वह सोच से नितान्त परे होता है। कई बार प्राप्ति हमारी परियोजनाओं के प्रतिकूल भी होती है। जीवन में देह के लिए **चाहतों** में घिरे हुए तथा इन्हें पूरा करने के प्रयत्नों में लगे हुए एक दिन देह की अवधि समाप्त हो जाती है। जीव आवश्यकता से अधिक किए गए प्रयत्नों के एवज में हुई अति प्राप्तियों को ही नहीं, प्रारब्ध के अनुसार हुई प्राप्तियों को भी भोग नहीं पाता। साथ ही प्रारब्ध-दर-प्रारब्ध भी बनता रहता है।

**'ईश्वर'** का एक नाम **'अव्यय'** है। देह के लिए मानव व्यापार करता है। **'व्यापार'** सांसारिक **'सोच'** है, जिसमें दिल-दिमाग **'व्यय'** में ही लगा रहता है। प्रभु की अपार कृपा के लिए **'अव्यापार'** किया जाता है। जब तू उस **'अव्यय'** की अनुभूति के लिए सद्‌गुरु के सद्‌निर्देशन में **'अव्यापार'** करता है, वही तेरे जीवन का **'अर्थ'** है। **'अव्यापार'** बुद्धि ही **'बोध'** है, ईश्वरीय बुद्धि है। सद्‌गुरु के सद् निर्देशन में किया-करवाया और हुआ, प्रत्येक कृत्य **'अव्यापार'** होता है। अव्यापार वह है, जिसमें साधक का एक ही लक्ष्य होता है, कि आज **'मैं'** हूँ, तो क्यों हूँ? यह प्रयोजन नहीं है, मानव देह व जीवन का लक्ष्य है। मानव का लक्ष्य देख कर यह जनवाने के लिए अव्यापार की योजना परमात्मा स्वयं बनाते हैं। इस **'अव्यापार'** में **'व्यय'** करने और प्रसन्नतापूर्वक देने-लेने में आनन्द की अनुभूति होती है। इस योजना के तहत जो कृत्य करवाए जाते हैं, उन्हें **'यजन'** कहते है। यजन ईश्वरीय **'जश्न'** है, जिसमें प्रभु ही सब **'यत्न'** करवाते हैं। **'यजन'** की समस्त योजना दैवीय निर्देशानुसार सद्‌गुरु स्वयं बनाता है। भावानुसार समस्त प्रबन्धन दैवीय ही होता है। देवता भाव बनाते हैं, भाव विभोर करते हैं, जिसमें तू आविर्भूत रहता है। इस जशन में आनन्द ही आनन्द है और प्रारब्ध की केस फाइल ही नष्ट कर दी जाती है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

अध्यात्म और आत्मचिन्तन देह द्वारा, देह के परे, देह से बाहर का विज्ञान है। जहाँ देह की समस्त सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं, वहाँ से आत्म चिन्तन प्रारम्भ होता है। मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, कि मुझे मानव-देह क्यों दी है? यह काहे के लिए है? युगों-युगान्तरों में विस्तृत अनादि से अनन्त तक सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों में पंच-महाभूतों की समस्त विधाओं, मानव देहों और चराचर प्राणी (असंख्य जलचर, थलचर एवं नभचर) जगत सहित जो था, है और होगा उसकी संघनित प्रतिनिधि एक मानव देह है। दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण दृश्यमान महाब्रह्माण्ड एक मानव-देह का विस्तार है, जिसकी निर्माण, पालन व संहार तीन विधाएँ हैं। **'था'** (अतीत) और **'गा'** (भविष्य) की गाथा से परे प्रत्येक दिन **'नित नूतन'** है और मानव-देह नित नूतन है। **'नित'** (दिन) नित नूतन है। जो दिन कल था, वह कल नूतन था। आज का दिन नूतन है और जो कल दिन होगा, वह नूतन होगा। कल की देह कल नूतन थी, आज की देह आज नूतन है और जो कल की होगी, यदि होगी, तो नूतन होगी। **यह कोई कालचक्र नहीं कल-कल करती बहती जीवन सरिता है।**

मानव देह एवं जीवन प्राकृतिक (Natural) है। जीवन के हर मोड़ पर हमारा स्वयं का हस्तक्षेप इसके सहज व स्वतः आनन्दमय प्रवाह को बाधित कर देता है। मानव-देह का दैवीय **'अर्थ'** है, जिसके विषय में हम विचार ही नहीं कर पाते। मानव-देह **'काल से'** बँधी है। समय, स्थान और स्थिति काल की तीन विधाएँ हैं। तीनों में **'स्थिति'** महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि समय और स्थान **'स्थिति'** के अधीन हैं और **'स्थिति'** पूर्णतः प्रभु के अधीन है। करोड़ों महा ब्रह्माण्डों का स्वामी ठोस-घन-शिला की भाँति स्थिर है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन व संहार कर्ता (परमात्मा) स्वयं में **टस से मस** नहीं होता। **'स्थिति'** के स्वामी का भृकुटि-विलास यह दृश्यमान जगत है। तेरा स्वरूप **'स्थिर'** है। जब तू स्वयं में **'स्थित'** होगा, तब तुझे इस रहस्य की अनुभूति होगी। **'स्वप्न दर्शन'** द्वारा तू अपनी स्थिरता को अनुभव कर सकता है। स्वप्न में तूने जगत सहित कहाँ-कहाँ भ्रमण किया, लेकिन निद्रा

से उठकर तू उस सृष्टि पर विवेकपूर्वक विचार करने पर जान जाता है और आश्वस्त हो जाता है, कि तू कहीं आया-गया नहीं। स्वप्न का सम्पूर्ण एपीसोड मानस से प्रकट होकर वहीं समाहित हो गया।

काल की समय, स्थान और स्थिति तीन विधाओं में से **'समय'** के स्वयं में वर्तमान, भूत और भविष्य तीन अंग हैं। जब हम किसी समय में **'वर्तमान'** की बात करते हैं, तो भूत एवं भविष्य उसके साथ होता ही है। **'भूत'** या अतीत से हम गुज़रे थे, वर्तमान में हम हैं और भविष्य कल्पना या सम्भावना मात्र है। समय (भूत, भविष्य, वर्तमान), स्थान एवं स्थिति (काल) से बँधी देह की एक अवस्था ऐसी है, जिसमें कुल समय अपने विभिन्न भूत, भविष्य एवं वर्तमानों सहित अतीत होते हुए समयातीत हो जाता है। वह अवस्था है—**'भस्मावस्था'**। प्रभु ने कृपा करके प्रपंच से निकलने के लिए भविष्य का वह भविष्य सुनिश्चित किया हुआ है, जहाँ समय अपने तीनों अंगों (भूत, भविष्य, वर्तमान) सहित समाप्त हो जाता है। भस्मावस्था प्रारब्ध, काल, कर्म सबसे परे होने के कारण अवस्थातीत है, इसलिए **'देहातीत'** देह की अवस्था है। **'देहातीत'** होने के कारण देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, गुण, अवगुण आदि सभी से परे है।

मानव के सम्पूर्ण जीवन काल में शैशव व शव दो अवस्थाएँ ही सुनिश्चित हैं, अन्य अवस्थाएँ हो भी सकती हैं, नहीं भी। तेरे प्रत्येक **'रूप'** अर्थात् **'सर्वरूप'** का एक भविष्य ऐसा है, जो स्वयं में **'रूप रहित'** है। भस्मी तेरे अनेक में प्रत्येक के प्रति रूप का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है। जो, जब, जहाँ, जैसा भी है, था और होगा उसकी जान कभी भी जा सकती है और भस्मी बन सकती है। जीवनकाल **में** प्रत्येक भविष्य अनिश्चित है। भविष्य की कोई भी योजना स्वयं बना कर जीव वस्तुतः अहंवश **'स्थिति'** पर अधिपत्य करना चाहता है, जो पूर्णतः प्रभु के हाथ में है। वहाँ उसके निर्णय कभी-कभी सर्वनाश के कारण बन जाते हैं। उससे जीवन का सहज प्रवाह और स्वतः भाव अवरुद्ध हो जाता है। समय और स्थान हित पूर्वक तभी लागू होता है, जब स्थिति के स्वामी की कृपा-दृष्टि होती है। जीव चाहे कितनी

घड़ियाँ बाँध ले, लेकिन उसे स्वीकार करना होगा, कि वह स्वयं घड़ी से बँधा है। देह के संदर्भ में **'भस्मी'** देह का निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है, लेकिन स्वयं में उस भस्मी का कोई वर्तमान, भूत और भविष्य नहीं है। अतः वह **समयातीत** है। काल के समय, स्थान, स्थिति तीन अंगों में से एक अंग टूटने पर **'काल'** का उल्लंघन हो जाता है। वह अकाल **स्थित्यातीत** स्थिति स्वयं में **समयातीत** और **स्थानातीत** भी होती ही है। समय से परे होते ही काल की समय, स्थान एवं स्थिति तीनों का बन्धन टूट जाता है और इसके साथ प्रारब्ध एवं कर्म-बन्धन स्वतः नहीं रहते।

**'भस्मी'** तेरे समस्त अतीत, वर्तमान और समस्त सम्भावित भविष्यों का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है। अतीत का भविष्य **'था'**, वर्तमान का भविष्य **'है'** और भविष्य का भविष्य **'होगा'**। भस्मी प्रत्येक वर्तमान का भविष्य है, इसलिए वर्तमानातीत है, प्रत्येक अतीत का भविष्य है, इसलिए अतीतातीत है और प्रत्येक भविष्य का भविष्य है, इसलिए भविष्यातीत है। वर्तमानातीत, अतीतातीत और भविष्यातीत होने के कारण **'भस्मावस्था'** कालातीत एवं **'अकाल'** है। यदि **'तू'** इस अवस्था से आत्मसात् हो जाए, तो तेरा भूत, भविष्य, वर्तमान समाप्त हो जाएगा अर्थात् तू काल से परे हो जाएगा। जीते जी **'भस्मी'** की अवधारणा अति सद्गुरु कृपा से होगी। मानस में स्वयं को **'भस्मी'** बना हुआ देख, कि मैं भस्मी हूँ। फिर चिन्तन कर कि मेरा अतीत क्या है? अब तेरा कुल समय (भूत, भविष्य, वर्तमान सहित) तुझे तेरा अतीत प्रतीत होगा। तू उन क्षणों में समयातीत होगा और तुरन्त स्थानातीत एवं स्थित्यातीत होते हुए कालातीत हो जाएगा।

**'मैं देह हूँ'** सन्देह रूपी अज्ञान के अज्ञानवश शैशवावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि तेरी मिथ्या धारणाएँ (Concepts) हैं और सन्देह (मैं देह हूँ) में तेरे दृष्टिकोण हैं। ऐसा लगता नहीं है, लेकिन यही **'सद्'** है। कोई व्यक्ति भ्रमित हो, तो उसकी सोच भी संशयात्मक होगी। उसके द्वारा हो रहा हर कृत्य-अकृत्य संशयपूर्ण होगा तथा उसका कुछ पाना या खोना भी स्वयं में संशय ही होगा। इसलिए नित नूतनता की

प्रतीति एवं आभास जीव को नहीं होता। नित निर्मित व पालित की नवीनता और संहारित की प्रतीति **'नाम'** से बंधे होने के कारण किसी को नहीं होती। मात्र नाम के कारण तू भ्रमित है। पैदा होते ही कोई नाम लेकर नहीं आता। जगत व्यवहार, पहचान और सम्बोधन के लिए रखा गया नाम तुझ पर इतना हावी हो जाता है, कि तू स्वयं को वह नाम ही मान लेता है। यद्यपि अपने पंद्रह-बीस वर्ष पुराने **'रूप'** को तू स्वयं नहीं पहचान पाता। इसीलिए अपने रूप को भी अपने नाम से पहचानता है। इसका मुख्य कारण यह है, कि तूने दृश्यमान सृष्टि की संहार विधा को जानते बूझते हुए भी उपेक्षित कर दिया। संहार-दर्शन का अर्थ है, तूने मानव देह व जीवन का **'अर्थ'** पकड़ लिया, तो तेरी देह यथा अर्थ (यथार्थ) हो गई। मृत्यु की सहर्ष सहमति (Appriciation) से संहार या मृत्यु का भय (Apprehention) तेरे मानस से हमेशा के लिए जाता रहेगा।

**'संहार'** के दो आयाम हैं। मृत्यु और मृतक देह का चिताग्नि द्वारा समस्त क्रियाकर्म होने के उपरान्त पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय। विलय के बाद निर्माण-निर्मित, पालन-पालित और संहार का नामो निशान नहीं रहता। तूने अन्य लोगों की देह का संहार (मृत्यु और चिताग्नि में दहन) होते देखा है। वे अन्य मृत्यु से भयभीत रहे और उन्होंने अपना संहार होते नहीं देखा। तूने देह का निर्माण होते नहीं देखा, न देख सकता है और न कर सकता है। इसी प्रकार तू इसका संहार भी नहीं देख सकता। अपने जगत में प्रकट अन्य लोगों का संहार होते तूने देखा है, क्योंकि तू देख सकता है। लेकिन अपनी स्वयं की देह का न तूने निर्माण होते देखा, न पालन होते देखा और न ही संहार देखेगा। निर्मित और पालित देह **'तू'** अपनी और अन्य लोगों की देख सकता है। जो देह निर्मित व पालित है, वह संहारित भी है अर्थात् जिस प्रकार उसका निर्माण हो चुका है और पालन हो चुका है उसी प्रकार संहार भी हो चुका है। अपनी निर्मित व पालित देह तू देख रहा है, लेकिन तूने **'संहारित'** देखनी नहीं है तथा संहार अवश्य होगा। संहारोपरान्त देह निर्मित और पालित नहीं होगी, मात्र **'संहारित'** ही होगी।

तू जो, जब, जहाँ, जैसा भी है **'संहार'** होने के बाद तेरे लिए निर्मित व पालित के साथ संहार भी हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा। उस संहार को जब तू अपने ऊपर ढालेगा, तो तुझे तेरी संहारित देह का दर्शन सद्गुरु कराएगा। तेरे मानस से धीरे-धीरे निर्माण, पालन और संहार की धारणा ही निर्मूल होने लगेगी। **'संहारित देह'** निर्माण, पालन एवं संहार तीनों से परे है। वही तेरी यथार्थ देह है। जो अन्य लोगों को दिखाई देती है, वह निर्माण, पालन व संहार वाली है। संहारोपरान्त तेरी देह **'संहारित' ही** होगी।

मानव देह के **'नाम'** ने जीव को **'कुण्ठित'** व **'भ्रमित'** (Confused) कर दिया। स्वयं में न **'नाम'** पैदा होता है, न मरता है। देह की रुग्णावस्था में रोगी नहीं होता, किसी दुर्घटना में टूटता-फूटता नहीं है। न जवान होता है, न बूढ़ा। न रोता है, न हँसता है, न सुखी होता है, न दुःखी होता है। किसी व्यक्ति की अमीरी-गरीबी, उन्नति-अवनति, पद-प्रतिष्ठा से **'नाम'** को अन्तर नहीं पड़ता। **'नाम'** ज्यूँ का त्यूँ रहता है, लेकिन मानव ही नाम के चक्रव्यूह में युगों-युगान्तरों से फँसा हुआ है। नामक व्यक्ति अपने **'नाम'** की वजह से स्वयं को ऊँचा-नीचा, अमीर-गरीब, छोटा-बड़ा, सुखी-दुःखी, अनपढ़-पढ़ा-लिखा, ज्ञानी-अज्ञानी, जवान-बूढ़ा, रिटायर, रोगी-स्वस्थ और जन्मने-मरने वाला मानने लगा। उस नामक व्यक्ति का परिवार, पढ़ाई, लिखाई, डिग्रियाँ, पद, प्रतिष्ठा सब बदलते रहे, लेकिन **'नाम'** वही रहा। इससे इसकी नित नूतनता आच्छादित हो गई। **'रूप'** बदलता रहता है और जो एक ही नाम है, वह बाहर की विधा है। नाम तेरा अपना है ही नहीं। **'रूप'** देह में देह का प्रतिनिधि है, लेकिन तेरा कोई **'एक' 'रूप'** तो है ही नहीं। इसलिए हर रूप, **'रूप सा'** होने के कारण मात्र **'नाम का'** है।

देह के रूप **से** के साथ तद्रूपता **सी** में अमुक नामक व्यक्ति की अवस्थाएँ बदलने लगीं, क्योंकि **'नाम'** वही रहा। जब भी तूने स्वयं को देह से पहचाना, तुझे तेरी देह निर्मित व पालित मिलती है। इसके साथ जगत की असंख्य विधाएँ बनी-बनाई मिलती हैं। पहचान, सम्बोधन, जगत व्यवहार और अन्यथा विभिन्न कारणों से एक देहावधि में **'नाम'** एक ही रहता

है। देह की गर्भावस्था और जन्म के समय कोई **'नाम'** होता ही नहीं है। अपनी 70 वर्ष पुरानी फोटो को दिखा कर व्यक्ति कहता है, कि यह मैं हूँ। यद्यपि 85 वर्ष के उस वृद्ध व्यक्ति की न वह शकल है, न अकल। फिर भी **'नाम'** के कारण वह स्वयं को कभी बालक मानता है और कभी अपने को वृद्ध मानता है। तेरे जैसे के तैसे नाम ने तेरी अवस्थाएँ बदल दीं। तेरे **'रूप'** (चेहरे) और सम्पूर्ण देह में हुए परिवर्तनों में परस्पर कोई तालमेल नहीं है, लेकिन नाम के कारण तू स्वयं को कभी सौभाग्यशाली और कभी दुर्भाग्यशाली मानता है। जब तू पाँच वर्ष का बालक था, तो तेरा **'नाम'** तेरे लिए नया था। पहले के नए नाम की रूप (देह) के साथ गुण्ठा के कारण आज अस्सी वर्ष बाद उसी पुराने नाम के साथ तद्नामता में तू अपने को पुराना व वृद्ध मान रहा है। **'नाम'** पुराना नहीं होता है, ज्यूँ का त्यूँ रहता है। तू नाम की वजह से पुराना हो गया और तेरी दृष्टि में तेरे मरने का समय आ गया। तेरे मरने का समय कब नहीं था? गर्भ में आने से लेकर पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय होने तक मानव-देह निर्माण और निर्मित तथा पालन और पालित की सीमाओं में सीमित असंख्य अवस्थाओं में बँधी रहती है। जो देह निर्मित और पालित है, वह संहारित भी है। अर्थात् उसका संहार भी हो चुका है। जो **'संहारित'** होगी, वह देह नहीं **'विदेह'** होगी और सबकी एक ही होगी।

मानव देह की धर्म, कर्म, आयु, धन-सम्पदा, परिवार, विभिन्न सम्बन्ध, रोग-दोष, गुण-अवगुण, पद-प्रतिष्ठा, नाम, यश आदि-आदि दृष्टियों से असंख्य अवस्थाएँ हैं। देह काल में असंख्य एवं अगणित भिन्न-भिन्न पदार्थ देह की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। जीवन-काल में कोई **'एक'** पदार्थ देह की सुनिश्चित अवस्था का द्योतक नहीं है। भस्मी **'एक मात्र'** पदार्थ रूप में ऐसी अवस्था है, जिसका देह की किसी भी अवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि इस अवस्था में असंख्य पदार्थों से सम्पन्न सम्पूर्ण देह ही अतीत (देहातीत) हो जाती है। एक पंच-महाभूतों का संगम दर्शित मानव देह है और एक पंच-महाभूतों से परे **'देहातीत देह'** है। उस **'विदेहिक देह'** का

प्रमाण **'भस्मी'** स्वयं में पंच तत्त्वों से परे तत्त्वातीत तत्त्व है। **'भस्मी'** का पंच-महाभूतों से कोई सम्बन्ध नहीं है और पंच-महाभूतों का **'भस्मी'** से कोई सम्बन्ध नहीं है। **'भस्मी'** प्रपंचातीत है, क्योंकि इसका सम्बन्ध **'संहारित देह'** से है। वह **'संहारित देह'** अदृश्य है और जो दृश्यमान देह है, वह प्रपंच है। लेकिन दर्शित मानव देह के शव के पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय होने के बाद **'भस्मी'** दृश्यमान पदार्थ रूप में प्रकट होगी। जो साकार देह थी, वह पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित थी तथा संहारोपरान्त पंच-महाभूतों में ही विलय हो गई। पंच-महाभूतों में विलय होकर वह **'संहारित'** हो गई अर्थात् निर्माण, पालन और संहार से परे होती हुई अदृश्य हो गई। विलय होने का परिणाम संहारित देह है और उस परिणाम का प्रमाण **'भस्मी'** है। **'भस्मी'** संहारित देह का भविष्य नहीं है, बल्कि यह पदार्थ **'संहारित देह'** के अदृश्य रूप से होने का प्रमाण है।

सबकी निर्मित और पालित मानव-देह हर दृष्टि से पृथक्-पृथक् दृश्यमान होती हैं, लेकिन **'संहारित देह'** सबकी एक ही है और वह अदृश्य है। **'संहारित देह'** किसी दर्शित निर्मित व पालित देह का **'परिणाम'** नहीं है, लेकिन इसका **प्रमाण 'भस्मी'** अवचेतना में दर्शित है। भस्मी सबकी एक ही है। भस्मावस्था दिखाती है, कि कोई मानव जो जीवित था और निर्मित तथा पालित दृश्यमान था, किसी भी कारणवश उसकी मृत्यु आई। मृतकावस्था तक वह साकार था और चिताग्नि में जलने के बाद साकार से निराकार हो गया। जो मानव मृतक हो गया और अग्नि में जलकर पंच-महाभूतों में विलय हो गया उसकी **'संहारित देह'** है। पंच महाभूतों की साकार मानव-देह के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पाँचों निराकार तत्त्वों में विलीन होने के बाद **भस्मी'** प्रकट हुई। वस्तुतः यह **'भस्मी'** ही स्वयं में वास्तविक **'वस्तु'** या पदार्थ है, जो साकार और निराकार दोनों की सीमा का उल्लंघन करने पर प्रकट तत्त्वातीत तत्त्व है। साकार और निराकार की सीमा का उल्लंघन करने पर **'देह'** विदेह हो जाती है। **'भस्मी'** उस विदेह देह का **प्रमाण** है, जिसे **'संहारित देह'** कहते हैं।

**'संहारित देह'** दृश्यमान देह की अदृश्य देह है। वह अदृश्य परिणाम आनन्दमय मानस है, जो सबका एक ही है। तू उस अदृश्य परिणाम को जानना एवं अनुभूतिगम्य करना चाहता है, तो जीते जी उसके दृश्यमान प्रमाण (भस्मी) को आत्मसात् कर ले, कि **'मैं भस्मी हूँ'।** यदि तूने जीवन-काल में अपने इस परिणाम का जीते जी ध्यान नहीं किया अथवा जाने-अनजाने उपेक्षित किया, तो तेरी प्रारब्ध, कर्म, जन्म, मृत्यु एवं काल से बँधी अवचेतनामयी मानसिकता आगे चलेगी और वह पुनः देह धारण करेगी। तेरा जीव भाव (मैं देह हूँ) पुनः जीव-सृष्टि की रचना करेगा। देह धारणा में तूने जन्म-मृत्यु को धारण किया हुआ है। मैं पैदा हुआ, मैं मरूँगा इस धारणा में तू कर्म-बन्धन से पीड़ित है और **'कर्म-बन्धन'** (मैं कर्ता हूँ) में तू जन्म-मृत्यु से पीड़ित है। **कर्म-बन्धन, जन्म-मृत्यु की धारणा से बना और जन्म-मृत्यु की धारणा कर्म-बन्धन से बनी।**

Creation, Recreation, Cremation और Renunciation चार शब्द हैं। Cremation अथवा क्रियाकर्म तूने अन्य का देखा है। लेकिन स्वयं अपना न देखा है, न देख सकता है। इसलिए तू Creation और Recreation में उलझा हुआ अपने संहार (मृत्यु और चिताग्नि में दहन) को उपेक्षित ही करता रहा है। हर जन्म में तू कहता है, कि तू मरेगा क्योंकि तूने अपनी देह के निर्माण, पालन की तरह संहार भी कभी नहीं देखा। नाम की घुण्डी को सद्‌गुरु अनाम की घुण्डी से निर्मूल कर देता है। मानव देह में **'रूप'** या **'मुख'** देह का प्रतिनिधि है, रूप सतत् परिवर्तनशील है, इसलिए देह नित नूतन है। तेरा अपना रूप **'स्थिति'** से बँधा है। **'नाम'** एक होने के कारण हर **'स्थिति'** के **'रूप'** (देह) को तू एक ही मानता है। तेरे **'नाम रहित'** और **'रूप रहित'** स्वरूप का प्रमाण **'भस्मी'** है। **'मुख'** को मुँह भी कहते हैं। यह मुँह ही **'मोह'** का कारण है। राग-द्वेष, प्रेम-वैर, क्रोध-घृणा, लोभ-मोह सबका मूल **'मोह'** है। **'भस्मी'** तेरे **'रूपरहित'** या **'मुँह रहित'** स्वरूप की है, जिसका नाम **'संहारित देह'** है। **'भस्मी'** अवस्था है, जो पदार्थ रूप में दृश्यमान है और **'संहारित देह'** स्थिति है।

संहारित देह स्वयं में अदृश्य निर्माणातीत, पालनातीत एवं संहारातीत विदेह देह है। वहाँ न जन्म है, न मृत्यु है। जैसा तूने अन्य का संहार होते देखा है, वैसा ही अपना भी मान कर चल। मानस में ध्यान कर, कि तेरा क्रियाकर्म हो रहा है। ध्यान द्वारा जब तू अपने क्रियाकर्म से गुज़रेगा, तो वहाँ मानसिक **'भस्मी'** का प्रकाट्य होगा। उस **'भस्मावस्था'** में स्थिर होकर अपनी देह को पंच-महाभूतों में विलय होते देख। फिर स्वयं को अग्नियुक्त भस्मी नर कंकाल के रूप में देख। उस **'भस्मी'** एवं **'अग्नि'** का तेरी देह से कोई सम्बन्ध नहीं है। यही तेरी देहातीत संहारित देह की स्थिति है। ध्यान में अति सद्गुरु कृपा से अपनी अग्नियुक्त भस्मीमय नर कंकाल रूप में संहारित देह के दर्शन के बाद तेरे लिए वह पुराना नाम नया हो जाएगा। ध्यान से उठने के बाद क्योंकि **'नाम'** नया होगा, इसलिए देह भी नई होगी। यह मानस प्रकरण करते-करते तेरे मानस में देह व जगत की नित नूतनता समा जाएगी। तुझे तेरी स्मृति आ जाएगी। तेरी दृष्टि में वह देह संहारित ही होगी। वह दर्शन तेरा आनन्दमय एवं विरक्त मानस है, तेरा आत्मस्वरूप है। उसी से तेरी सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति एवं ऐश्वर्य पाँचों विभूतियाँ प्रकट होने लगेंगी। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

**'स्थिति'** और **'अवस्था'** में अन्तर है। **'स्थिति'** मानस की मानसिक है और **'अवस्था'** देह की दैहिक है। **स्थिति अदृश्य है और अवस्था दर्शित है।** कोई भी **'स्थिति'** सीधे **'अवस्था'** रूप में प्रकट नहीं होती, पहले **'व्यवस्था'** बनती है। अतः स्थिति और अवस्था के मध्य **'व्यवस्था'** की कड़ी है। जितनी दैहिक अवस्थाएँ हैं, उनकी व्यवस्था पहले होती है। तेरी देह की अवस्था के साथ तेरे जगत की अवस्था होगी और तदनुसार व्यवस्था होगी। मानव देह की जितनी भी दर्शित अवस्थाएँ होती हैं, वे अवचेतना में ही हैं। दैहिक अवस्थाएँ जो मैं अवचेतना में देखता हूँ, वे सन्देह में हैं। समस्त सांसारिक दैहिक अवस्थाएँ **'व्यय'** होती हुई सतत् परिवर्तनशील हैं। अपनी देह की विभिन्न अवस्थाओं को हम **'अवचेतना में'** देख सकते हैं, लेकिन

गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था को नहीं देख सकते। चेतना स्वयं में **'स्थिति'** है, जो अपरिवर्तनीय है। अवस्थाएँ सतत् परिवर्तनशील हैं और सन्देह में हैं तथा **'मैं'** सन्देह (मैं देह हूँ) में देखता हूँ। यह **'मैं'** जटिल्य है।

देह की उपर्युक्त पाँच अवस्थाएँ मैं अपनी नहीं देख सकता, अन्य की देखता हूँ। इनकी अवधारणा करने से इनकी **'स्थिति'** जाग्रत होने लगती है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था स्वयं में गर्भ, शैशव एवं निद्रा स्थिति का प्राकाट्य है। गर्भ है, तो गर्भावस्था है, शिशु है, तो शैशवावस्था है, निद्रा है, तो निद्रावस्था है। जो गर्भ में है, उसे अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं है और अपनी गर्भ स्थिति की अनुभूति नहीं है।**'गर्भावस्था'** देह **में** देह **की** अवस्था है। माँ की देह के बिना गर्भावस्था नहीं हो सकती। इसी प्रकार शैशवावस्था, निद्रावस्था एवं मृतकावस्था देह **में** देह **की** अवस्थाएँ हैं। इनकी **'स्थिति'** देह **की** देह **में** है। **'शिशु'** को अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं है और स्वयं में **'शैशव'** स्थिति की अनुभूति नहीं है। जो सुषुप्त है, उसे न अपनी निद्रावस्था का ज्ञान है और न स्वयं में निद्रा स्थिति की अनुभूति है। इसी प्रकार मृतक को अपनी मृत्यु स्थिति एवं मृतकावस्था की अनुभूति नहीं होती। मृत्यु **का** कारण कुछ भी हो, मृत्यु **के** कारण ही मृतकावस्था होती है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था और मृतकावस्था देह **में** देह **की** अवस्थाएँ है। तदनुसार **'स्थिति'** है। तूने अपनी ये अवस्थाएँ नहीं देखी और न स्थिति देखी।

एक पाँचवी अवस्था है, जो देह **की** है और देह **में** नहीं है, वह है–भस्मावस्था। **'भस्मी'** देहातीत देह (संहारित देह) की **'अवस्था'** है। देह की मात्र एक ही अवस्था ऐसी है, जो अवस्थातीत है। देह के सन्दर्भ में **'भस्मावस्था'** कहने को **'अवस्था'** है, लेकिन वस्तुतः न वह अवस्था है, न व्यवस्था है। अतः स्वयं में व्यवस्थातीत एवं स्थित्यातीत है और इसकी स्थिति अदृश्य, देहातीत, **'संहारित देह'** है। वह **'अव्यय'** एवं अपरिवर्तनीय है और **'अव्यय'** का ही दर्शन कराती है। देह है तो वह अवस्था होगी, लेकिन

जब अवस्था होगी, तो देह नहीं होगी, क्योंकि भस्मी किसी देह की नहीं है। भस्मी अवस्था की **'स्थिति'** देह **में** नहीं है। क्योंकि भस्मावस्था होने से पूर्व मृतक देह का पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय होना आवश्यक है। कोई जीवित भी चिता में कूद पड़े, तो उसकी मृत्यु आएगी तो मरेगा, फिर जलेगा। पूर्णतः जलने और विलय होने के बाद भस्मी बनेगी। **'भस्मी'** होने पर देह व देह का कुछ भी नहीं रहता। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

**'मैं'** स्वयं में किसी की नहीं है, और है तो सबकी है। एक की **'मैं'** सबकी है। इसी प्रकार **'भस्मी'** सबकी एक **ही** है। जो मर चुके हैं और जो मरने वाले हैं तथा जो पैदा होंगे सभी की **'भस्मी'** स्वयं में एक ही है। देह की चार अवस्थाएँ (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था ) **'एक सी'** हैं और भस्मावस्था **'एक ही'** है। परन्तु **'मैं'** इन अवस्थाओं में **'कैसा होता हूँ'** यह **'मैं'** ने कभी नहीं देखा। **'मैं'** कैसा होता हूँ अर्थात् मेरा **'मन'** कैसा होता है। मुझ सहित मेरा सम्पूर्ण जगत मेरे **मन की मान्यता** पर टिका है। मैंने अपना जन्म होते देखा नहीं लेकिन मान लिया, कि मैं पैदा हुआ। जो पैदा हुआ, वह मरेगा अवश्य। जो अवचेतना में उठा हुआ है उसने मान लिया, कि मैं सोया हुआ था। क्योंकि मैं उसी बिस्तर से उठा हूँ, जिस पर रात्रि में सोने के लिए लेटा था। जब मैं सोया हुआ था, तो **'मैं'** कैसा था, यह देखने के लिए मुझे **'निद्रावस्था'** की अवधारणा द्वारा उस **'स्थिति'** की अनुभूति करनी होगी। इसी प्रकार अपनी शैशवावस्था मैंने नहीं देखी। मैं उस अवस्था में कैसा था? अपने भीतर सोए **'शिशु'** को मैं कैसे जाग्रत करूँ? **'शिशु'** स्वयं में एक मानस स्थिति है। इसकी अनुभूति मुझे शैशवावस्था की अवधारणा द्वारा सद्गुरु कृपा से हो सकती है।

मृतकावस्था में शव को शमशान में ले जाया जाएगा। देह चिताग्नि में जलेगी और पंच महाभूतों में पूर्णतः विलय हो जाएगी। चिता को मुखाग्नि देते ही **'भस्मी'** बननी शुरू हो जाएगी और पूर्णतः जलने और पंच महाभूतों में पूर्णतः विलीन होने पर भस्मी प्रकट हो जाएगी। इस प्रकार एक साकार मानव देह अपने भूत, भविष्य एवं वर्तमान सहित जब निराकार पंच महाभूतों

में पूर्णतः विलय हो जाती है, तब पूर्ण **'भस्मी'** का प्रकाट्य प्रदार्थ रूप में दृश्यमान होता है। यह **भस्मी'** स्वयं में अविशेष है। विशेष नाम और असंख्य विशेषों (काम, धाम, पद आदि) से सम्बद्ध साकार मानव-देह निराकार पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। जिसमें दोनों विशेष (विशेष नाम और अन्य असंख्य विशेष) नहीं रहते।

**'निद्रा'** स्वयं में स्थिति है। **'निद्रा'** स्थिति का प्रकाट्य **'निद्रावस्था'** अथवा सुषुप्ति में होने से पहले व्यवस्था होती है। मैं जब सोने जाता हूँ, तो पहले व्यवस्था देखता हूँ, कि घर बन्द हो। ताला कुण्डा आदि देखकर फिर स्वयं को बिस्तर पर छोड़ता हूँ, कि अब निद्रा आएगी, तो सोऊँगा। यदि व्यवस्था में कहीं कोई कमी तेरे ख्याल में भी आ जाए, तो नींद नहीं आ सकती। निद्रावस्था शारीरिक है और निद्रा स्थिति मानसिक है। निद्रा आएगी, तो तू सोएगा और मृत्यु आएगी, तो मरेगा। जो सोया हुआ है, उसने निद्रा नहीं देखी तथा स्वयं को सोए हुए भी नहीं देखा, वह जड़ता में है। जो किसी को सोए हुए देख रहा है, उसने निद्रा नहीं देखी तथा स्वयं को सोए हुए भी नहीं देख सकता, वह अवचेतना में है। इसी प्रकार जो मृतक है, उसने **'मृत्यु'** नहीं देखी और स्वयं को मृतक भी नहीं देखा। वह जड़ता में है। जो किसी को मृतक देख रहा है, उसने मृत्यु नहीं देखी और स्वयं को मृतक भी नहीं देख सकता, वह अवचेतना में है। एक तू सोया, तो तेरे लिए सम्पूर्ण जगत सो जाता है। तू सोया हुआ है, लेकिन तुझे मालूम नहीं है, कि तू सोया हुआ है। क्योंकि न तूने निद्रा स्थिति देखी और न स्वयं को निद्रावस्था में देखा। एक तू मरेगा, तो तेरे लिए तेरा सम्पूर्ण जगत मृतक हो जाएगा, लेकिन तुझे इसका ज्ञान और अनुभूति नहीं होगी। **निद्रा स्थिति है और निद्रावस्था है। मृत्यु स्थिति है और मृतकावस्था है।**

कारण से स्थिति और स्थिति से अवस्था बनती है। मृत्यु स्थिति है, मृत्यु का कारण होता है, मृत्यु का कारण कुछ भी हो सकता है। स्थिति के कारण अवस्था है। कारण ने **'मृत्यु'** का आह्वान किया। उदाहरणतः, एक गाड़ी की टक्कर हुई। इस दुघर्टना में गाड़ी में बैठे सभी मृतक हो जाएँ, यह

आवश्यक नहीं है। हो सकता है, कि किसी को खरोंच भी न आए। किसी को मृत्यु आई, किसी को छोड़ गई। जिसे मृत्यु आई, वह मर गया। **'कारण'** एक प्रकरण है। रोग, दुर्घटना, आत्महत्या, प्राकृतिक आपदाएँ प्रकरण हैं। आवश्यक नहीं, कि मृत्यु किसी कारण से ही हो, मृत्यु अकारण भी हो जाती है। **'स्थिति'** के आह्वान से वह अवस्था हो जाए, यह अनिवार्य नहीं है। मृत्यु के बिना मृतकावस्था नहीं हो सकती और मृतकावस्था के बिना चिता में जलाया नहीं जा सकता। **'मृत्यु'** कोई **'अवस्था',** आयु, स्थान, स्थिति, परिस्थिति नहीं देखती। देह व जीवन किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है, इस दिशा में लिया गया प्रत्येक साँस **'श्वास'** (शव+आस) में रूपान्तरित हो जाता है। मृत्यु से और मृत्यु के कारणों से भस्मी का कोई सम्बन्ध नहीं है। मृत्यु **का** कारण कुछ भी हो, मृत्यु **के** कारण मृतकावस्था हुई।

किसी भी कारण अथवा अकारण जो **'मृत्यु'** आई, वह **'मृत्यु'** स्वयं में क्या है? मृतकावस्था और निद्रावस्था दैहिक हैं, लेकिन भस्मावस्था **'विदेहिक'** है। विदेहिक अवस्था एक ही है। तू देह से उस विदेहिक **'भस्मी'** अवस्था का अधिग्रहण कर, जो देह के विदेह होने के बाद की है। वह भस्मावस्था **'संहारित देह'** का प्रमाण है, जो निर्माण, पालन और संहार तीनों अवस्थाओं से मुक्त हो चुकी है। विश्व में **'भस्मी'** एक ही पदार्थ है, जो देहातीत, असांसारिक और अव्यवहारिक है। शेष वस्तुएँ अवास्तविक हैं। ये अवास्तविक वस्तुएँ तुझे भोग तब देंगी, जब तू वास्तविक वस्तु (पदार्थ) भस्मी से आत्मसात् हो जाएगा। **'विदेहिक'** अवस्था वैदिक ज्ञानमयी अवस्था है। सद्‌गुरु स्थित्यातीत स्थिति का स्वामी है, वह **'अवस्था'** से स्थिति में ले जाता है। अवस्था का कारण स्थिति है और **'संहारित देह'** महा स्थिति है। भस्मावस्था अवस्थातीत अवस्था है। दैहिक अवस्थाएँ **'समयातीत'** नहीं हो सकतीं। भस्मावस्था विदेहिक है, इसीलिए **'समयातीत'** है अतः **'स्थानातीत** और **स्थित्यातीत'** है।

अवचेतना में उठकर सद्‌गुरु की असीम कृपा से निद्रा अवस्था के साथ आत्मसात् करने से तेरी **'स्थिति'** जागृति होगी, मृतकावस्था के साथ

आत्मसात् करने से मानस स्थिति **'अमरत्व'** की होगी और भस्मावस्था के साथ आत्मसात् करने से स्थिति **'संहारित देह'** होगी। निद्रा-दर्शन समाधि है। समाधि और समाधिस्थ दोनों स्थितियाँ हैं। जीते जी मृतकावस्था की अवधारणा करने से जन्म-मृत्यु तेरे लिए समाप्त हो जाएँगे। अदृश्य (स्थिति) की दर्शित अवस्था की अवधारणा द्वारा तेरे मानस में उत्पन्न **'स्थिरता'** के फलस्वरूप उस स्थिति की अनुभूति **ही** दर्शन है। जैसे-जैसे आत्मचिन्तन से तेरी चेतनामयी स्थिति परिपक्व होती है, तेरी अपनी देह की अवस्थाओं के प्रति तेरा दृष्टा भाव बदल जाता है। योगी को उसी देह में इन स्थित्यातीत व कालातीत स्थितियों का आभास होने लगता है, जो जीवन का रसास्वादन करवाता है।

***''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''***

**(21 मार्च से 22 मई 2012 )**

# संहार (अहं से स्वयं)

## (भाग – 7)

**अ**ध्यात्म **'अहं'** से **'स्वयं'** तक की यात्रा है। **'अहं'** जटिल्य (Complex) है और **'स्वयं'** स्वरूप है। **'मैं देह हूँ'** यह **'अहं'** है। **'मैं' 'स्वयं में'** आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि है, लेकिन शब्द रूप में प्रकट होते ही देह **सी** के साथ नाम-रूप में तद्रूपता **सी** में एक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने में एक **'जटिल्य'** बन गया। **'मैं'** का अपना कोई रूप नहीं है। जो रूप रहित है, वह सबका एक है। क्षण-क्षण बदलता हुआ **'रूप'** नाम का होने में **'रूप सा'** हुआ और व्यक्ति का **'स्वयं'** का स्वरूप आच्छादित हो गया। **'मैं'** जटिल्य के जाग्रत होते ही जीव  होश आने से होश जाने तक तथाकथित विकास ही करता रहता है। जीव के समस्त कृत्य वस्तुतः कृत्य **'से'** होते हैं और समस्त प्राप्तियाँ भी प्राप्तियाँ **सी** होती हैं। इसमें जीव को आनन्द नहीं, मात्र सुख **से** की अनुभूति होती है। उसे यह ज्ञान नहीं होता, कि वह संहार की ओर बढ़ रहा है। जीव पिछड़ेपन को तथाकथित बड़प्पन मानता है और जनबल, धनबल, छलबल के नशे में चूर **'स्वयं'** से प्रकट होने वाली पाँचों विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति) के लिए जन्म-दर-जन्म भटकता है। **'विरक्ति'** विभूत्यातीत विभूति है और इसके वास्तविक बड़प्पन एवं मानस के विस्तार की द्योतक है।

आद्याशक्ति समाहित शिव विभिन्न रूपों, स्वरूपों, अरूपों, विरूपों में स्वतः, स्वयं, स्वान्तः सुखाय एक से अनेक होता है। **'शिव-शक्ति-क्रीड़ा'** में शिव अत्यन्त शक्तियुक्त **'स्वयं'** ही **'स्वयं'** है। ***''न कित आएबो न कित***

***जाएबो''*** ठोस-घन-शिला की नाईं समाहित शक्ति शिव **'टस से मस'** नहीं होता। शिव की स्वयं की समाहित आद्याशक्ति 'एकोऽहम् बहुस्याम्' भाव की स्फुरणा (प्रेरणा) है। **अत्यन्त शक्ति समाहित शिव** में अन्तः प्रेरणा **'एकोऽहम् बहुस्याम्'** का स्फुरण होते ही विभिन्न प्रकरणों के लिए **'अतिशक्ति और महाशक्ति'** में क्रीड़ा होती है। अत्यन्त शक्ति सम्पूर्ण क्रीड़ा में समाहित ही रहती है। उस क्रीड़ा के आनन्द का प्रकाट्य सम्पूर्ण चराचर दृश्यमान सृष्टि है। शिव न **'एक' 'मैं'** (अहं) है, न **'हम दो'** (आवाम्) है और न **'हम सब'** (वयम्) है। समाहित शक्ति शिव में **'वयम्'** (एक+अनेक=एकानेक) समाहित है। उसे **'स्वयं'** कहते हैं।

**'स्वयं'** शंकर के डमरु से निःसृत व्याकरणातीत अव्याकरण का शब्द है। सच्चिदानंद की सृष्टि भी सच्चिदानंद है। निर्माण **'सद्'** है, पालन **'चेतन'** है और संहार **'आनन्द'** है। पंच-महाभूतों **'से'** निर्माण, पंच-महाभूतों **'द्वारा'** पालन और पंच-महाभूतों **'में'** विलय उस अत्यन्त शक्ति शिव का भृकुटि विलास है। यह **'में', 'द्वारा' और 'से'** अकारक या कारकातीत कारक हैं। तीनों जो, जब, जहाँ, जैसे हैं, परस्पर गुथे-मुथे हैं और पाणिनी के व्याकरण में वर्णित 'कारकों' से परे हैं। इसी प्रकार एकवचन (अहं), द्विवचन (आवाम्) और बहुवचन (वयम्) तीनों की क्रिया अभिव्यक्तियों में एक **'मैं'** का होना आवश्यक है। (अहं गच्छामि, आवाम् गच्छावः, वयम् गच्छामः) शिव स+वयम् नहीं, **'स्वयं'** है और **'स्वयं'** वस्तुतः **'स्वान्त'** (स्व+अन्त) है। द्वैत-अद्वैत, अहं, आवाम, वयम् से परे **'स्वान्त'** ही **'स्वयं'** है। स्वतः, स्वयं, स्वान्तः सुखाय तीनों में **'स्व'** है। **'स्वान्तः सुखाय'** अर्थात् **'स्व'** का अन्त हो जाए, उस सुख के लिए हुई **'क्रिया'** की कोई अभिव्यक्ति व्याकरण में नहीं है। 'एकोऽहम् बहुस्याम्' **'स्वयं'** में, स्वतः, स्वान्तः सुखाय **कर्म विहीन क्रिया** है। आद्याशक्ति **'स्वान्त'** की गायत्री है। **'भू'** स्थूल है, **'भुवः'** सूक्ष्म है और **'स्व'** कारण है। शिव स्वयं में कारणं कारणानाम् स्वान्त (स्व+अन्त) अर्थात् **'स्वयं'** है।

**'स्वयं'** एक अनुभूति है, जो अनिर्वचनीय है। भौतिक रूप से **'स्वयं'**

का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो **स्वयंभू ईश्वरीय बुद्धि** युगों-युगान्तरों से कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की संप्रेरक, संयोजक, संवाहक, सहायक, संचालक एवं नियन्त्रक है, उसका नाम **'गायत्री'** है। भगवती गायत्री शिव की इच्छाशक्ति है, जो विभिन्न रूपों एवं आकारों में प्रकट होती है। स्वान्त की कृपा से स्वान्त का ज्ञान एवं अनुभूति हुए बिना गायत्री का अर्थ अनुभूतिगम्य नहीं हो सकता। बदलते **'रूप'** से अपरिवर्तनीय **'स्वयं'** की अनुभूति अध्यात्म का आधार है। देह होते हुए जब तुझे अनुभूति हो, कि **'मैं देह नहीं हूँ'** उस पृष्ठभूमि से **'स्वयं'** शब्द प्रकट होता है। योगी जब समाधिस्थ होता है, तो **'व्यक्ति देह विहीन'** आनन्दमय स्थिति में होता है। व्यक्ति देह विहीन अर्थात् उसकी अभिव्यक्ति नहीं हुई। स्थूल जगत में अभिव्यक्ति से पहले वह उस व्यक्ति के संहार से आत्मसात् हो जाता है, कि मैं ये व्यक्ति नहीं, मैं भस्मी हूँ। यह **'एकान्त'** स्थिति **'स्वयं'** है। व्यक्ति की अभिव्यक्ति नहीं हुई और मैं व्यक्ति नहीं हूँ, यह **'विरक्ति'** है। व्यक्ति, विरक्ति और अभिव्यक्ति का सूक्ष्म भेद मात्र अनुभूतिगम्य और अनिर्वचनीय है।

**'अभिव्यक्ति'** में अकेली व्यष्टि का होना असम्भव है। एक व्यक्ति की अभिव्यक्ति एक जगत के सहित ही है। अकेली देह व्यष्टि है और देह सहित जगत समष्टि है। व्यष्टि है, तो समष्टि है तथा समष्टि है तो व्यष्टि अवश्य होगा ही। अदृश्य में **'एकोऽहम् बहुस्याम्'** प्रेरणा का स्फुरण हुआ और जब दृश्यमान में अभिव्यक्ति हुई, तो देह सहित जगत (स्थूल) प्रकट हुआ। जिस समय वह उस एक व्यक्ति को देख रहा है, तो समष्टि सहित ही देखता है। एक व्यक्ति (अमुक-अमुक) है, वह अपनी प्रकट देह के लिए भी ऐसा ही कहता है, कि मैं अमुक (नाम) अमुक (रूप सा) हूँ। उस **'एक'** अदृश्य की दृश्यमान (स्थूल) में जब अभिव्यक्ति होती है, तो एक देह व जगत सहित होती है। कृपया एकाग्र करिए।

मानव-देह में मस्तिष्क सम्पूर्ण देह के विभिन्न अंगों का प्रेरक, संचालक, संयोजक एवं नियन्त्रक है। मानव बुद्धि में एक ऐसा केन्द्र भी है,

जो किसी विशिष्ट कार्य और उस कार्य में सहयोगी अथवा अवरोधी लोगों को एक साथ प्रेरित करता है। वे सभी उस प्रेरणा का एक साथ अधिग्रहण करते हुए कार्यरत होते हैं। ईश्वरीय **'प्रेरणा'** एक शक्ति अथवा Induction Power है, जो किसी के हृदय परिवर्तन, किसी कार्य के अनुमोदन अथवा जगत कल्याण हेतु किसी प्रकरण को करने के लिए उत्साहित करती है। ईश्वर सच्चिदानन्द हैं। हमारे भीतर के सदत्व को अनाच्छादित करने हेतु **'सद्'** के लिए ही प्रेरणा देते हैं। इसलिए वे प्रेरक नहीं, सम्प्रेरक और संयोजक भी होते हैं। संयोजक रूप में वे उस प्रेरणा के अनुसार प्रबन्धन का हेतु होते हैं। सम्प्रेरणा से पहले उस काम से सम्बद्ध अन्य सभी लोगों को एक साथ प्रोत्साहित करते हैं। उसके बाद मुख्य व्यक्ति के सम्प्रेरक बनते हैं। अर्थात् उस कार्य से सम्बन्धित सभी लोगों को एक साथ प्रेरित कर संवाहक, सहायक, संचालक, सम्पादक एवं नियन्त्रक होते हैं। उस सम्पूर्ण योजना का संयोजन, संवाहन, संचालन, सम्पादन, रसास्वादन आदि सबको फल-सुफल सहित स्वतः होता है।

ईश्वर अथवा सद्गुरु उसे ही प्रेरणा देते हैं, जो उससे प्रेम करते हैं और उसके चरणों में श्रद्धा रखते हैं। जिसे ईश्वर से प्रेम होगा, वही ईश्वरीय सम्प्रेरणा का अधिग्रहण कर पाता है। मानव बुद्धि, जब बुद्धि द्वारा उस महाबोध गायत्री के आगे पूर्णतः समर्पित हो जाती है, तभी ईश्वरीय संकेतों को ग्रहण कर पाती है। विशिष्ट प्रकरण के हेतु विशिष्ट व्यक्ति प्रेरित किए जाते हैं। कोई भी कृत्य या प्रकरण व्यक्तिगत (Individual) नहीं है और किसी भी कृत्य का प्राकट्य एक और अनेक का सटीक उदाहरण है। प्रेरक, प्रेरित करना, प्रेरित होना, प्रेरणा, प्रकरण और प्रकाट्य—इसके छः अंग हैं। यह अहं, आवाम, वयम् से परे एक मानस **'स्वयं'** की अभिव्यक्ति है।

ईश्वर एवं उसकी सम्पूर्ण नित नूतन दृश्यमान सृष्टि के रहस्यों को मानव ही अनुभव कर सकता है। मानव-देह साकार दृश्यमान सृष्टि में विशिष्टतम् आकृति है। यह देह जन्म से पहले तेरी थी नहीं और मृत्यु के बाद रहेगी नहीं तथा अब जो, जब, जहाँ, जैसी, जब तक है, तेरे लिए है; तेरी

नहीं है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव-देह भौतिक रूप से शैशव से शव और आध्यात्मिक दृष्टि से अहम् से स्वयं तक की यात्रा है। तेरा स्वरूप **'स्वयं'** है और तेरी **'भसम'** स्वयं है। स्वयं **'रूप विहीन'** विरूपाक्ष है। तू जब **'स्वयं'** को देह की भस्मी के साथ आत्मसात् होते हुए अनुभव करता है, तभी **'स्वयं'** में **'स्वयं'** की अनुभूति करता है।

जन्म-मृत्यु में बँधी देह की समयावधि जीवन नहीं, आयु है। जब पल-पल इस देह का सदुपयोग हो, उसे जीवन कहते हैं। जीवन के लिए मानव-देह चाहिए, लेकिन मानव-देह हो और **'जीवन'** भी हो, यह आवश्यक नहीं है। इस देह में अगणित व असंख्य कार्य-प्रणालियाँ परस्पर सुसम्बद्ध तेरे लिए सतत् कार्यरत हैं। साथ ही समस्त बाह्य चराचर साकार-निराकार जगत अनेक विधाओं सहित तेरे लिए क्यों और कब तक है, यह न तू जानता है और न जान सकता है। देह के रहते देह की हदें पार करने के बाद जीवन का शुभारम्भ होता है। यदि तूने देह का निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ प्रयोग किया है, तो इसका स्वामी देह और देहों द्वारा तुझे सज़ाएँ देगा। तुझे देह का **'अर्थ'** जानने की इच्छा रखते हुए चेष्टा करनी होगी। **'अर्थ'** किसी न किसी प्रकार से जानते और मानते हुए अनुभूतिगम्य करना ही होगा। अन्तिम श्वास पर भी तुझे वह अनुभूतिगम्य हो जाए, तो वह अक्षुण्ण-क्षण तेरी सद्गति का हेतु हो जाएगा। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

ईश्वर योजना बनाता है और हम संसारी लोग परियोजना बनाते हैं। दृश्यमान जगत के प्रति हम सबका **'दृष्टिकोण'** बदलता रहता है और यह दृष्टिकोण अदृश्य रहता है। बदलते दृष्टिकोण से युक्त देह यथार्थ नहीं अर्थहीन, निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ युक्त अन्यार्थ है। तेरा अदृश्य दृष्टिकोण (Aptitute) तेरे स्वरूप की भाँति अदृश्य है और तेरा है। कोई भी दृश्य कैसा लगा? यह **'लगना'** अदृश्य है और इसके बाद हुई प्रतिक्रिया दिखाई देती है। कुछ लोग अवसर देखकर अपनी प्रतिक्रिया छिपाने में कुशल भी होते हैं। 'स देह' में जब सन्धि हुई, तो **'सन्देह'** शब्द प्रकट हुआ। यहाँ 'स देह' का द्वैत नहीं रहा। मैं देह सहित नहीं, 'मैं देह हूँ' यह सन्देह है। जब तू **'अहं'**

में होगा, तो तेरा **'दृष्टिकोण'** ही होगा। दृष्टिकोण चाहे कितना भी अच्छा हो जाए, बदलने वाला ही रहता है; कभी स्थाई नहीं हो सकता। बदलाव यहाँ का **'सद्'** है। स वयम् में सन्धि होने पर **'स्वयं'** शब्द बना। संयुक्त शक्ति शिव **'स्वयं'** ही **'स्वयं'** है। यह स्वयं **'हम सब'** (वयम्) नहीं है। स्वयं में **'स्व'** का अन्त है, इसलिए स्वतः, स्वयं, स्वान्तः सुखाय क्रीड़ा में **'कर्म विहीन क्रिया'** है; जहाँ मात्र **'होना'** पाया जाता है। इसलिए **'होना'** स्वयं में अक्रिया है। जब ईश्वर से **'दृष्टि'** मिल जाती है, तो **'दृष्टिकोण'** हमेशा के लिए **'सृष्टिकोण'** बन जाता है। तू व्यक्ति से अपनी **'विरक्ति'** की अनुभूति कर और इस Concept से Fact तक पहुँच।

सद्गुरु की कृपा है, क्षमा है, दया है। तू चाहता भी है और है भी, लेकिन जन्मों-जन्मान्तरों से **'मैं'** अथवा **'अहं'** की डौल या पर्दा है, जो कृपा को रोक देता है। किसी जन्म में तेरी सुनिर्मित, स्वयंभू इस बाधा का भेदन व छेदन अति सद्गुरु कृपा से होता है। संसार में स्थितियों का सम्राज्य है, स्थिति पर स्थिति शासन करती है। **'स्थिति'** मानसिक है और **'अदृश्य'** है। **'अवस्था'** दैहिक है तथा दृश्यमान होती है। समस्त दृश्यमान सृष्टि विभिन्न मानसिक स्थितियों का प्रकाट्य है। **'स्थिति सी'** पर **'स्थिति'** का राज्य है। **'स्थिति'** पर **'महास्थिति'** का, **'महास्थिति'** पर **'अतिस्थिति'** का और **'अतिस्थिति'** पर **'अत्यन्त स्थिति'** का साम्राज्य है। **'अत्यन्त स्थिति'** सबकी निर्णायक एवं प्रेरक है। समाहित आद्याशक्ति की **'एकोऽहम् बहुस्याम्'** प्रेरणा से असंख्य स्थितियाँ प्रकट होती हैं, लेकिन शासन **'अत्यन्त स्थिति'** का है। 'एकोऽहम् बहुस्याम्' सद् प्रेरणा होते ही कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का प्रकाट्य उस **'अत्यन्त स्थिति'** का भृकुटि विलास मात्र है। वहाँ न **'काल'** है न **'अकाल'** है, वह स्वयं **'महाकाल'** है। वह स्थित्यातीत स्थिति **'अत्यन्त स्थिति'** का स्वामी है।

गर्भावस्था की **'गर्भ'** स्थिति **'स्थिति सी'** है। शैशवावस्था की **'शिशु'** स्थिति **'स्थिति सी'** है, निद्रावस्था की **'निद्रा'** स्थिति **'स्थिति सी'** है। इनके अतिरिक्त असंख्य अवस्थाएँ हैं जिनकी **'स्थिति'** **'स्थिति सी'** ही हैं।

मृतकावस्था की स्थिति **'मृत्यु'** स्वयं में **'स्थिति'** है। **'भस्मावस्था** स्वयं में अवस्थातीत है। अतः इसकी **'स्थिति'** संहारित देह है, जो स्थित्यातीत **'अत्यन्त स्थिति'** है। **'स्वयं'** की स्थिति **'अत्यन्त स्थिति'** है। **'भस्मावस्था'** मानव-देह की एक **ही** ऐसी अवस्था है, जो **'स्वयं'** (शिव) की **'स्थिति'** (अत्यन्त शक्ति विरक्ति) की द्योतक है। वह स्थिति न एक **ही** है और न एक **सी** है, बल्कि **'एक'** है। उसे **'कैवल्य पद'** कहा गया है। **'भस्मी'** दृश्यमान पदार्थ रूप में उस स्वरूप की पुष्टि, प्रामाणिकता और सत्यापन है। महापुरुषों को विभूत्यातीत विभूति **'विरक्ति'** पर अधिकार होता है और सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति आदि विभूतियाँ उनके **'स्वयं'** से प्रकट होती रहती हैं। उनका **'मानस'** सम्पूर्ण विश्व को समाहित किए रहता है। तत्वज्ञ महापुरुष का उस **'तत्व'** पर अधिकार होता है, जो गर्भत्व और गर्भावस्था, शिशुत्व और शैशवावस्था, निद्रात्व और निद्रावस्था, मृत्युत्व और अमरत्व, भस्मित और **'संहारित देह'** का एक ही है।

**'स्वयं'** के स्वरूप की **'सिद्धि' 'मैं'** और **'भस्मी'** की आत्मसातता में निहित है। तू स्थित होकर ध्यान में अपनी देह की भस्मावस्था को देख और **'मैं**' को भस्मी से मिला दे। पल-पल परिवर्तित होती, नश्वर एवं क्षणिक देह द्वारा नित्याध्यासन द्वारा **'अभ्यस्त'** होते हुए **'सिद्धि'** प्राप्त कर और **'सिद्धस्त'** हो जा। **'अहं' से 'स्वयं'** की इस आध्यात्मिक यात्रा के जिस पड़ाव में तेरी देह छूटेगी, अगले जन्म में बहुत सी दैवीय Subsidies के साथ आगे चलेगी। मानव-देह का एकमात्र यही **'लक्ष्य'** और **'कर्म'** है। **'भस्मावस्था'** तेरी पहचान है, लेकिन यह पहचान देहातीत होने के कारण देह रूप में तेरी पहचान नहीं कराएगी। तेरी देह की **'भस्मी'** से तेरी देह के नाम-रूप को नहीं जाना जा सकता। देह की **'भस्मी'** देह का **'अर्थ'** है। अपनी देह की भस्मी की ध्यान में अवधारणा करते-करते वह भस्मी जब तेरी पहचान बन जाएगी, तो तेरी विरक्त एवं अदृश्य संहारित देह तेरे भीतर जीते जी अप्रकट रूप से प्रकट हो जाएगी। उस विरक्ति से तेरी सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य एवं ख्याति विभूतियाँ स्वतः प्रकट होती रहेंगी।

मानव-जीवन एवं मानव-देह स्वयं में असंख्य प्रश्नों का समूह है। सभी तथाकथित प्रश्नों के तथाकथित उत्तर हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर या अर्थ भिन्न होता है और उत्तर पुनः किसी न किसी प्रश्न का जन्मदाता बन जाता है। अतः तथाकथित उत्तरों के लिए तथाकथित प्रश्न हैं। क्योंकि प्रश्न और उत्तर दोनों अर्थहीन ही नहीं निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ हैं। निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ उत्तर हैं, इसलिए प्रश्न भी निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ हैं। प्रत्येक सार्थक प्रश्न का उत्तर प्रश्न में समाहित होता है और प्रश्न से ही निकाला जाता है। प्रश्न से उत्तर निकाला जाता है, तो प्रश्न से बाहर आ जाता है। उत्तर या अर्थ बाहर आने पर भी प्रश्न स्वयं में उत्तर-युक्त ही रहता है। हज़ारों लोगों के हल करने के बाद भी समाहित उत्तर-युक्त प्रश्न ज्यूँ का त्यूँ बना रहता है। कभी-कभी बहुत से प्रश्नों का एक ही उत्तर होता है। एक ही उत्तर के बहुत से प्रश्न बनाए जा सकते हैं। लेकिन **'उत्तर'** में **'प्रश्न'** नहीं रहता और उत्तर किस विशिष्ट प्रश्न का है, यह भी उत्तर से जाना नहीं जा सकता। क्योंकि कोई भी **'उत्तर'** किसी प्रश्न से बँधा हुआ नहीं है। लेकिन एक प्रश्न एक उत्तर से बँधा है। मानव देह रूपी प्रश्न का उत्तर (अर्थ) तुझे मालूम है। यह उत्तर **'भसम'** है, जो स्वयं में देहातीत और प्रश्न (देह) से मुक्त है। लेकिन प्रश्न (देह) उत्तर (भसम) युक्त ही है। तू उस अर्थ को प्रश्न के दौरान (उस **'अर्थ'** के आने से पहले) ही पकड़ ले, क्योंकि तुझे ज्ञान है, कि अन्ततः तेरी देह नहीं रहेगी। यह अन्त में तय है, कि अन्ततः भस्मी ही बनेगी और वह अन्त कभी भी हो सकता है।

अन्ततः **'मृत्यु'** होनी है, यह **'तय'** है, लेकिन **कब, कहाँ** और **कैसे** होनी है, यह **प्रश्न** है। बस यही एक प्रश्न है, जो सार्थक, **'स अर्थ'** अर्थात् अर्थयुक्त है। वहाँ समस्त निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थकारी, प्रश्न और उत्तर समाप्त हो जाते हैं। जहाँ समस्त प्रश्न-उत्तर समाप्त हो जाएँ, वहाँ हर प्रश्न सार्थक एवं स्वयं में प्रश्न नहीं जिज्ञासा होगा। उसका हर **उत्तर** भी सार्थक एवं विशिष्ट होगा। सार्थक एवं सही प्रश्न एक ही है, कि आगे, आगे और आगे, सबसे बाद क्या है? कि **'मृत्यु'** है। एक **'मृत्यु'** स्थिति ने आगे के

समस्त प्रश्न और उत्तर समाप्त कर दिए। **'शव'** के लिए **'क्रिया'** होती है। इसलिए उसके लिए बनाया गया कार्यक्रम **'क्रियाकर्म'** है, जिसमें उसके लिए 'कर्म विहीन क्रिया' होती है। **'शव'** कुछ नहीं करता। वह **'स्वयं'** है, लेकिन टस से मस नहीं होता। उसके **'वयम्'** में वह स्वयं है, लेकिन अहं **(मैं)** **'एक'** नहीं है। वही सबको शमशान की ओर लेकर जाता है। उसके बिना कोई नहीं जाएगा। **'क्रियाकर्म'** होता है और **'कार्यक्रम'** बनाया जाता है। उसके लिए बनाए कार्यक्रमों और होती क्रियाओं में उसकी 'कर्मविहीन उपस्थिति' आवश्यक है। **'शव'** स्वयं है, शेष सबमें कोई अहं है, कोई आवाम है, कोई वयम् है। वहाँ कोई **'व्यक्ति'** उसके साथ नहीं जाता, सबकी मात्र विरक्ति होती है।

परमात्मा ने प्रत्येक देह रूपी प्रश्न के साथ उसका उत्तर सबको दिखा रखा है। **'मैं देह हूँ'** सन्देह में तू प्रश्नों से घिरा हुआ है। इस देह रूपी **'सवाल'** को **'सॉल्व'** (Solve) करना किसी के **'वश'** में नहीं है। देह रूप में तुझे कब, क्या एवं क्यों करना चाहिए, इसका उत्तर कोई मानवीय बुद्धि नहीं दे सकती। अपनी देह के बारे में तू कुछ नहीं जानता, लेकिन एक सद् होश सम्भालते ही जान जाता है, कि मृत्यु कभी भी हो सकती है। उसके बाद तेरी देह की डेढ-दो किलो भस्मी मात्र रह जाएगी। यह तेरी देह का अर्थ है, जो अन्ततः तय है। सभी भिन्न-भिन्न देहधारियों की **'भस्मी'** एक ही है। **'भस्मी'** के लिए तू Insured है। देह रूप में तू सबसे भिन्न है। तेरी प्रतिभाएँ, मानसिक स्तर, बनावट, चाल-ढाल, स्थितियाँ, परिस्थितियाँ सबसे भिन्न हैं। तेरा जीवन अलग है और देह रूप में जो तू जीवित है, वह अलग है। तू कैसा जीवन व्यतीत करे, इसके लिए स्वयं प्रभु ही तेरे निर्देशक बन सकते हैं।

प्रभु से सम्पर्क करना तेरे लिए असम्भव नहीं तो बहुत ही कठिन है। तू एक सरल सा कार्य कर। तुझे मानव-देह प्रभु ने क्यों दी है ? प्रभु के अर्थ को छोड़कर तू अपनी देह का अर्थ अधिगृहीत कर। अन्ततः जो होना है, वह **'भसम'** है। तू डेढ़-दो किलो **'भसम'** रूप में पड़ा होगा। हवा चलेगी तो उड़ेगा, पानी पड़ेगा, तो बह जाएगा। अग्नि तुझे कुछ नहीं कह सकेगी। क्योंकि चिता

की अग्नि में जलने के बाद भसम प्रकट होगी। इसके आगे प्रश्न पूछने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

सभी जानते हैं और मानते भी हैं, कि अन्ततः मृत्यु होगी और **'शव'** चिताग्नि में जलेगा और पंच-महाभूतों में विलय हो जाएगा। प्रकट भस्मी को गंगा-यमुना के जल में विलीन कर दिया जाएगा। भस्मी प्रकट होने से पहले मृतक देह (शव) पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय हो जाती है। यह **'है'** तेरा **'हैत्व'** है, तेरे होने का **'तत्त्व'** है। पंच-महाभूतों से निर्मित, पालित तेरी **'देह'** अन्ततः पंच-महाभूतों में विलय हो जाएगी अर्थात् तेरी देह पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश रूप में निराकार हो जाएगी और प्रकट **'भस्मी'** जल में **'विलीन'** (समाहित) हो जाएगी। जल में समाहित **'भस्मी'** स्वयं में भस्मी ही रहेगी, लेकिन जल के गर्भ में विलीन हो जाएगी। **'विलय'** होकर **'देह'** नहीं रही, **'भस्मी'** रही और वह जल में **'विलीन'** हो गई। **'विलय'** और **'विलीन'** में समान **'वि'** हटा दिया जाए, तो लय+लीन मिलकर एक शब्द प्रकट होता है–**'लयलीन'।** जिससे ताल्लुक हो, उसमें तल्लीन होना अथवा खो जाना **'लयलीन'** या **'लवलीन'** होना है। लय और लीन का एक होना **'विरक्ति'** है। यह **'स्थिति'** आत्मस्वरूप की स्मृति और जागृति है।

तूने अपनी देह से ताल्लुक रखा है, तू जीते जी सद्गुरु-कृपा से इसके **'अर्थ'** में तल्लीन हो, तू **'स्वयं' में 'लयलीन'** हो जाएगा। जीते जी देह के रहते तू काल, कर्म एवं प्रारब्ध तीनों **'वशों'** से मुक्त हो जाएगा। तद्नुसार तेरा **'एक'** और अनेक तेरे लिए प्रकट होगा। तेरा जीवन दैवीय ही होगा। **'भसम'** किसकी है, यह **'भसम'** से पता नहीं चल सकता। एक **'भस्मी'** हज़ारों, लाखों देहों की हो सकती है। हज़ारों, लाखों देहों की **'भस्मी'** एक ही होती है। सभी देहों के असंख्य प्रश्नों का प्रश्न चिन्ह एक है और अर्थ **'भस्मी'** भी सबकी एक ही है। एक दूसरे से भिन्न समस्त प्रश्नों के आगे लगाया जाने वाला प्रश्न सूचक चिन्ह एक ही है। एक प्रश्न सूचक चिन्ह (सर्प की आकृति '?') की अनुभूति समस्त प्रश्नों को समाप्त कर देती है। जिस प्रकार प्रश्नों का प्रश्न चिन्ह **'एक'** ही है, उसी प्रकार समस्त देहों का

**'अर्थ'** एक ही भस्मी या **'खाक'** है। यह **'प्रश्नों'** का **'सद्'** है। इस खाक से मानव जीवन का **'क', 'ख', 'ग'** शुरू होता है। देह का **'अर्थ'** किसी भी प्रश्न चिन्ह से रहित है, क्योंकि यह **'अर्थ'** भसम किसी नाम-रूप से बँधी देह विशेष या विशेष देह का नहीं है, बल्कि अनाम व अरूप ऐसा पदार्थ है, जो प्रश्नयुक्त उत्तरों और उत्तरयुक्त प्रश्नों से भरी हर मानव-देह का एक **'अर्थ'** है। एक अर्थ **'भसम'** की तू जीते जी अनुभूति कर ले, तेरे समस्त प्रश्नों का महात्म्य समाप्त हो जाएगा।

**'मैं'** को **'भस्मी'** के साथ जोड़ते ही प्रश्न सूचक चिन्ह समाप्त हो जाता है। न **'मैं'** का कोई नाम रूप है और न **'भस्मी'** का कोई नाम रूप है। समस्त प्रश्न-उत्तर **'नाम-रूप'** के हैं। **'रूप'** है, तो **'नाम'** है। **नाम का आधार रूप है। 'संहार' वस्तुतः नाम के आधार का संहार है।** तू देह के **'अर्थ'** को जीते जी आत्मसात् कर। **'मैं भस्मी हूँ'** भाव तुझे 'मैं देह हूँ' सन्देह से मुक्त कर देगा। यह देह का वह क्षेत्र है, जहाँ **नाम-रूप समाप्त हो जाता है।** इस **'अर्थ'** से तू जीते जी आत्मसात् होते हुए प्रश्न सूचक चिन्ह ही हटा देगा। तू अन्त के अन्त के इस पदार्थ को अनुभूतिगम्य करने की शीघ्रातिशीघ्र इच्छा कर।

सद्गुरु-कृपा से इस **'अर्थ'** की अनुभूति (Realization) के लिए तुझे जीते जी अपने संहार का मार्ग (Route) लेना होगा। तुझे ध्यान में अपनी मृत्यु और शव का चिताग्नि में दहन होते देखना पड़ेगा। विश्व में एक ही **'पदार्थ'** है, वह है–**'भस्मी'**, जो पंच-महाभूतों के क्षेत्र से बाहर पंचातीत है, इसलिए प्रपंचातीत है। यह **'पदार्थ'** ही तेरे **'पद का अर्थ'** है, तुझे पदार्थी होने के लिए जीते जी अर्थार्थी (अपनी अर्थी का अर्थ जानने का इच्छुक) होना होगा। अन्यथा संसार के पदों एवं पदार्थों में तू भटकता रहेगा। तुझे एक नश्वर, पल-पल परिवर्तनशील, क्षणभंगुर मानव-देह मिली है। यह देह एक दिन थी नहीं और कोई भी क्षण ऐसा होगा, जब यह रहेगी नहीं। तू उस **'अक्षुण्ण क्षण'** का शीघ्रातिशीघ्र जीते जी अधिग्रहण कर। **'अर्थार्थी** और **'पदार्थी'** बन। तू **'संहार'** का सहारा ले, शीघ्रातिशीघ्र अपनी **'भसम'** से

आत्मसात् होने का प्रकरण कर। तू **'स्वयं'** में **'स्थित'** हो। **'कर्म विहीन क्रिया'** जिस स्थिति (शवावस्था) में होती है, उससे आत्मसात् हो।

पंच-महाभूतों **से** निर्माण, पंच-महाभूतों **द्वारा** पालन और पंच-महाभूतों **में** संहार (विलय) से शिव निर्विकार, गुणातीत, निर्विशेष और निर्लिप्त है। जैसे-जैसे तू ध्यान में पुनः पुनः भस्मी के साथ आत्मसात् होता जाएगा, वैसे-वैसे रूप और नाम का शिकंजा ढीला पड़ने लगेगा। तूने देह रूपी प्रश्न को छोड़ कर उसके उत्तर को महत्व दिया। उत्तर को जान लिया अथवा जानने की चेष्टा की। यह उत्तर या अर्थ प्रश्न (देह) से मुक्त है। पहले तेरे लिए तेरी देह प्रश्न बनी हुई थी, लेकिन **'अर्थ'** से आत्मसात् होने की चेष्टा में देह, यथा+अर्थ (यथार्थ) हो जाएगी। तू प्रश्नों से, उत्तरों से, उत्तरों से उत्पन्न हुए प्रश्नों और उत्तरों से मुक्त हो जाएगा। यही तेरा कर्म है। जिस देह से देह का उत्तर या अर्थ अधिग्रहण कर लिया, उसे देह रूपी प्रश्न का महात्म्य नहीं रहेगा। इस उत्तर को जीते जी अधिग्रहण करने की इच्छा मात्र से देह रूप में तेरे समस्त उत्तरदायित्व समाप्त हो जाएँगे। जब जीते जी तू **'व्यक्ति'** से अपनी **'विरक्ति'** का अधिग्रहण कर लेगा, तो तुझ सहित तेरे द्वारा **'कर्मविहीन क्रिया'** ही होगी। तू सभी प्रश्नों से मुक्त होकर अर्थयुक्त सार्थक यथार्थ देह में देह व जगत का रसास्वादन करेगा। अपनी **'भस्मी'** की अनुभूति करते-करते तेरी देह व जीवन के प्रश्नों का हल स्वतः दैवीय हो जाएगा। यदि तू देह रूपी प्रश्न का अर्थ या उत्तर लेकर चलेगा, तो तुझे चलने की आवश्यकता नहीं होगी। तेरे लिए समस्त प्रबन्धन दैवीय ही होगा। दैवीय कम्प्यूटराइज़्ड कार्य प्रणाली से जुड़ कर तू जीवन के प्रत्येक पल का रसास्वादन करेगा। तेरी बुद्धि की विवेक, प्रज्ञा, मेधा और ऋतम्बरा दैवीय विधाएँ जाग्रत हो जाएँगी।

***''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''***

**(27 जून से 18 अगस्त 2012 )**

# संहार (यज्ञाग्नि)

## (भाग – 8)

**ई**श्वर कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का सृजनकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता है और उसका मानसपुत्र जीवात्मा इनका एकमात्र दृष्टा है। दोनों अदृश्य हैं। युगों-युगान्तरों में विस्तृत साकार और निराकार दृश्यमान सृष्टि नित नूतन है। समस्त दृश्यमान सृष्टि की पूर्णतः प्रतिनिधि मानव-देह ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट सुकृति है। जो-जो, तत्व जिस-जिस अनुपात में सम्पूर्ण सृष्टि में है, वह सब उसी अनुपात में एक मानव-देह में है। **जिसका, जिससे और जैसा निर्माण, पालन एवं संहार** परमात्मा ने किया है, मात्र मानव-देह द्वारा वह दिखा सकता है। मात्र मानव-देह द्वारा ही दृष्टा जीवात्मा वह सब कुछ देख सकता है, जो वह स्रष्टा दिखा सकता है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों सच्चिदानंद हैं। चेतन और आनन्द अदृश्य हैं और देह सहित कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की दृश्यमान सृष्टि ईश्वर का **'सद्'** है। **'सद्'** द्वारा ही **'सद्'** देखा जा सकता है। **'सद्'** एवं **'असद्'** दोनों का आधार **'सद्'** है और **'सद्'** का आधार **'चेतन'** व **'आनन्द'** है। सुख, दुःख क्षणिक हैं तथा **'अवचेतना'** में हैं। **'जड़ता'** में न सुख है, न दुःख है। **'चेतना'** में भी सुख, दुःख नहीं है, लेकिन आनन्द ही आनन्द है और आनन्द अक्षुण्ण है।

मानव-देह में ईश्वर प्रदत्त, वंशानुगत और स्वयं विकसित प्रतिभाओं, गुणों, अवगुणों का सदुपयोग ही **जीवन** है। अन्यथा सब कुछ जीवन से अन्यथा है, दूसरे शब्दों में अन्य अथाह है। जिस ईश्वर द्वारा मानव देह निर्मित, पालित एवं संहारित है, वह जब स्वयं इसका उपयोग करता और करवाता है, वही इसका **'सदुपयोग'** है। क्षण-क्षण क्षरित होते असंख्य

क्षणिक क्षणों की देहावधि के सदुपयोग में क्षणिक क्षण भी अक्षुण्ण हो जाते हैं। अनुभूतिगम्य आनन्द से आविर्भूत जीवन ही मानव जीवन है। जीवन और आनन्द पयार्यवाची हैं। जो आनन्द से अन्यथा है, वह जीवन नहीं है। देह के दौरान जो क्षण आनन्दानुभूति के हैं, वही जीवन है, अन्यथा सभी क्षण क्षणिक हैं। क्षय होने वाले क्षण **जीवन** द्वारा अक्षय हो जाते हैं।

मानव के लिए अनिश्चित, लेकिन एक सुनिश्चित अवधि से बँधी मानव-देह किसी मानव की नहीं है। मानव-देह नामक सुकृति की जन्म-मृत्यु के छोरों में बँधी अवधि को **'आयु'** कहते हैं। यह देहाकृति न केवल अपनी समय की अवधि बल्कि जन्मों-जन्मान्तरों के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष असंख्य अन्य बन्धनों में बँधी है। प्रारब्ध, काल, कर्म तीन मुख्य बन्धन हैं, जिनके ये **'वश'** में है। जिसका अन्त शव में है और काल, कर्म, प्रारब्ध तीन वशों में बँधी है, वह इन **'वशों'** से मुक्त हो जाए, यही इस सुकृति की देहावधि का लक्ष्य है। सम्पूर्ण देहावधि में मानव देह क्षण-क्षण परिवर्तनशील है और अन्ततः **'भस्मी'** बन जाती है। यह देह के **'सद्'** हैं। जब तुझे देह के इन **'सदों'** की Realisation हो जाएगी, तो स्वतः देह का सदुपयोग शुरू हो जाएगा, क्योंकि ईश्वरीय कृत्यों में तेरा अपना हस्तक्षेप नहीं रहेगा। उसके बाद होने वाला प्रत्येक कर्म व अकर्म **'मर्मयुक्त'** होगा। फिर जो होगा, सदुपयोग ही होगा।

आध्यात्म, सद्गुरु सेवा, प्रवचन-श्रवण, स्वाध्याय, चिन्तन-मनन **'वास्तविक (Real) सद् देह'** के लिए ही है। अवास्तविक देह **'मैं देह हूँ'** सन्देह रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में अपने अज्ञान को ही तथाकथित ज्ञान माने रहती है। वास्तव में हम मानव अवास्तविक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। एक वास्तविक (Real) देह है और दूसरी अवास्तविक (Conceptual) देह है। अवास्तविक (Conceptual) देह वह गर्भित देह है, जिसके लिए माँ के गर्भ में गर्भाधान (Conception) हुआ। Factual देह वह गर्वित देह है, जो काल, कर्म, प्रारब्ध, जन्म, मृत्यु आदि बन्धनों से मुक्त है। यह बंधन Conceptual देह **'का'** है और Conceptual देह ही इनसे बँधी है तथा अन्ततः बँधी-बँधाई ही चली जाती है।

ईश्वर की सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट सुकृति मानव-देह है। इस देह जैसी देह किसी अन्य प्राणी की नहीं है। दुर्भाग्यवश, अज्ञानवश मानव ने इस देहाकृति पर अनधिकृत अधिपत्य कर लिया, कि देह मेरी है और मैं देह हूँ। इस मान्यता के साथ मानव युगों-युगान्तरों से चला आ रहा है। मानव में मानने, मनवाने और मनाने की अपार शक्ति है। जब यही मानव, मानव देह द्वारा जो किसी मानव की नहीं है, यह मान लेता है, कि 'देह मेरी है, मैं देह हूँ,' तो इसके समस्त दुःखों की अनन्त श्रृंखला शुरू हो जाती है। बिना जाने देह पर अधिपत्य करने के कारण मानव ही समस्त प्राणियों में सबसे अधिक दुःखी एवं पापों-पुण्यों से ग्रसित व भयभीत विचरता है। मानव अपनी ही मान्यताओं के कारण फँसा हुआ है। जिसने माँ के गर्भ के नौ महीने मान लिए, जिसने अपना पैदा होना मान लिया, जिसने एक विशिष्ट तिथि को अपना जन्म-दिवस मान लिया, जिसने अपना शैशव, निद्रा और अपनी मृत्यु की मान्यताओं के साथ बहुत से निराधार सम्बन्ध, पदार्थ, पद, धन-सम्पदा, प्रौपर्टी, ज़मीन के टुकड़े आदि अपने मान लिए, वह मानव है। मानव शिशु कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता, उसका नाम कोई नामधारी मानव ही रखता है। जैसे ही वह शिशु अपने नाम को पहचानने लगा, नाम की स्वीकृति होते ही उस स्वीकृति को 'मैं' शब्द प्रमाणित करता है। वह स्वयं को उस नाम की देह मानने लगा। जहाँ **'नाम'** रखकर देह को अपना मान लिया, वहीं से यह दैवीय अधिनियमानुसार सज़ाएँ भुगतता है। परमात्मा सज़ाएँ देह और देहों द्वारा ही देता है। यहाँ से इस देहाकृति में तीन मुख्य वर्ग हो गए—मानव, दानव एवं देवता।

अक्सर मानव ने यह जानने की चेष्टा ही नहीं की, कि देह उसकी नहीं है। यदि मानव मानने से पहले देह को जानने की चेष्टा करता, तो प्रभु कृपा से जान जाता, कि उसकी मान्यता निराधार और मिथ्या है। **'मानव'** को जानव नहीं कहा, क्योंकि उसने बिना जाने **'देह'** को अपना मान लिया। यदि जानता तो कभी न मानता, कि देह मेरी है। यही कहता, कि प्रभु की देह है और प्रभु कभी भी इसे ले सकते हैं। यह क्षण-भंगुर और क्षण-क्षण

परिवर्तनशील है, जिसका कुछ भी मेरे हाथ में नहीं है। 'देह मेरी है' मानते-मानते, भूल पर भूल करते-करते एक दिन उसने यह मान लिया, कि 'मैं देह हूँ'। यहाँ देह पर पूरी तरह से कब्ज़ा करते हुए देहाध्यास कर लिया, तो वह **'दानव'** बन गया। दानव अपने सुख के लिए कुछ भी अपराध कर सकता है। उसका ज़मीर एवं आत्मा घोर आच्छादित हो जाती है। आतंकवादी, हत्यारे आदि असुर श्रेणी में आते हैं। **'सुर'** या देवता तीसरी श्रेणी में आते हैं। वे मानते है, कि देह मेरी नहीं है और मैं देह नहीं हूँ। मान्यताओं का मान्यता द्वारा समाप्त होना **'मोक्ष'** है।

'देह मेरी है'—**'मानव'** 'मैं देह हूँ– **'दानव'** 'देह मेरी नहीं है, मैं देह नहीं हूँ, देह भी ईश्वर की है, मैं भी परमात्मा का हूँ—**'देव'।** सुर, असुर और मानव कोई देह नहीं, एक **'मानस'** है, जो देह सहित जगत का प्रेरेक, सम्प्रेरक, संचालक, सम्पादक, संवाहक, संशोधक एवं निर्देशक है। देव, दानव और मानव, वस्तुतः विभिन्न विशिष्ट मानसिकताओं में वर्गीकरण हैं, देहें एक सी हैं। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः विस्तार से वर्णन करूँगा।

मानव-देह एक विशिष्ट **'देहाकृति'** है, जिसमें शास्त्रीय दृष्टि से सुर, असुर और मानव तीन वर्ग-भेद हैं। देहाकृति से हम मानव और पशु में भेद करते हैं और आकृति के प्रकार से हमें एक देह दूसरी से भिन्न नज़र आती है। विभिन्न प्राणियों (जलचर, थलचर एवं नभचर) को हम उनकी देहाकृति (देह के आकार) से पहचानते हैं। मानव ने विभिन्न देहाकृतियों को नाम दिए। कुत्ते को कुत्ता, शेर को शेर, चूहे को चूहा नाम मानव ने दिया। अंग्रेज़ों ने उन्हें Dog, Rat, Lion कह दिया। एक ही आकार में भिन्नताएँ उनके प्रकार से पहचानी जाती हैं। दानव, मानव और देव आकृति की दृष्टि से एक जैसे ही हैं। दानवों के चित्रों में उन्हें भयानक और डरावना दिखाने के लिए उनके बड़े-बड़े नाखून, खड़े बाल, विराट शरीर चित्रित कर दिया जाता हैं। देवताओं को चार या आठ हाथ, चार मुख और शंख, चक्र, धनुष आदि विभिन्न आयुधों एवं पदार्थों से युक्त दिखा दिया जाता है। यह सब प्रतीकात्मक है।

देवता वरदान देते हैं, दानव अनिष्ट करते हैं और मानव विशिष्ट, अभीष्ट हेतु पैदा होता है। यह भेद प्रभु की Creation में है। परिस्थितिवश अस्थाई रूप से अक्सर वर्ग रूपान्तरण भी होता है। देव, दानव और मानव में मानव सर्वोपरि है, क्योंकि उसका देव श्रेणी में रूपान्तरण हो सकता है। देवता, दानव और दानव, देवता नहीं बन सकते। मानव की अधोगति दानव रूप में प्रकट होती है और ऊर्ध्वगति से मानव ही देव श्रेणी में आ जाता है। उदाहरणतः वाल्मीकि **'देववर्ग'** का था, लेकिन परिस्थितिवश डाकू बना और संतो की कृपा से पुनः अपने **'देववर्ग'** को प्राप्त कर रामायण का रचयिता हुआ। कभी-कभी किसी श्रापवश भी ऐसा होता है। असुर श्रेणी के व्यक्ति भी 'मैं देह हूँ' सन्देह में वशीभूत अपने सुख एवं वासनापूर्ति में लगे हुए आजीवन आसक्त, अतृप्त, अशान्त एवं असंतुष्ट ही रहते हैं। पाप-पुण्य से इन्हें कोई सरोकार नहीं होता। दूसरों को कष्ट देकर भी असुर अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लगे रहते हैं। ईश्वर ने इनकी प्रवृत्ति आसुरी बनाई है। अहं भाव से कार्यरत लोगों के लिए वे बाधक और गतिरोधक रूप लेकर सम्मुख आते हैं। जीवन में जिसका **'लक्ष्य'** **'सद्'** की ओर निष्ठा और दृढ़ता नहीं होता, उसे ये तामसिक शक्तियाँ अध्यात्म की ओर जाने में बाधा बनती हैं।

समस्त दृश्यमान सृष्टि परमात्मा का यत्न है। कोटि-कोटि सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड और साकार व निराकार समस्त दृश्यमान सृष्टि स्वयं में रहस्य है। यह रहस्यमयी सृष्टि **'दर्शन'** है, अर्थात् दरश+न, जो दिखाई न दे। इसका स्रोत वह अदृश्य सत्ता सृष्टि का निर्माता, पालनकर्ता और संहारकर्ता स्वयं में महा रहस्य है। वह चित्रकार स्वयं में महा कलाकार **है;** लेकिन तू उसे देख नहीं सकता। तू जो देख कर देख नहीं सकता, सुनकर सुन नहीं सकता, सूँघ कर सूँघ नहीं सकता, स्पर्श करके छू नहीं सकता, चख कर स्वाद नहीं बता सकता, उस रहस्य को शास्त्रकारों ने **'दर्शन'** की संज्ञा दी है।

अबोध शिशु अबोधता में सृष्टि की प्रत्येक विधा को हैरानी से देखता है व सुनता है। शिशु को बोधता नहीं है, इसलिए अबोध है। बोधता में सब शिशु

की हैरानी का आनन्द लेते हैं। शिशु ने अपना शैशव नहीं देखा और जो वह करता है, अबोधता में करता है। उसे यह नहीं मालूम कि वह शिशु है। मानव बोधगम्यता में हैरान हो जाए, तो यह हैरानी अध्यात्म का प्रथम सोपान है। वहाँ से **'दर्शन'** (दरश+न) शुरू होता है। तुझे बोध हो जाए, कि तू वास्तव में अभी भी अबोध है। बोधगम्यता में हैरानी के साथ यह परेशानी हो जाए, कि जो दिखाई नहीं दे रहा, वह कौन व कैसा है? बोधता हैरान होने के लिए है। हमें बोधता में शिशु की भाँति हैरानी होने लगे, तो सारी परेशानी समाप्त हो जाएगी।

हम परेशान इसलिए हैं, क्योंकि हम हैरान नहीं हैं। **'मैं'** इन्हीं माता-पिता से अमुक ग्रह नक्षत्र में, अमुक दिन पैदा क्यों हुआ? भाई-बहनों में अमुक नम्बर पर क्यों हूँ? अमुक स्त्री-पुरुष से मेरा विवाह क्यों हुआ? मेरी सन्तानें इतनी अलग-अलग सी क्यों हैं? मैं कब, कहाँ और कैसे मरूँगा? मैं पैदा ही क्यों हुआ? मैं इतनी तैयारियाँ कर रहा हूँ, इतना एकत्र कर रहा हूँ, उसके बाद अन्ततः मरना आवश्यक क्यों है? यह मृत्यु क्या है? अलग-अलग छोटे-छोटे बीजों से एक ही स्थान पर आम, बबूल, नीम आदि भिन्न-भिन्न प्रकृति के विशाल वृक्ष कैसे उत्पन्न हो गए? आदि-आदि जिज्ञासाएँ बोधता में जब हैरान करने लगें, तो तेरी आध्यात्मिक जगत में प्रविष्टि हो जाएगी। इस हैरानी को ही **'जिज्ञासा'** कहते हैं। जो तुझे हैरान कर दे, उसे **'रहस्य'** कहते हैं। शिशु वाली अबोधता की हैरानी तेरी बोधता में उतर आती है और बोधता में तू आश्वस्त हो जाता है, कि अभी भी तू अबोध है और वास्तव में तू कुछ नहीं जानता। बोधता में तेरी जान्यता और मान्यता दोनों अवचेतना में हैं। तुझे लगने लगे, कि जो तू जानता है, वह जानता **सा** है। शिशु जैसा अधिकार तुझे अपने इष्ट या सद्गुरु पर हो जाए। बोधता में जब तू हर परिवर्तन को हैरानी से देखेगा, तो देखने वाला तेरा अपरिवर्तनीय स्वरूप होगा।

Revise your thinking by your thinking to get out of your thinking. तुझे अपनी सोच द्वारा, अपनी सोच के बारे में चिन्तन करते हुए

अपनी सोच से परे जाना होगा। सोच पर सोच को **'विचार'** कहते हैं। विचार द्वारा अपनी सोच पर हैरानी होने लगेगी और हैरानी सोच से परे ले जाएगी। सबसे बड़ी हैरानी यह है, कि मानव ने उस देह को अपना मानते हुए उस पर अधिपत्य कर लिया, जो उसकी नहीं है। **मानव-देह** स्वयं में रहस्यमयी सुकृति है, जो तुझे मिली है, तेरी नहीं है, क्योंकि कभी भी छीन ली जाएगी। इसलिए बोधता में तू हर विधा को हैरानी से देख। फिर हैरान होते हुए बोधता में यह जान ले, कि इस रहस्य के स्रोत को तू नहीं जान सकता। फिर हर फूल की अलग-अलग सुगन्धि तुझे हैरान करने लगेगी, कि मिट्टी ने बीजों को इतनी अलग-अलग सुगन्धियाँ कैसे दीं ? मिट्टी में डाली जाने वाली खाद दुगर्न्धित थी और फूल महा सुगन्धित कैसे हैं? प्रभु के रचाए इस जादू की हर विधा तेरी हैरानी का हेतु बनकर तेरे और इस जादू के **'हैत्व'** को अनाच्छादित कर देगी। हैरानी शब्द में से **'है' हैत्व** का दर्शन है। **'हैरानी'** से तेरे पल्ले पड़ जाएगा, कि जो **'है'** वह तेरी पहुँच से परे है। तू उसकी अनुभूति और दर्शन के लिए लालायित होते हुए जब परेशान हो जाएगा, तेरी बाकी परेशानियाँ हमेशा के लिए समाप्त हो जाएंगी।

शिवतत्त्व स्वयं में अदृश्य है। शिवत्व अदृश्य से निराकार (पंच-महाभूतों) में आता है और निराकार को आकार आद्याशक्ति माँ भवानी देती है। माँ भवानी की सहायिका **प्रकृति** विभिन्न आकारों को प्रकार देती है। एक ही चेहरा रोज़ बदलता है और प्रत्येक भिन्न-भिन्न चेहरा नित्य परिवर्तित होता है। हर परिवर्तन स्वयं में नूतन होता है। सभी आकारों में प्राणशक्ति शिव की है। वही प्राणों का विस्तार और संवाहन करता है। स्रष्टा परमात्मा और जीवात्मा दोनों स्वयं में अदृश्य हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत को दिखाने (परमात्मा द्वारा) और देखने के लिए (जीवात्मा द्वारा) मात्र मानव-देह ही चाहिए। अदृश्य परमात्मा ने मानव देह को अपनी समस्त चराचर सृष्टि दिखाने के लिए प्रयोग किया और अदृश्य जीवात्मा ने देखने के लिए इसका अवलम्बन लिया। दिखाने वाले (स्रष्टा परमात्मा) ने बहुत से **'क्षण'** देखने वाले को देकर उस के मानस(Mood) के अनुसार दृश्य प्रकट

किए। दृष्टा आत्मतत्त्व को दृश्य देखने के लिए और **'मैं'** शब्द, रूप में प्रकट होने के लिए देह का आधार (अवलम्बन) आवश्यक था। **'मैं'** शब्द, न देह का प्रतिनिधि है और न स्रष्टा परमात्मा का प्रतिनिधि है, मात्र जीवात्मा का प्रतिनिधि है। देखने वाला जीवात्मा यद्यपि स्वयं में परमात्मा का ही अंश है, लेकिन प्रतिनिधित्व प्रकट करने में **'मैं'** मानव-देह का अवलम्बन लेते हुए भ्रमित हो गया, कि मैं देह हूँ। **अतः दिखाने के क्षणों और देखने के क्षणों में समन्वय नहीं रहा।**

आत्मतत्त्व द्वारा मानव-देह का अवलम्बन लेते हुए देखने के क्षणों और स्रष्टा द्वारा इसी देह के माध्यम से निर्माण, पालन व संहार तीनों विधाओं में अपनी चराचर सृष्टि दिखाने के क्षणों में महा समन्वय ही सृष्टि के रसास्वादन का हेतु है। **'तू'** (परमात्मा) है, तो **'मैं'** (आत्मतत्त्व) है। **'मैं'** मात्र दृष्टा है और **'तू'** स्रष्टा के साथ-साथ **'मैं'** (आत्मतत्त्व) का महादृष्टा भी है। अतः **'मैं'** तू नहीं है और **'तू'** मैं भी है। इन भावों में देखने वाले के क्षण, दिखाने वाले से समन्वित हो जाएँगे। यथार्थ मानव-देह स्वयं में **'सद्'** है, अतः चेतनामयी व आनन्दमयी है। लेकिन इसकी पाँच अवस्थाएँ (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) जड़ता में होने के कारण इनमें **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं हो सकता। इसलिए इन अवस्थाओं में स्वयं को किसीने नहीं देखा। **'मैं'** ही मुखिया है और मुख्य है।

परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से **'मैं'** शब्द का प्राकट्य देह व जगत का होना प्रमाणित करने के लिए आवश्यक है। मानव का वास्तविक **'कर्म'** जन्म-मृत्यु (काल) में बंधी Conceptual **'देह'** से देहातीत होना है। **'देहातीत'** देह के बाद का नहीं, देह के रहते देह से परे का क्षेत्र है। जहाँ से देह सहित सम्पूर्ण जगत का प्राकट्य, पालन, संचालन, सम्पादन, संवाहन, प्रतिपादन एवं लय होता है। जड़ता में तू जीवित भी हो, तो भी **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं हो सकता। वहाँ देखने और दिखाने का प्रश्न नहीं होगा। क्योंकि तू देखने योग्य नहीं होता, इसलिए वह दिखाता नहीं। देह अवचेतना में जो **'मैं'** देखता है, वह इसकी तथाकथित चेतना (Awareness)

है। जीव, देह अवचेतना में महाचेतना से विमुख होकर बहुत कुछ देखना चाहता है और उसमें भ्रमित रहता है। **'चेतना'** (समाधि) में देह होते हुए देह की अवचेतना नहीं होती। इसलिए **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं होता। वहाँ तू ऐसी मानसिक भूमिका में होता है, जहाँ आत्मतत्त्व होता है; लेकिन **'मैं'** शब्द रूप में उसका प्रतिनिधित्व प्रकट नहीं होता। चेतना के विशिष्ट स्तर के बाद इतनी चेतना होती हैं, कि देह और जगत के होते हुए तुझे उसकी Consciousness नहीं होती। जब वह चेतना प्रकट होगी, तो वहाँ स्रष्टा (परमात्मा) और दृष्टा (जीवात्मा) का समन्वय होगा।

दर्शित मानव-देह के पाँच आयाम हैं, जो अपने स्वयं के किसी मानव ने नहीं देखे। मानव स्वयं में न सृष्टिकर्ता है, न दृष्टा। जब तू अवधारणा द्वारा अपनी निद्रा, मृत्यु और भस्मी की अनुभूति करेगा, तभी तेरा वास्तविक जीवन प्रारम्भ होगा। मानव-देह का दृश्यमान आयाम सम्पूर्ण दृश्यमान का प्रतिनिधि है और इसका अदृश्य आयाम परमात्मा, जीवात्मा और ब्रह्मात्मा का प्रतिनिधित्व करता है। दृश्यमान देह सहित जगत के क्रियाकलाप को देखने के लिए जीवात्मा का प्रतिनिधित्व शब्द **'मैं'** स्वयं में **'शब्द ब्रह्म'** है। जिसके बिना ब्रह्म का अनुमान भी नहीं होता। इस प्रतिनिधित्व में कभी चेतना की प्रधानता होती है और कभी आनन्द प्रधान होता है। **'मैं'** को शब्द रूप में प्रकट होने के लिए सम्पूर्ण सृष्टि की प्रतिनिधि जीवित व जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन आवश्यक है। मानव-देह में **'मैं'** शब्द के प्राकट्य के लिए अवचेतना में चेतना का विशिष्ट स्तर होना आवश्यक है। पूर्ण चेतना और पूर्ण जड़ता में देह **'मैं'** शब्द प्रकट् करने योग्य नहीं होती। अतः **'मैं'** शब्द देह अवचेतना में ही प्रकट होता है। इस प्रकाट्य में शब्द **'मैं'** (आत्मतत्त्व **सा**) नाम **से** गुण्ठित देह के **रूप से** के साथ तद्रूपता **सी** में कुण्ठित हो गया। **'मैं'** लगते ही **'एक'** एक से अनेक हो गया। फिर भी भिन्न-भिन्न अनेकोनेकों में **'मैं'** एक ही होती है। **'मैं'** प्रकट होते ही देह सहित जगत सहित सम्पूर्ण सृष्टि दृश्यमान होते हुए क्रियान्वित हो जाती है। प्रतिनिधि को जिसका वह प्रतिनिधित्व कर रहा है, एक निमिष के लिए

भी उसे भूलने का अधिकार नहीं है। लेकिन यहाँ **'मैं'** अपना स्वरूप तथा देह अपना यथार्थ भूल गई। जिस देह का तनिक अवलम्बन लेकर शब्द **'मैं'** प्रकट हुआ, वह अर्थहीन ही नहीं निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ युक्त थी, क्योंकि उसका सतत् बदलता रूप **सा,** एक नाम के साथ गुण्ठित व कुण्ठित था।

पंच-महाभूतों की दर्शित देह जो जन्म-मृत्यु में बँधी है, वह प्रपंच एवं एक जादू है। वास्तविक देह नित नूतन है, जगत सहित प्रकट होती है और अप्रकट होती है। उसका अपना कोई कार्यक्रम नहीं होता। वास्तव में इस वास्तविकता (Reality) से अनभिज्ञता में मानव देह ने देह के **'सद्'** को आच्छादित कर दिया। **'देह मेरी है'** और **'मैं देह हूँ'** यह अज्ञान है, जिससे मानव जन्म-दर-जन्म अनभिज्ञ रहता है। **'मैं'** नाम, रूप और होना एक जटिल्य बन गया। सबके **'नाम'** और **'रूप'** पृथक्-पृथक् हैं और सबका होना एक ही **'मैं'** द्वारा ही प्रमाणित होता है। **'मैं'** पहचान करता है और करवाता है। **'मैं'** शब्द के प्रकट होने पर इस जटिल्य के चार अंगों के समूह ने देहाधिपत्य (देह मेरी है) और देहाध्यास (मैं देह हूँ) का क्रियान्वयन एवं प्रमाणिकता गुण्ठा एवं कुण्ठा में की। तभी देहत्व, आत्मतत्त्व एवं ईश्वरत्व तीनों पर आवरण पड़ गया।

जिस देह का जन्म बिना नाम के हुआ था, उसके होश में आए बिना तथाकथित होश वालों ने उसका नाम रख दिया। शैशव जड़ता है। इसमें चेतना के विशिष्ट स्तर पर अर्थात् अवचेतना में अवचेतना के ही विशिष्ट स्तर पर उसने भी स्वयं को उस नाम से पहचानना शुरू कर दिया। इस पहचान को ही आत्मतत्त्व के प्रतिनिधि **'मैं'** की शब्द-रूप में जागृति कहा गया है। **'मैं'** अमुक हूँ जब किसी ने अपना नाम बताया, यह उसका भौतिक **'होना'** है। **'नाम'** पहले था नहीं और **'रूप'** (देह) जो पल-पल परिवर्तनशील है, दोनों बिना **'मैं'** की जागृति के क्रियान्वित नहीं होते। शब्द **'मैं'** स्वयं आत्मतत्त्व नहीं, उसका प्रतिनिधि है और अनेकों में **'एक'** ही है। लेकिन वह प्रकट होते ही अवचेतना में **'अनेक'** (भिन्न-भिन्न) हो गया। फिर भी एक ही **'मैं'** सबकी रही

और सबकी **'मैं'** एक ही रही। इस पर किसी का किसी से कोई विवाद नहीं है। **'नाम'** और **'रूप'** दोनों पर विवाद है, मतभेद है।

चेतना और जड़ता दोनों में देह व जगत होते हुए नहीं होता। तू विशुद्ध आत्मतत्त्व महाचेतना का अंश है। अतः तू अवचेतना में वह नहीं देख सकता, जो वह महाचेतन स्रष्टा तुझे दिखाना चाहता है। **''उत्तिष्ठ जाग्रत''** निद्रा की जड़ता से उठकर तू जाग्रत हो। निद्रा में तेरी **'मैं' 'खो'** गई थी। अब तू उठकर **'मैं'** को **'खो'** दे। जो तेरे देखने के क्षण हों, वे ही उस स्रष्टा के दिखाने के क्षण हों, तो वे क्षण स्वयं में क्षणिक नहीं, अक्षुण्ण क्षण होते हैं। तू समाधि में जा, जहाँ तू हो और देह व जगत न हो। तू देह नहीं है, तू विशुद्ध आत्मतत्त्व है। उसके बाद जब तू उस समाधि से उठेगा, तो वह देह आत्मामयी होगी। फिर जो स्रष्टा दिखाना चाहेगा, तू वही देखना चाहेगा और तेरी चेतना के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगेगी। जीवन अक्षुण्ण है और मानव-देह क्षणिक है। इसके क्षणिक क्षणों को अक्षुण्ण बनाने के लिए जो, जब, जैसा प्रभु दिखाएँ, उसे तब वही और वैसा देखना होगा। सम्पूर्ण सृष्टि के निर्माणकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता प्रभु हैं। जिस मानव-देह द्वारा उन्होंने दिखाना है, उस देह का एक-एक क्षण उनका है। अतः तू देह के स्वामी अदृश्य परमात्मा से प्रार्थना कर, कि ''हे प्रभु ! जो तू मुझे दिखाना चाहता है, मैं वह देखना चाहता हूँ अन्यथा मैं कुछ देखना नहीं चाहता। मैं जो अन्यथा देखूंगा, वह अर्थहीन ही नहीं निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ होगा। तुम सब कुछ जानते हो और मैं आपकी कृपा से जान गया हूँ, कि मैं कुछ नहीं जानता। अतः तुम ही दिखाओ और तुम ही देखो। अपनी समर्थ और अपनी शक्ति से तुम मुझे अपना खेल दिखाओ।''

यह आध्यात्मिक वैज्ञानिक विधि है, जिसके द्वारा दिखाने वाले (परमात्मा) एवं देखने वाले (जीवात्मा) के क्षणों में अदृश्य रूप से पूर्ण समन्वय हो जाता है। संसार के तुच्छ सुख भोगने के लिए भी चेतना का विशिष्ट स्तर चाहिए। किसी स्वप्न में जैसे ही भोग की स्थिति बनती है, वहीं स्वप्न टूट जाता है, क्योंकि चेतना का स्तर बहुत कम होता है। देह की मोह

निद्रा के टूटने पर ही आनन्दमय स्थिति में प्रविष्टि होती है। दृष्टा स्वरूप में आकर यह मात्र वही देखना चाहता है, जो स्रष्टा परमात्मा दिखाना चाहता है। जब प्रभु दिखाएं और ये देखे तथा मात्र तभी देखे, वहाँ स्रष्टा और दृष्टा के **'क्षणों'** में समन्वय ही होगा। वे क्षण, क्षणिक न रहकर अक्षुण्ण क्षण हो जाते हैं। दृष्टा दृश्यमान सृष्टि को देखता हुआ चेतना तथा आनन्दमय स्वरूप की मस्ती में आविर्भूत रहता है।

मानव और मानव में परस्पर अन्तर भौतिक एवं दर्शित अवस्थाओं का तो है ही, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से मुख्य अन्तर चेतना के स्तर एवं मानस का है। सभी मानव ईश्वरत्व से ओत-प्रोत होते हैं, लेकिन कइयों में चेतना जाग्रत होती है, कइयों में सुषुप्त होती है और कइयों में चेतना का स्तर कम होता है। मानव-जीवन स्वयं में **'यजन'** है। हवन का विस्तृत एवं गहन स्वरूप **'यज्ञ'** कहलाता है। दृश्यमान मानव-देह में अदृश्य रूप से प्रभु ने अष्टादश प्रकार की (कामाग्नि, जठराग्नि, ध्यानाग्नि आदि) अग्नियों का समाहन रखा है। योगी समाधिस्थ होकर विभिन्न अग्नियों का दर्शन करता है। इनमें सर्वोत्तम एवं सिद्ध अग्नि **'यज्ञाग्नि'** है।

पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित और अन्ततः मृतक देह का **'चिताग्नि'** द्वारा पंच-महाभूतों में विलय हो जाता है। पंच तत्त्वों में सर्वोपरि तत्व अग्नि है। अग्नि के प्रकाट्य के लिए और अग्नि तत्त्व को उद्दीप्त करने के लिए अग्नि ही चाहिए तथा अग्नि तत्त्व का विलय भी मात्र अग्नि द्वारा ही हो सकता है। अग्नि तत्व में चिताग्नि समाहित होती है, तभी भस्मी का प्रकाट्य होता है। अन्य की चिता **'दर्शित'** है और स्वयं अपनी चिता **'दर्शन'** है। उस **'दर्शन'** में जीवन का रहस्य और परिभाषा छिपी है। बाहर किसी अन्य को चिताग्नि में जलते देखा जाता है और चिता को देखने में जब अग्नि का समाहन अग्नि में होता है, तो **'भस्मी'** प्रकट होती है। देह की अष्टादश अग्नियों में से सर्वोपरि चिताग्नि (चिदाग्नि) है। अपनी स्वयं की चिता को जब ध्यान में साधक देखता है, तो मानसिक अग्नि के प्रकाट्य से उसकी देह के भीतर सुषुप्त अष्टादश अग्नियाँ जाग्रत हो उठती हैं। दोनों अग्नियों के समाहन में

**'विरक्ति'** प्रकट होती है। चिताग्नि वस्तुतः **'चेतनाग्नि'** है, जो तेरी चेतना की जागृति का हेतु है। **'जीवन'** स्वयं में **'हवन'** है, हर क्षण तेरे मानस में चिता दहन होता रहे, वही तेरी चेतना है। ध्यान में ध्यानाग्नि और चिताग्नि समाहित होकर विरक्ति प्रकट करती है, वह तेरी आन्तरिक **'संहारित देह',** की अनुभूति है, जो स्वयं में विरक्ति है।

यज्ञाग्नि वस्तुतः देवाग्नि है, देवताओं का अग्निरूप है। दृश्यमान हवन की अग्नि में आहुति दिए जाने वाले हव्य पदार्थों को ग्रहण करने के लिए जब देवी-देवता स्वयं अग्नि रूप में प्रकट होते हैं, उस अग्नि को **'यज्ञाग्नि'** कहते हैं। यह यज्ञाग्नि स्वयं में **'अन्याग्नि'** (अन्य+अग्नि) है। यही साधारण दृश्यमान अग्नि और **'यज्ञाग्नि'** में प्रमुख भेद है। अग्नि तो कैसे भी प्रज्ज्वलित हो जाती है और उसमें जो कुछ भी डाला जाए, अग्नि बनते हुए भस्मी बन जाता है। यज्ञाग्नि प्रकट करने के लिए प्रज्ज्वलित दृश्यमान अग्नि का होना आवश्यक है। स्वयं में यज्ञाग्नि अग्नि नहीं, अग्न्याग्नि अथवा अन्याग्नि (अन्य+अग्नि) है। यज्ञाग्नि के प्रकटीकरण के लिए तेरी अदृश्य प्राणाग्नि एवं दैहिक अष्टादश अग्नियों का होम आवश्यक है। मानव इच्छा अथवा चेष्टा से यज्ञाग्नि प्रकट नहीं हो पाती। यज्ञाग्नि मात्र देव इच्छा एवं कृपा से ही प्रकट होती है। अदृश्य प्राणाग्नि, दृश्यमान हवनाग्नि से **'महाग्नि'** को प्रकट करती है। यजन में प्रकट अग्नि में **'देव' अग्नि रूप में प्रकट** होकर स्वयं तेरी आहुतियों को ग्रहण करने हेतु प्रकट होते हैं। **'मैं देह हूँ' 'देह मेरी है'** इस भाव की आहुतियाँ हव्य द्रव्यों के साथ होनी आवश्यक हैं। यह **'भावाग्नि'** स्वयं में देह की अष्टादश अग्नियों से प्राणान्वित है। कर्मकाण्ड और यज्ञ कर्म की आरोपित विधियाँ **'भावाग्नि'** की उत्पत्ति में बाधक हो सकती हैं।

समस्त वक्तव्य का समन्वित सार है, कि मानव-देह एक जीवन्त उपकरण है। तू देह नहीं, स्वयं में जीवात्मा है। **'मैं'** शब्द रूप में तेरा प्रतिनिधित्व प्रकट होने के लिए देह का अवलम्बन आवश्यक था। अवलम्बन लेने में तुझे सन्देह हो गया, कि 'मैं देह हूँ' और तू देह पर अवलम्बित हो

गया। इस प्रकार तेरी देह का यथार्थ और तुझ आत्मतत्त्व का आत्मत्व आच्छादित हो गया। उसके बाद तेरी गर्वित मूल देह लुप्त हो गई और **'मैं'** तत्त्व उस सन्देह युक्त गर्भित देह का प्रतिनिधित्व करने लगा, जो यथार्थ से कोसों दूर थी।

**'मैं देह हूँ'** के सन्देह से युक्त देह **'अंहकारमयी'** होती है। **'मूर्ख'** शब्द का स्रोत्र **'मुख'** है। जिसका मुख्यतः मुख आच्छादित हो गया, वह मूर्ख है। देह के रूप के साथ तद्‌रूपता सी में तेरा अपना विशुद्ध रूप (मुख) आच्छादित हो गया। देह की झूठी शान में तू मूर्ख बना हुआ है। जो तू है नहीं, उस देह पर आधारित जगत एवं विभिन्न सम्बन्धों आदि के ताने-बाने में तू फँस गया। **'सद्'** का आधार चेतन व आनन्द है। यथार्थ देह में आनन्द और चेतन तेरे साथ ही होगा। प्रत्येक मानव-देह चाहे वह देह यथार्थ (यथा+अर्थ) हो अथवा अन्यार्थ (निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ) अन्ततः उसका अन्त तय है, कि वह मृत्यु एवं मृत्योपरान्त चिता दहन होते हुए पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय हो जाती है। इसके बाद एक पदार्थ **'भसम'** रूप में प्रकट होता हुआ दृश्यमान होता है। **'मैं'** शब्द में प्रकट होते ही देह व जगत के दृश्यमान दृश्यों के देखने से पूर्व तू जैसी भी देह है, ध्यान में उसके **'अर्थ'** के साथ आत्मसात् हो। ध्यान में उस देह को उसकी मृत्यु एवं चिता से गुज़ार और संहार दर्शन करते हुए देह की **'भस्मी'** से स्वयं को पहचान, कि मैं भस्मी हूँ। इसका नित्याध्यासन करते-करते देह की अर्थहीनता, निरर्थकता, व्यर्थता एवं अनर्थता समाप्त हो जाएगी। साथ ही **'मैं'** जिस आत्मतत्त्व का प्रतिनिधित्व कर रही है, उसकी स्मृति जाग्रत हो जाएगी। भस्मी युक्त **'मैं'** ही वास्तव में आत्मतत्त्व की प्रतिनिधि है। देहावधि शैशव से शव तक है और जीवन का शुभारम्भ **'शव'** से होता है। जीवन-काल में देह के दौरान अपनी मृत्यु के ख्याल मात्र से जीवन शुरू हो जाता है। अपनी मृत्यु का ख्याल, इच्छा और उसे आत्मसात् करने से साँसों का रूपान्तरण **'श्वास'** (शव+आस) में हो जाता है।

**प्राणायाम का प्रथम सोपान 'प्राण विश्राम' है।** उसके बाद प्राण का

विस्तार शुरू होता है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में स्वयं के विस्तार की अनुभूति प्राणायाम है। उस समय जो श्वास की गति होगी, वह स्वयं में प्राणायाम है। योगी **प्राणों का** नियन्त्रण एवं विस्तार कर सकता है। **'बाह्य'** देह, दर्शित **देह है** और **'अभ्युन्तर'** देह अदृश्य है। वास्तविक देह तब जाग्रत होती है जब तू आँखें बंद करके देखता है, कान बंद करके सुनता है, यह अनुभूति है। तथाकथित बुद्धिजीवी अपने ज्ञान एवं जानकारियों की डींग मारते हैं, लेकिन वास्तविकता (Reality) यह है, कि वास्तव में वास्तविकता (Really Real) का ज्ञान किसी को नहीं है। शास्त्रों को पढ़कर यदि कोई शास्त्री कहलाता है, तो वह विद्वान शास्त्रज्ञ नहीं हो सकता। जिसने अनुभूति के आधार पर शास्त्र लिखा है, वह शास्त्रज्ञ है। उसकी हर वाणी शास्त्रों के स्तोत्र होते हैं और वह स्वयं में स्तोत्रों का स्रोत होता है।

जीवन का रसास्वादन, उसकी अनुभूति एवं आनन्द तेरे शव, चिताग्नि में दहन और अन्ततः जो तेरी **'भस्मी'** बनती है, उस पदार्थ से आत्मसातता में अन्तर्हित है। **'मैं'** ने अपनी पहचान नाम-रूप की देह से की, तो आत्मतत्त्व **आच्छादित** हो गया, उसी देह की भस्मी से पहचाना, तो आत्मतत्त्व **उन्मादित** हो गया। **'मैं'** तत्त्व प्रकट होकर इस पदार्थ का अवलम्बन ले, जो देह का देहातीत क्षेत्र है। उसका अवलम्बन लेते ही **'मैं'** प्रतिनिधि रूप में अपने स्वरूप से जुड़ा रहेगा। जैसे ही तू देह की भस्मी से आत्मसात् होने की इच्छा और चेष्टा करेगा, धीरे-धीरे तुझे अपने चेतन व आनन्द की अनुभूति होने लगेगी। तेरा स्थाई निवास शमशान है। शमशान कोई भौतिक स्थान नहीं, मानसिक भूमिका है, जहाँ तेरी झूठी शान का शमन हो जाता है। कोई भी नाम-रूप की देह, जो अपने **'अर्थ'** (**'भस्मी'**) के अनुसार है, वह यथार्थ एवं आत्मामयी है।

*''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''*

**(16 सितम्बर से 26 अक्टूबर 2012)**

# संहार (आधार)

## (भाग – १)

**स**द् चेतन एवं आनन्द तीनों का अविरल एवं अकाट्य संगम सच्चिदानंद ईश्वर स्वयं में अदृश्य है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों में नित नूतन साकार व निराकार दृश्यमान जगत उसकी माया है। चेतन व आनन्द **'अदृश्य'** हैं। **'पंच-महाभूतों'** का प्रपंच यह दृश्यमान माया ईश्वरीय चेतना एवं आनन्द से ओत-प्रोत है, इसीलिए स्वयं में **'सद्'** है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि का अद्भुत, परम रहस्यमय एवं चमत्कारिक संगम मानव-देह, सम्पूर्ण चराचर प्राणी जगत में ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट संरचना है। मानव देह और मानव जीवन दोनों पृथक्-पृथक् हैं। देहावधि में **'देह'** का उपयोग मैं जिस प्रकार करता हूँ, यह मेरा तथाकथित जीवन है। जन्म-मृत्यु के छोरों में बँधा जीवन तथाकथित इसलिए है, क्योंकि यह देह तथाकथित है। **'देह'** शब्द को उल्टा पढ़ें, तो शब्द बना **'हदें'**। जन्म-मृत्यु की हदें तथाकथित देह की हैं, अर्थात् **'जीवन'** इन हदों से परे है।

किसी भी सारगर्भित विधा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण उसका सार्थक **'आधार'** होता है। मानव-देह ईश्वरीय संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट सुकृति है, यह इस देह का **'सद्'** है। इस सद् का आधार और आधार का सद् जानना, मानना और अनुभूतिगम्य करना सदा-सदा के लिए उत्कृष्टतम जीवन व्यतीत करने के लिए परमावश्यक है। इस क्षणिक देह में असंख्य एवं अगणित क्रियाएँ क्षण-क्षण, प्रति क्षण अविरल चलती रहती हैं, जो इसे जीवित रखती हैं। मानव-देह जन्म-मृत्यु की अवधि में तीन वशों से वशीभूत

है। काल, कर्म, प्रारब्ध तीनों बन्धन परस्पर गुँथे-मुँथे हैं। किसी एक **'वश'** के एक अंग से भी देह बाहर आ जाए, तो तीनों से मुक्त हो जाती है। यह दैवीय नियम है। जहाँ कर्म-बन्धन है, वहाँ काल एवं प्रारब्ध का बन्धन भी होगा, जहाँ प्रारब्ध-बन्धन होगा, वहाँ कर्म एवं काल का बन्धन भी होगा ही और जहाँ काल-बन्धन होगा, वहाँ कर्म एवं प्रारब्ध का बन्धन भी होगा। अतः जहाँ कर्म-बन्धन से मुक्ति होती है, वहीं प्रारब्ध एवं काल का बन्धन भी छूट जाता है, प्रारब्ध-बन्धन से मुक्ति होने में काल एवं कर्म का बन्धन भी छूट जाता है और काल-बन्धन से मुक्ति, कर्म एवं प्रारब्ध-बन्धन से मुक्ति का हेतु होती है।

हमें इन तीन वशों से जकड़ी हुई देह मिली है। इस जकड़न की अनुभूति होश सम्भालते ही होने लगती है। आजीवन जकड़न चलती है और जकड़न में वृद्धि होती है। इस जकड़ी  हुई देह का आधार मेरा **'मैं'** जटिल्य (Complex) है। **'मैं' 'नाम' 'रूप'** और **'होना'** चार अंगों के एक दल (गुट) ने देह को जकड़ा हुआ है। 'मैं अमुक-अमुक हूँ' यह संदेह इस देह का क्रियान्वयन करता है। देह की हर सोच, क्रिया, पाने, खोने, लेने, देने, जन्म, मृत्यु, मल, विक्षेप, आवरण, रोग, दोष, वैर, वैमनस्य, ईर्ष्या, आधि, व्याधि, उपाधि का आधार यह **'मैं'** जटिल्य है। यह Baseless base है। काल, कर्म और प्रारब्ध की जकड़न में जो देह बँधी है, वह अपना सदाधार (सद् आधार) खो चुकी। जिस **'मैं'** जटिल्य को उसने अपना आधार मान लिया, वह **'सद्'** नहीं है।

सत्संग **'सद्'** से **'असद्'** को झिकझोड़ने के लिए है। **'सद्'** से जुड़कर **'असद्'** भी (सद्+असद्) सदासद् हो जाता है। तुझे ईश्वर ने देह इसलिए दी है, कि तेरा जन्मों-जन्मान्तरों से चला आ रहा 'मैं देह हूँ' भ्रम दूर हो सके। 'मैं देह हूँ' सन्देह रूपी अज्ञान के अज्ञानवश तूने जन्मों-जन्मान्तरों में देह का दुरुपयोग ही नहीं, सर्वोत्कृष्ट ईश्वरीय सुकृति का अपमान करते हुए प्रभु को तिरस्कृत किया है। इसलिए मानव होते हुए भी D.P.C. (Divine Penal Code) अर्थात् दैवीय अधिनियमों के तहत प्रभु की 1008 धाराओं के अन्तर्गत जन्म-दर-जन्म धारावाहिक सज़ाएँ भुगत रहा है। जीव अपना

आधार छूट जाने के कारण स्वयं में निराधार हो गया। सन्देहवश (मैं देह हूँ) अपनी उन्नति का आधार अवनति को और अवनति का आधार उन्नति को मानता है। जो तेरे पास था नहीं और अन्ततः रहेगा नहीं, उसे आधार मानकर कभी सुखी कभी दुःखी रहता हुआ अपने मूलाधार से वंचित रहता है। जिस आधार पर **तू** स्वयं को सफल, असफल, उन्नत, अवनत, छोटा, बड़ा, सुखी, दुःखी, विख्यात, कुख्यात, सब कुछ, कुछ नहीं, विस्तृत, संक्षिप्त आदि मानता है, उस आधार का आधार **'सद्'** नहीं है। इसलिए कुछ भी, कभी भी, कैसा भी होने में तुझे संतुष्टि नहीं है।

सद् खो चुका **आधार सा** तेरे होने का आधार **सा** है। जो आधार **सा** है और उस पर जो आधारित **सा** है, उसे तूने जीवन मान लिया है। जबकि वह जीवन नहीं, देहावधि में अर्थहीन, निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ बताया गया **'जीवन सा'** (Life) है। साथ ही तेरी देह, **देह सी** है। इस **'सी-सा'** में कलपता हुआ तू काल्पनिक काल-चक्र में कर्म-बन्धन एवं प्रारब्ध-बन्धन में बँधा सा जन्मों-जन्मान्तरों से भटक रहा है। इसीलिए ईश्वर भी तेरे लिए ईश्वर **सा** है और आत्मतत्त्व, आत्मतत्त्व **सा** है तथा जिसे तूने अपनी मान लिया, वह मानव-देह तेरे लिए आधार खो चुकी देह **सी** है। तू इसी में तथाकथित जिए जा रहा है। जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है, लेकिन तू इसी में **'व्यस्त'** है। जन्मों-जन्मान्तरों से तेरा **'आधार'** खोने से **'अधिकार'** खो गया। इसलिए तू भटक रहा है। अधिकांश मानव निराधार एवं आच्छादित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, क्योंकि **'आधार'** का उन्हें ज्ञान नहीं है। जन्म-मृत्यु के छोरों में बँधी देहावधि को **'जीवन'** माना हुआ है, जबकि जीवन अनादि व अनन्त कल-कल बहती प्रेम-धारा है। एक आधार के अज्ञानवश उन्नति-अवनति, रोने-हंसने, लाभ-हानि, बड़े-छोटे, सफलता- असफलता, अमीरी-गरीबी, पाने-खोने, मिलने-बिछड़ने के हमारे काल्पनिक मापदण्ड हैं और उन्हीं में उलझे हुए हम कभी सुखी तथा कभी दुःखी होते रहते हैं।

समस्त जप-तप, दान-पुण्य, सद्गुरु-सेवा, तीर्थ यात्रा, यज्ञ-हवन आदि-आदि पुरुषार्थपरक कर्म वस्तुतः हमारे वास्तविक आधार की पकड़ के

लिए हैं। इस वास्तविक आधार का वर्णन मैं एक सरल सा दृष्टान्त देकर करूँगा। किसी महापुरुष ने एक व्यक्ति से पूछा, कि ''आपकी आयु कितनी है, कि 'पचपन वर्ष'। आपके पास ये मकान, दुकानें, धन-सम्पदा, प्रौपर्टी आदि कब से हैं,' कि 'पिछले बीस वर्ष से', फिर वह बीस वर्ष पहले की अपनी स्थितियों से अपनी आज की स्थिति की तुलना करते हुए अपनी कर्मठता, प्रयत्नों आदि की डींग मारता है और भविष्य के लिए सोची हुई योजनाओं, परियोजनाओं का भी वर्णन करने लगता है। वह महापुरुष बिना उसकी बातों से प्रभावित हुए पूछता है, कि 'आप बीस वर्ष पहले 35 वर्ष की आयु में भी मर सकते थे और भगवान करे आप चिरंजीवी हों, लेकिन मृत्यु तो किसी भी क्षण आ सकती है। बीस वर्ष पहले यदि आप मर गए होते, तो जो आपकी भस्मी बनती और आज से बीस-तीस-पचास वर्ष बाद मरें, तो जो भसम बनेगी, उसमें क्या कोई अन्तर होगा?'' कि 'नहीं'। पहले वह व्यक्ति स्वयं को दीन-हीन और छोटा व्यक्ति समझता था, आज बहुत सम्पन्न और बड़ा आदमी समझ रहा है तथा भविष्य में और बड़ा बनने की आसक्ति है। उसने देह व जीवन का **'अर्थ'** अथवा अपना वास्तविक आधार छोड़ दिया है। इसलिए जीव के पास अपनी उन्नति-अवनति आदि का कोई स्थिर मापदण्ड नहीं है। सब कुछ वस्तुतः 'सद्' पर **टिका** है, लेकिन 'सद्' से विमुखता के कारण **टिकाउ** नहीं है।

ईश्वर की सम्पूर्ण साकार संरचनाओं में सर्वोकृष्ट सुकृति मानव-देह है। प्रभु ने इस अद्भुत एवं रहस्यमयी, चमत्कारिक देहाकृति में परम विलक्षण बुद्धि, कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं। जब मानव इस देहाकृति पर अधिपत्य (देह मेरी है) कर लेता है, तो इसका आधार बनने की भूल करता है। इस विशिष्टतम् आकृति का **'देहधारी'** मानव है, लेकिन मानव **'देहाधारी'** (देह+आधारी) नहीं है। अर्थात् कोई मानव इस देहाकृति का आधार नहीं है। दूसरे शब्दों में यह सर्वोत्कृष्ट ईश्वरीय सुकृति किसी मानव पर आधारित नहीं है, इसीलिए किसी मानव की नहीं है। क्षण-क्षण इसका निर्माण, पालन एवं संहार पूर्णतः ईश्वर पर निर्भर है। सृष्टिकर्ता (परमात्मा)

द्वारा रचित चराचर जगत में जो असंख्य नित नूतन संरचनाएँ निर्मित, पालित और संहारित हैं, थीं और होंगी, उनका अवलोकन मात्र मानव-देह द्वारा ही सम्भव है। मात्र मानव-देह ही ऐसी सुकृति है, जिसके द्वारा दृष्टा जीवात्मा निर्माण, पालन एवं संहार तीनों विधाओं में प्रकट स्रष्टा (परमात्मा) की समस्त लीलाओं को देख सकता है।

सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड जो **'नित नूतन'** हैं, उनका आधार **'सद्'** है। जो कल **'था'** वह **'है था',** जो आज **'है'** वह **'है है'** और जो कल होगा, वह **'है होगा'**। जो आज **'है है'** वह प्रकाट्य **'सद्'** है। इसलिए प्रत्येक दृश्यमान प्रकाट्य जो **'नित नूतन है उसका आधार'** स्वयं में **'सद्'** है। सद् का आधार चेतन और आनन्द है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश का आधार **'सद्'** है। पंच-महाभूत स्वयं में सशक्त हैं, लेकिन सहज जड़ हैं। अर्थात् इन पंच महाभूतों में अपनी बुद्धि नहीं है। इनकी कोई भी गति इनकी इच्छा से नहीं हो सकती। इनकी दशानन (अविरल, अकाट्य, अबाध, निरन्तर, चिरन्तर, परम विशिष्ट, सारगर्भित, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) गतियों का समस्त निर्देशन, सम्पादन एवं नियन्त्रण स्थित्यातीत स्थिति अतिशक्ति विरक्ति द्वारा अदृश्य रूप से चुपचाप होता है। पंच-महाभूतों पर आधारित प्रपंच **'स्थित सा'** है। इसलिए पंच-महाभूतों में निर्मित स्थित सा है, पालित स्थित सा है और नित नूतन है। निर्माण, पालन व संहार करने वाला परमात्मा और उसका दृष्टा जीवात्मा **'नित्य'** है। दिखाने वाला परमात्मा एक तथा देखने वाला (जीवात्मा) एक है। पंच-महाभूतों की दृश्यमान सृष्टि की हर विधा **'स्थित सी'** है। अस्थिर पर स्थिर ही शासन कर सकता है। पृथ्वी का भोग वीर ही कर सकता है। वीर वह है, जो विरक्त है। शक्ति स्थिरता की है।

पूरे ब्रह्माण्ड में हर **'स्थित'** भी वस्तुतः **'स्थित सा'** है, क्योंकि पंच महाभूत अदृश्य रूप से दशानन गतिशील हैं। अदृश्य गति की तुलना घड़ी की घण्टे की **'सुई'** से हो सकती है। समय की गणना घड़ी की तीन सुइयों में से घण्टे की उस सुई की स्थिति के अनुसार निर्धारित की जाती है, जो

**'स्थित सी'** है। क्योंकि घूम तो वह भी रही है, लेकिन उसकी गति अदृश्य है। स्थित्यातीत स्थिति अतिशक्ति विरक्ति है, Which has got the power to qualify the movements, institute the movements, stop or disturb the movements, divert or increase the movements. योगी महास्थिर (परमात्मा) से जुड़ा होता है। परमात्मा की स्थिरता उसके प्राणों की गतियों में प्रकट होने लगती है। योगी के योग (जुड़ाव) का प्रमाण उसके प्राणों की स्थिरता है, वह समाधि में रहता है। देह जितनी स्थिर होगी, प्राण-गतियाँ उतनी स्थिर व सूक्ष्म हो जाती हैं। अति शक्ति विरक्ति जो पंच-महाभूतों की समस्त अदृश्य गतियों का कारण है, उससे सम्पर्क ही प्राणायाम है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश में चलती दशानन गतियों का सदुपयोग स्थिरता में है। **'सद्'** द्वारा देह में स्वतः चलती अदृश्य दशानन गतियों का **'स्थिरता'** के लिए किया जाने वाला उपयोग **'सदुपयोग'** है। इस स्थिरता के लिए पूर्ण समर्पण अपेक्षित है। जो महापुरुष स्थित्यातीत स्थिति की अनुभूति करते हैं, वे पंच-महाभूतों को अपने अनुसार चला सकते हैं। मौसम की विधाएँ उनके अनुकूल नित नूतन छटा विकीर्ण करती हैं।

देह के देहातीत की देह **से** खोज, आत्मानुसंधान है। इस विज्ञान को आत्मज्ञान कहते हैं। सम्पूर्ण देहावधि में **'कुछ न कुछ'** प्राप्तियों के लिए दौड़ते-दौड़ते अन्ततः तेरे हाथ कुछ नहीं लगता। किसी जन्म में सद्गुरु कृपा से तुझे देह भाव की गहराई से और प्राप्तियों के लिए निरर्थक, व्यर्थ और अनर्थक दौड़ से मुक्त होने की **'इच्छा'** ही हो जाए, तो तुझे मानव-देह के **'अर्थ'** अथवा **'सद्'** का ज्ञान होने लगेगा। ईश्वर सबको मानता है, चाहे कोई भटक रहा हो, चाहे स्थिर हो, उसकी सम दृष्टि है। सद्गुरु उसीका प्रतिनिधित्व करता है। देह के रहते जीते जी तू इसके आधार से आत्मसात् हो। तभी तेरा **'वास'** भसम में होगा और तेरा **'निवास'** शमशान में होगा। यह **'वास'** और **'निवास'** मानसिक भूमिका है, उसके बाद तू चाहे महलों में रहे या झोपड़ी में, तुझे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

जो, जब, जहाँ, जैसा भी है, उसकी जान ज़रूर जाएगी। यहाँ

जिज्ञासा उठती है, कि इस उत्कृष्ट क्षण-भंगुर पल-पल परिवर्तनशील और पूर्णतः ईश्वराधीन मानव-देह का **'अर्थ'** क्या है? प्रभु ने अन्ततः रह जाने वाली **'भस्मी'** देह के अर्थ रूप में मानव को होश सम्भालते ही दिखा दी है। चेतनामय बुद्धि से यह जान ले और आनन्दमय मन से मान ले, कि प्रत्येक भिन्न-भिन्न देह का **'अर्थ'** अन्ततः एक ही है। मानव-देह क्षणिक है, एक दिन थी नहीं, एक दिन रहेगी नहीं, यह सब जानते हैं। **'मैं'** देह में जीवात्मा का प्रतिनिधि शब्द है, देह 'मैं' और 'मैं' देह नहीं हूँ तथा देह **का** कारण परमात्मा है, यह सब नहीं जानते और कदाचित जानना भी नहीं चाहते। देश, काल, समय, स्थान, स्थिति, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण आदि विधाओं का सम्बन्ध मानव-देह से है। आत्मतत्त्व इन सबसे परे है।

'मैं देह हूँ' यह भ्रम है और भ्रम Conceptual है, गर्भित देह का है। इस भ्रम का ज्ञान होना आवश्यक है। ध्यान, समाधि, स्थिरता द्वारा जो स्थित्यातीत **'स्थिति'** में स्थित है, वह भ्रम से भ्रमित नहीं होता। वस्तुतः वास्तविक आधार कभी नहीं बदलता, क्योंकि **'सद्'** है। एक परमात्मा और एक जीवात्मा शाश्वत् एवं अक्षुण्ण हैं और मानव-देह नश्वर एवं क्षण-भंगुर है। एक के लिए अनेक देहें हैं और सभी देहें **'मैं'** लगाती हैं, तभी **देह** जगत सहित सक्रिय होती है। **'मैं'** शब्द ने प्रकट होने के लिए जिस रूप का आश्रय लिया, वह **'रूप'** (देह) नाम से गुण्ठित था। जब तक **'रूप'** की नाम से गुण्ठित होने की स्वीकृति नहीं होगी, तब तक **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं होगा। **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट होकर इस स्वीकृति की पुष्टि करता है। यह **'रूप'** सतत् बदलने वाला होने के कारण **'रूप सा'** था और **'नाम'** और शब्द **'मैं'** एक ही रहा। **'रूप'** जो दिखाई देता है और **'नाम'** जो सुनाई देता है, दोनों में ऐसी गाँठ पड़ गई है, जो **'गाँठ'** दिखाई नहीं देती। तूने **'मैं देह हूँ'** जटिल्य को अपना आधार माना हुआ है। तू देह नहीं है, तेरी देह का आधार वस्तुतः भस्मी है। तूने वह सदाधार छोड़ दिया।

**'रूप'** दृश्यमान होता है और उसकी पहचान व परिचय **'नाम'** से

होता है। जबकि **'रूप'** से **'नाम'** और **'नाम'** से **'रूप'** पहचाना नहीं जाता। सम्पूर्ण देहावधि की हर अवस्था, स्थिति, परिस्थिति में शब्द **'मैं',** और **'नाम'** का **'होना'** एक रहता है। मात्र **'रूप'** जो सम्पूर्ण देह का प्रतिनिधि है, क्षण-क्षण बदलता रहता है। हर स्थिति में परिवर्तित होते रूप में हर व्यक्ति का **'नाम'** वही रहता है। उसकी उपलब्धियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, लेकिन शब्द **'मैं'** वही रहता है। हर क्षण **'रूप'** बदल रहा है, लेकिन रूप, नाम से और नाम, रूप से गुण्ठित है। रूप (देह) की नाम के साथ ऐसी गाँठ पड़ गई, जो प्रत्यक्ष नज़र नहीं आती। इस गाँठ में **'नाम'** ज्यूं का त्यूं है और **'रूप'** बदला हुआ तथा हर पल बदलता रहता है। दो रस्सियों की इस गाँठ में एक रस्सी (नाम) ज्यूं की त्यूं रहती है और एक रस्सी क्षरित अथवा पुष्ट होती है। इस क्षरित अथवा पुष्ट होती रस्सी से दूसरी रस्सी प्रभावित नहीं होती। **'नाम-रूप'** के गुण्ठन में एक अंग ढीला है पल-पल परिवर्तित है इसलिए यह **'गाँठ'** अदृश्य रूप से बदलती रहती है। शब्द **'मैं'** प्रकट होते ही **'नाम-रूप'** की गाँठ के क्रियान्वयन में **'रूप से'** के साथ **तद्‌रूप सा** हो गया। नाम रखकर, उस नाम की देह को अपना मानते ही तेरी देह **'नाम की'** हो जाती है। **'मैं'** हूँ, देह है, जगत है, लेकिन मैं न देह हूँ, न जगत है। फिर देह रूप में **'मैं'** क्यों हूँ? यह जिज्ञासा भी दुर्लभ है, किसी-किसी विरले महामानव में यह जिज्ञासा उठती है। **'मैं'** नहीं जानता, **'मैं'** क्यों हूँ, मैं जान भी नहीं सकता। लेकिन मैं मानव हूँ, मैं जानना चाहता हूँ, कि देह रूप में मैं क्यों हूँ?

'मैं देह हूँ' एक जटिल्य है, जिसके गुट या दल ने देह का यथार्थ आच्छादित कर दिया। साथ ही स्वयं **'मैं'** का स्वरूप और ईश्वर का ईश्वरत्व भी आच्छादित हो गया। नाम-रूप की गुण्ठा एवं कुण्ठा तथा उसके साथ तेरा होना ही तेरा होना बन गया। उसमें तू डींग मार रहा है। तेरे होने से 'देह सहित जगत सहित' तेरा होना है। जब तू देह नहीं है, तो तेरा जगत भी नहीं है। जब तू देह है, तो ही भूत, भविष्य, वर्तमान, कष्टों, दुःखों, वैर, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, आधि, व्याधि, उपाधि, लाभ, हानि, पाना, खोना,

सफलताओं, असफलताओं आदि असंख्य विशेषताओं और अवगुणों से युक्त जगत तेरे लिए है। कल, आज और कल की निरन्तरता में जिसे तू अविरल माने हुए है, वह जगत वस्तुतः नित नूतन है। तूने निरन्तरता को बनाए रखने और बढ़ाने के लिए जो भूत, भविष्य खड़े किए हुए हैं, उनका आधार **'सद्'** नहीं है।

वस्तुतः **'देह सहित जगत सहित'** और इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है, जो नित नूतन है तथा तेरे **'एक'** के होने से है। देह रूप में कोई कुछ भी बन जाए या बना दे, अन्ततः **'भस्मी'** ही रह जाती है। भस्मी ही हर मानव-देह का निश्चित, दर्शित व परिलक्षित भविष्य है। मानव-देह के इस **'अर्थ'** का **'अर्थ'** यही है, कि छोटा, बड़ा, पापी, पुण्यी, राजा, भिखारी सब परमात्मा का खेल है। इस खेल में प्रभु जिसे जो चाहें बना दें। राजा-भिखारी का अर्थ **'एक'** ही इसलिए है, क्योंकि दोनों का बनाने वाला एक ही है। तेरे 'एक' के सक्रिय **'होने'** का तत्व **'मैं'** स्वयं में जगत सहित **'सर्व'** का है, क्योंकि **'मैं'** सर्व की है।

मानव-देह ईश्वर प्रदत्त उपहार नहीं, एक अनमोल व सुवर्ण अवसर है। इसका एक क्षण भी व्यर्थ करने का अधिकार तुझे नहीं है। जिसे तू life कहता है, वह जीवन नहीं है। जब स्वयं ईश्वरीय सत्ता मानव-देह को चलाती है और तू मूक दृष्टा की तरह इसका रसास्वादन करता है तथा देह द्वारा देखने एवं दिखाने का खेल चलता है–इसका नाम **'जीवन'** है। वहाँ कोई काल, कर्म एवं प्रारब्ध तीनों बन्धन नहीं होते। तू मानव है, सर्वप्रथम यह जान ले और मान ले, कि यह देहाकृति सर्वोत्कृष्ट ईश्वरीय सुकृति है, जो तेरी नहीं है। जिसने इसे बनाया है, जो इसे चला रहा है और किसी भी क्षण जब चाहे इसे ले जाएगा, उस पर तेरा कोई **'वश'** नहीं है–इस जान्यता और मान्यता में तीनों **'वश'** एक साथ समाप्त हो जाते हैं अन्यथा तीनों ग्रसित करते हैं। इसे All and None law कहते हैं।

स्थान, स्थिति, स्थिरता, स्थापत्य अध्यात्म में प्रविष्टि के लिए आवश्यक हैं। ध्यान समाधि से देह **'स्थिर'** होती है। **'मैं'** किसी भी स्थिति,

स्थान और समय में जो **'हूँ'** वह प्रकट होता हूँ। एक मेरे होने से एक देह और एक जगत है। वह एक जगत अनेकों द्वारा मण्डित अथवा खण्डित है। **'तू'** (परमात्मा) है तो **'मैं'** हूँ और मैं जो, जब, जहाँ, जैसा हूँ **'तेरी'** इच्छा से हूँ। मेरे होने से देह और जगत है और मेरा अस्तित्व **'तू'** है। लेकिन देह और जगत का अस्तित्व **'मैं'** नहीं हूँ, तेरी इच्छा से जैसा **'मैं'** हूँ वैसा देह और जगत है। **'तू'** सच्चिदानंद है। **'मैं'** सच्चिदानंद हूँ। मेरा होना भी चेतनामय, आनन्दमय और 'सद्' हो, इसके लिए तुझमें और मुझमें **'अभेद-भेद'** हो। **'द्वैत'** में सर्वोत्कृष्ट भेद, अभेद-भेद है– ***''तोहि-मोहि भेद कैसा जल तरंग जैसा,''*** **'जल'** तरंग की वजह से नहीं है। **'जल'** है तो तरंग है और तरंग कैसी है ! जैसा जल का Mood है। इसी प्रकार तेरी जो इच्छा है वह **'मैं'** हूँ और मेरे होने से देह व जगत है। इन भावों की परिपुष्टि द्वारा **'मैं'** आत्मतत्त्व के प्रतिनिधि रूप में दृष्टा होता है।

सुख और दुःख परस्पर सापेक्षिक हैं। किसी भी स्वप्न में अति सुख अथवा दुःख की स्थिति बनते ही निद्रा टूट जाती है। एक नींद **में** उठी हुई (स्वप्न की) देह है, दूसरी नींद **से** उठी हुई (तथाकथित जाग्रत) देह है। स्वप्न की देह की चेतना का स्तर बहुत कम होता है। सुख और दुःख की अनुभूति के लिए भी एक विशिष्ट चेतना का स्तर चाहिए, जो एक स्वप्न टूटने और निद्रा से तथाकथित जाग्रत होने पर दूसरे स्वप्न में होती है। वहाँ **'आनन्द'** नहीं लिया जा सकता। **'आनन्द'** के लिए यह स्वप्न टूटना जरूरी है। मैं देह हूँ और देह मेरी है–इस देहाध्यास व देहाधिपत्य में आनन्द पूर्णतः आच्छादित हो जाता है। **'नाम की'** हुई देह उपलब्ध का उपयोग, उपभोग और सुख-दुःख दे सकती है, उससे आनन्द सम्भव नहीं है। वहाँ भोग नहीं **भोग सा** (उपयोग) और योग नहीं **योग सा** (उपयोग) होगा। वस्तुतः जीवन में सब कुछ लब्ध होता है और हर लब्धि भोग और योग का हेतु होती है। उस भोग और योग में कोई अन्तर नहीं होता।

योगी **'स्थिति'** का नियन्त्रण कर लेता है, वह **'संस्थित'** हो जाता है। उसे **'दृष्टि'** मिल जाती है। योगी स्वयं में **'दर्शन'** है, वह **'दर्शन'** (जो

जीवन के लिए अदृश्य है) में अरूप, रूप, सर्वरूप, विरूप, विश्वरूप, ब्रह्मरूप होकर विचरता है। वह जिस रूप में भी होता है, वह स्वयं में सदाधार **'रूप'** ही होता है। **'सद्'** उसकी माता और **'ज्ञान'** उसका पिता है। **'क्षमा'** उसकी संतान, **'धर्म'** उसका भाई एवं **'मानसिक शान्ति'** उसकी पत्नी है। इसी परिवार में वह स्वयं में स्वयं ही अपनी देह व जगत से निर्लिप्त रहते हुए विचरता है। उसका हर भोग भी योग है। वह हर क्षण योगी है, उसका **'जगत'** स्वयं में **'अजगत-जगत'** और **'देह'** स्वयं में **'विदेह-देह'** होती है। देह सहित जगत उसमें विचरता है और वह उससे अलिप्त रहते हुए क्षण-क्षण ईश्वर से जुड़ा रहता है। उसके लिए सुख, दुःख, लाभ, हानि, मान, अपमान, सफलता, असफलता में कोई अन्तर नहीं है।

जीव की व्यस्तता वस्तुतः अस्त-व्यस्तता होती है। योगी **'व्यस्त सा'** लगते हुआ भी स्वयं में **'अव्यस्त'** होता है। ईश्वर का एक नाम **'अव्यय'** है, अतः योगी क्षण-क्षण उसी से जुड़ा हुआ **'अव्यस्त'** रहता है। **''सः अव्यय अस्ति''** इसलिए वह **'अव्यस्त'** है। ***असतो मा सद् गमयः, तमसो मा ज्योतिर्गमयः, मृत्योर्मा अमृतम् गमयः*** तीनों की पहचान ***'व्यस्तो मा अव्यस्तोर्गमयः'*** ही है। उसके लिए उसका स्वयं का कोई कार्य नहीं रहता। देह सहित जगत सहित सबका समय और कर्म उसी के लिए होता है। जिनका समय और कर्म उनके लिए नहीं होता, वे उसके नहीं होते। योगी के मुँदे नेत्र भी खुले रहते हैं और जीव के नेत्र खुले हुए होते हुए भी, वे स्वयं में **'अँधे'** रहते हैं। कृपया एकाग्र करिए।

मानव-देह नामक जीवन्त सुकृति का सदुपयोग **'सद्'** द्वारा ही हो सकता है। सदुपयोग से स्वतः चेतन एवं आनन्द की उत्पत्ति होती है। हम मानव इसका सदुपयोग तो क्या उपयोग भी नहीं जानते, मात्र दुरुपयोग ही जानते हैं और वही करते हैं। यह चिंता जब चिन्तन बनकर रातों की नींद उड़ा देती है, तो अध्यात्म और आत्मचिन्तन का द्वार खुल जाता है। तभी जिज्ञासु आत्मचिन्तन का अधिकारी होता है। प्रभु की दृष्टि में जब इन औपचारिकताओं की पूर्ति हो जाती है, प्रभु स्वयं सद्गुरु रूप में उस जिज्ञासु

के सम्मुख प्रकट हो जाता है। **'मैं'** कौन हूँ, मैं, क्यों हूँ इसके विस्तार में जाने की बजाय तू एक, उस एक की शरण में चला जा। तेरी सद्‌गुरु के साथ जुड़ने की इच्छा हो, चेष्टा हो अथवा तू, किसी भी प्रकार एवं सब प्रकार से जुड़ जाए, यही तेरी क्षण-क्षण क्षरित होती देहावधि का लक्ष्य हो जाए, तभी तेरी वास्तविक **सद्** जीवन में प्रविष्टि होती है। तू उस अव्यय एवं अव्यस्त से प्रार्थना कर, आर्तनाद कर, कि "हे मेरे अव्यस्त स्वरूप के स्वामी ! मुझे मेरी देह की भस्मी से आत्मसात् कर दो।" यही तेरा कर्म है। तेरी समस्त व्यस्तता मात्र सद्‌गुरु के लिए ही हो। इस अव्यस्तता में व्यस्त **सा** रहते हुए जब तू अव्यस्त से सदा जुड़ा रहेगा, तो तू व्यस्तों को उस अव्यस्त की कृपा से अव्यस्तता का वरदान देगा। जब वे व्यस्त तुझ अव्यस्त के लिए व्यस्त होंगे, तो वे तुझसे अव्यस्तता का वरदान पा लेंगे। काल, कर्म एवं प्रारब्ध से कुण्ठित, गुण्ठित असद् **'देह सी'** भी सद् के साथ जुड़ कर **'सदासद्'** (सद्+असद्) हो जाती है।

तू स्वयं को जो समझ रहा है, वस्तुतः वह तू नहीं है। जब तू यह जान एवं मान लेगा, कि जो तू स्वयं को समझ रहा है (मैं देह हूँ) उसके लिए तेरी कोई आवश्यकता नहीं है, तो तू जान जाएगा, कि फिर तू क्यों है ? उस अव्यस्त व्यस्तता में तेरी देहावधि का सम्पूर्ण समय स्वयं में असमय हो जाएगा, **कर्म** स्वयं में **अकर्म** हो जाएगा। वहाँ जो होगा वह अमरत्व होगा, असद् की अनुभूति **'सद्'** और अन्धकार व अन्धकूप में पड़े होने की अनुभूति स्वयं में **'प्रकाश स्वरूप'** होगी। ऋषि-मनीषियों ने जीव के कल्याण हेतु तंत्र, मंत्र और यंत्रों में प्रयोग किए हैं। सद्‌गुरु आत्मचिन्तन के जिज्ञासु को उसकी देह का **'अर्थ'** दिखाता है। अपनी महास्थिर स्थिति को सुदृढ़ करने के बाद सद्‌गुरु भटके हुए जीव के कल्याण हेतु प्रयोग व प्रकरण करता-करवाता है। यह सब कैसे होता है—यह साधक और सद्‌गुरु के बीच का रहस्य है। वह जिज्ञासु को ऐसी प्रक्रिया से गुज़ारता है, ताकि वह उस **'स्थिति'** में आ जाए, जिससे वह कार्य उसके द्वारा करवाया जा सके, जिसके लिए प्रभु ने उसे भेजा है। फिर उसके द्वारा वह कार्य स्वतः होने

लगता है। पहले वह जिज्ञासु को उस स्थिति में लाता है, कि देह रूप में वह क्यों है, यह जान जाए। तभी उस कार्य को उसके द्वारा करवाया जा सकता है। इससे पहले यदि वह बता भी दे, कि तू क्यों है? तू न कर सकेगा और न तेरे द्वारा वह कार्य होगा।

जब ईश्वरीय अनुकम्पा होती है, तब स्थितियाँ बदल जाती हैं। स्थितिमुक्त होने पर अवस्थाएँ बदल जाती हैं। स्थिति पर स्थिति शासन करती है और स्थिर पर अधिक स्थिर का शासन है। सद्गुरु स्थित्यातीत स्थिति का स्वामी है। सन्मार्ग **'सद्'** से शुरू होता है। कोई किस समय, किस स्थान पर होगा, इसका निर्धारण उसकी **स्थिति** करती है। यह स्थिति किसी के हाथ में नहीं है। अपनी स्थिति देखते हुए व्यक्ति अपना समय और स्थान बदल देता है। **'स्थिति' मानसिक** और **'अवस्था' दैहिक** है। जैसी तेरी स्थिति होगी, वैसी अवस्था होगी। तेरी स्थिति का मापदण्ड तेरी तथाकथित स्थिरता है। जगत व्यवहार में हम उसी व्यक्ति पर विश्वास करते हैं, जो अधिक स्थिर होते हैं।

कोई भी **'स्थिति'** स्वयं में मानसिक है। उसका दैहिक अवस्था रूप में प्रकाट्य पूरी व्यवस्था बनने के बाद होता है। व्यवस्था दैहिक भी होती है और **मानसिक** भी होती है। रोज़ के जीवन में असंख्य ऐसी स्थितियाँ हैं, जो सतत् परिवर्तित होती रहती हैं और हम सब भिन्न-भिन्न मानवों की पृथक्-पृथक् होती हैं। उनका अवस्था रूप में प्रकाट्य अपना और अन्य सबका, हम देख सकते हैं। स्थिति पर स्थिति बनती हुई इन स्थितियों को हम परिस्थिति कह देते हैं। यदि स्थिति डावाँडोल है, तो उसी के अनुसार तेरी व्यवस्था बनती है, जो अवस्था बनकर देह सहित जगत में प्रकट होती है। जीवन **में** देह की जितनी स्थितियाँ हम चाहते हैं, वे भटकाने वाली हैं। हमारे भौतिक कृत्यों में भी एक व्यवस्था बनती है, तभी **'अवस्था'** प्रकट होती है। सद्गुरु तुझे तेरी देह की उन पाँच स्थितियों और अवस्थाओं का दर्शन कराएगा, जो तूने अपनी कभी नहीं देखीं। जो तुझे उनका दर्शन करा दे, वही सद्गुरु है। वहाँ से **'सद्'** का शुभारम्भ हो जाएगा।

मानव देह की चार स्थितियाँ (**'गर्भ', 'शैशव', 'निद्रा' 'मृत्यु'**) ऐसी हैं, जो सबकी **एक सी** हैं और एक स्थिति (**संहारित देह**) **एक ही** है। हमने ये पाँचों स्थितियाँ अपनी और अन्य किसी की भी नहीं देखीं। अन्य को भी इन पाँचों स्थितियों की अवस्था में देखा है। इनका प्रकाट्य गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था रूप में अन्य मानवों का हम देख सकते हैं, देख सकते थे और देख सकेंगे। इन अवस्थाओं का कण-कण तद्नुसार स्थितियों से ओत-प्रोत है। अतः अवस्था में भी शासन स्थिति का है। कोई भी अवस्था एक क्षण के लिए स्थिति रहित नहीं होती। **'गर्भ', 'शिशु', 'निद्रा', 'मृत्यु'** स्थितियाँ परिवर्तित होती हैं। एक ही स्थिति **संहारित देह** है, जो अखण्ड, स्थिर एवं अपरिवर्तनीय है। **'स्थिति'** रहने तक अवस्था बनी रहती है। स्वयं में जो स्थित है, उसे **'स्थिति'** के स्तर का ज्ञान हो जाता है।

स्थिति, अवस्था के रोम-रोम में स्थित है। जीव अवस्था में स्थिति के कारण स्थिति युक्त होता है। **'निद्रा'** स्थिति, स्थित सी है, क्योंकि परिवर्तनशील है। कोई व्यक्ति गहन **'निद्रा'** में अथवा निद्रावस्था में है, उसे उठाया जा सकता है। उठाने पर भी जब तक उसकी **'निद्रा'** स्थिति बनी रहेगी, **'निद्रावस्था'** नहीं टूटेगी। कभी-कभी आँखें खोलकर उठकर बैठ भी जाता है, लेकिन स्वयं अपने और किसी अन्य को पहचानता नहीं है। **'निद्रा'** स्थिति जाएगी, तो **'निद्रावस्था'** जाएगी। **'मृत्यु'** स्थिति अपरिवर्तनीय है। **'मृत्यु'** स्थिति निद्रास्थिति से बहुत सशक्त है, क्योंकि एक बार मृत्यु स्थिति होने पर नहीं बदली जा सकती। मृत्यु वह सर्वोपरि स्थिति है, जो एक देहावधि की समस्त स्थितियों का नाश कर देती है। एक मानव-देह में एक आयु में मृत्यु एक ही बार होती है। मृत्योपरान्त नाम-रूप में अन्य समस्त स्थितियाँ और अवस्थाएँ समाप्त हो जाती हैं। किसी भी **'स्थिति'** की अनुभूति के लिए उस स्थिति में जो अवस्था है, उसका दर्शन (Visualisation) आवश्यक है।

कोई भी अवस्था स्थिति के बिना नहीं हो सकती, लेकिन **'स्थिति'**

अवस्था के बिना हो सकती है। जब कोई मृतकावस्था में होगा, तो उसके कण-कण, रोम-रोम में मृत्यु स्थिति होगी। यदि **'मृत्यु'** की अनुभूति करनी है, तो सद्गुरु की कृपा से अपनी देह की मृतकावस्था की अवधारणा जीते जी अपेक्षित है। **'मृत्यु'** स्थिति को वह स्थिति बदलेगी, जो उससे बहुत सशक्त एवं स्थित होगी। **'मृत्यु'** कैसे हुई अर्थात् मृत्यु कैसे आई, यह **'व्यवस्था'** है। मृत्यु आने से पहले जिससे चिकित्सक संघर्ष करते हैं, वह **'व्यवस्था'** है। इस प्रकार मृत्यु स्थिति और मृतकावस्था के मध्य में जो **'व्यवस्था'** है, उस पर योगी नियन्त्रण कर सकता है। वह योगबल से **'व्यवस्था'** को टाल देता है, इसलिए अवस्था प्रकट नहीं होती, मानों **'मृत्यु'** टल गई। **'व्यवस्था'** प्रारब्धवश है, उसे **'कारण'** कहा जा सकता है। कोई न कोई **'कारण'** प्रारब्धवश होना आवश्यक है, ताकि **'व्यवस्था'** बन सके।

अपनी जिस मृत्यु और मृतकावस्था को तूने देखना नहीं है, उसकी अवधारणा कर। **मृत्यु तेरे वश में आनी शुरू हो जाएगी।** तू अमरत्व का अधिकारी हो जाएगा। लेकिन उस स्थिति को देखने के लिए तुझमें **'महासमाधि'** की स्थिरता होनी आवश्यक है। अवस्था **'स्थिति'** के अनुसार होती है, लेकिन **'गति'** व्यवस्थानुसार होती है। **'मृत्यु स्थिति'** एवं **'मृतकावस्था'** सबकी एक जैसी होती है, लेकिन व्यवस्था पृथक्-पृथक् होने के कारण सबकी **'गति'** भिन्न-भिन्न होती है। मात्र भस्मावस्था गति, दुर्गति, सद्गति से परे है। बहुत से लोगों के **'शव'** को चिताग्नि तक नहीं मिल पाती। **'मृतकावस्था'** एवं **'भस्मावस्था'** के बीच में भी एक **'व्यवस्था'** बनती है। **'व्यवस्था'** गति है। **भस्मावस्था'** की कोई **'गति', 'दुर्गति', 'सद्गति'** नहीं है, क्योंकि इसकी स्थिति संहारित देह और भस्मावस्था के बीच में कोई व्यवस्था नहीं है। **'भस्मी'** चाहे जहाँ भी पड़ी रहे, **'भस्मी'** ही रहती है।

सद्गुरु तुझे तेरी **'भस्मावस्था'** का **'अवस्थक'** बनाएगा। तू व्यय, व्यवस्था, व्यवधान, व्यवस्थक आदि से मुक्त होकर अपनी **'विरक्ति'** स्थिति की अनुभूति कर लेगा। देह की धारणा (मैं देह हूँ) में इन पाँचों अवस्थाओं की

अवधारणा के लिए सद्गुरु कृपा एवं अति एकाग्रता की आवश्यकता है। भौतिक जगत में **'स्थिति'** से **'अवस्था'** बनी। **'स्थिति'** से अवस्था प्रकट होने से पहले स्थित्यानुसार **'व्यवस्था'** बनती है और उस व्यवस्था के कारण **'अवस्था'** प्रकट होती है। जब संत महापुरुष और योगी अपनी सिद्धियों का सदुपयोग भटके हुए जीव के लिए करता है, तो वह **'मध्य'** की **'व्यवस्था'** पर नियन्त्रण करता है और **'अवस्था'** प्रकट होने से पहले **'स्थिति'** से स्थित्यातीत स्थिति में ले जाता है। साधना में भी योगी अपनी निद्रा स्थिति की **'व्यवस्था'** का संहार करता है। व्यवस्था बने बिना **'स्थिति'** अवस्था के रूप में प्रकट नहीं होती। **'व्यवस्था'** का अर्थ प्रबन्धन नहीं है। व्यवस्था एक शास्त्रीय शब्द है। गर्भ, शिशु, निद्रा, मृत्यु स्थिति रूप में **एक ही** है और अवस्था रूप में एक **सी** हैं। लेकिन **'व्यवस्था'** भिन्न है।

**'भस्मी'** पदार्थ रूप में तत्त्वातीत तत्त्व है। तत्त्वज्ञ महापुरुष इस पदार्थ के चिन्तन द्वारा **'सद्'** की अनुभूति करते-करवाते हैं। यह पदार्थ देह के अन्त के अन्त का है। पंच-महाभूतों की देह के विलीन हो जाने पर अदृश्य संहारित देह अप्रकट-प्रकट होती है, जिसका प्रमाण भस्मी है। **'भस्मावस्था'** स्वयं में अवस्थातीत और देहातीत अवस्था है, जिसकी स्थिति संहारित देह है। **संहारित देह,** देह के पहले भी थी और तेरी देह के अन्त का अन्त होने पर रहती है। योगी **'व्यवस्था'** और **'अवस्था'** दोनों में हस्तक्षेप कर सकता है। क्योंकि वह स्थित्यातीत स्थिति **'विरक्ति'** का स्वामी होता है।

**'निद्रा'** स्थिति की अनुभूति स्वयं में **अनुभूति सी** है। **'मृत्यु'** स्थिति की अनुभूति आत्मानुभूति है और संहारित देह की अनुभूति ब्रह्मानुभूति है। ध्यान-समाधि में अपनी भस्मावस्था के अवलोकन के लिए महास्थिरता अपेक्षित है। किसी व्यक्ति को हम निद्रावस्था एवं मृतकावस्था में पहचान सकते हैं। जिस महापुरुष ने अपनी **'मृत्यु'** स्थिति को सिद्ध कर लिया उसे **'निद्रा'** पर स्वतः नियन्त्रण हो जाता है। उसकी निद्रा समाधि स्थिति है। **'मृत्यु'** स्थिति से ऊँची स्थिति **'संहारित देह'** है। **'भस्मावस्था'** में किसी व्यक्ति को पहचाना नहीं जा सकता, इसलिए यह अवस्था सबसे सशक्त

अवस्था है। जीते जी सद्‌गुरु कृपा से अपनी इस अवस्था की अनुभूति भस्मावस्था के कण-कण में स्थित **'संहारित देह'** से **'विरक्ति'** स्थिति की जागृति का हेतु है। **'विरक्ति'** स्थिति होने पर **'मृत्यु'** स्थिति पर अमरत्व का शासन हो जाता है। **'मृत्यु'** से सशक्त **'विरक्ति'** स्थिति के स्वामी महापुरुष जन्म-मृत्यु से परे **'जनमेजय'** और **'मृत्युंजय'** होते हैं। वे दूसरों को भी इन **'स्थितियों'** (जन्म-मृत्यु) से मुक्त करने में **'समर्थ'** होते हैं, वे सद्‌गुरु होते हैं।

जीवन का दूसरा नाम हवन या यजन है। यज्ञ करते तत्त्वज्ञ योगी की **लगन** नीचे बनती भस्मी में होती है और वह **मगन** यज्ञ की लपटों में होता है। इसका प्रमाण **'हवन'** प्रकरण से प्रत्यक्ष मिलता है। हवन में ज्वलनशील पदार्थों से निकलने वाली अग्नि की लपटें, पहले उन पदार्थों को जलाती हैं, जिनसे अग्नि प्रकट हुई। तभी उनका प्रकाश, प्रचण्डता एवं धूना फैलता है। जिन पदार्थों के जलने से अग्नि प्रकट होती है, वे पदार्थ अग्नि एवं धूने के शान्त होते-होते भस्मी बन जाते हैं। भस्मी लपटों के दौरान भी प्रकट थी, लेकिन लपटों से आच्छादित थी। यज्ञाग्नि के लिए माचिस लगाते ही जैसे ही पदार्थ जलने शुरू हुए, भस्मी बननी शुरू हो गई। भस्मी नीचे बढ़ती रहती है और लपटें प्रचण्ड, अतिप्रचण्ड होते-होते, धूने और पदार्थों के साथ शान्त हो जाती हैं। अन्ततः भस्मी ही रह जाती है। हवन का अर्थ भस्मी है और प्रसाद भस्मी है।

यज्ञ में अन्ततः पूर्ण भस्मी प्रकट होती है। भस्मी ने पदार्थों को ज्यूं का त्यूं भी देखा और जलते हुए तथा विलीन होते हुए भी देखा। भस्मी पदार्थों में पहले भी थी। जिस प्रकार हवन के पदार्थों, समिधा आदि में **'भस्मी'** अप्रकट होती है और जलते हुए धीरे-धीरे प्रकट होती रहती है, उसी प्रकार तेरी देह का **'अर्थ'** (भस्मी) देह के न रहने पर प्रकट होता है और अप्रकट विरक्ति रूप में देह के दौरान भी रहता है। **'भस्मी'** उसका प्रमाण है। उसी से तेरी सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति आदि विभूतियों रूपी लपटें जीवन में प्रकट होती रहती है। उस विरक्ति का प्रमाण एवं प्राकाट्य **'भस्मी'** है। जिस

व्यक्ति में **'विरक्ति'** अधिक होती है, वही संसार का भोग कर सकता है। विरक्ति स्वयं में महास्थिति है, यह विरक्ति अदृश्य संहारित देह के दर्शन के रूप में जीवनकाल में भी होती है, लेकिन भ्रमवश तू सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य एवं ख्याति की लपटों में खोए हुए, अपने अन्त का अन्त नहीं देखना चाहता। इसलिए भटक रहा है। जिस दिन तुझे अपनी देह के **'अर्थ'** का ख्याल, विचार, इच्छा, चिन्तन एवं चेष्टा हो जाएगी, तुझे इस अर्थ की **अनुभूति** सद्गुरु स्वयं कराएगा।

**'भस्मी'** से आत्मसातता में आत्मतत्त्व के प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** की देह के साथ तद्रूपता सी समाप्त हो जाएगी। प्रत्येक मानव-देह की पाँच (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था) अवस्थाएँ ऐसी हैं, जिनमें देह **'मैं'** को नहीं पहचानती। इनमें देह शब्द **'मैं'** को छोड़ देती है अर्थात् **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट नहीं हो सकता। **'मैं'** को **'भस्मी'** के साथ लगाने और जीते जी अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होने का मानस प्रकरण मात्र कृपा-साध्य और कृपा-साध्य मात्र है। अपनी देह के **'अर्थ'** की ओर उन्मुख होने की इच्छा मात्र से प्रभु की कृपा का प्रवाह तेरी ओर बढ़ने लगेगा। तू किसी अनुभूतिगम्य संत महापुरुष का शरणागत हो, उसी की कृपा से तू अपनी देह के अर्थ से अवगत होता हुआ समस्त उत्तरदायित्वों से हमेशा के लिए मुक्त हो जाएगा। समस्त दैवीय शक्तियाँ और तेरी देह जगत सहित तेरे लिए हो जाएगी।

वस्तुतः तेरी पहचान देह नहीं, देह का वह स्वरूप है, जो तुझे छोड़ देता है। **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट होकर तू ध्यान में उसी देह से वार्तालाप कर, कि ''तू गर्भावस्था में थी, लेकिन मैं कह नहीं पाया, कि मैं गर्भ में हूँ। तू शिशु थी, तो मैं शैशवावस्था में कह नहीं पाया, कि मैं अबोध शिशु हूँ। तू निद्रावस्था में थी, लेकिन मैं कह नहीं पाया, कि मैं सोया हुआ हूँ। इसी प्रकार तू मृतकावस्था में होगी, लेकिन मैं कह नहीं पाऊँगा, कि मैं मरा हुआ हूँ। तू चिताग्नि में जलेगी और भस्मी बनेगी, लेकिन मैं कह नहीं पाऊँगा, कि मैं चिताग्नि में जल रहा हूँ और अब जलकर पूर्णतः **'संहारित'** होते हुए भस्मी

बन गया हूँ। इसलिए **'मैं'** तेरे उस स्वरूप से स्वयं को पहचानती हूँ, जो मुझे नहीं पहचानते। तेरी ये अवस्थाएँ मुझे नहीं पहचानतीं, लेकिन **'मैं'** (आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि) तेरे जीते जी तेरी जागृति में स्वयं को तेरी इन अवस्थाओं से पहचानता हूँ।''

देह का वह अर्थ (भस्मी) यद्यपि मुझे (मैं शब्द को) नहीं पहचानता, लेकिन जब मैं स्वयं को देह के अर्थ से पहचानूँगा, तो **'मैं'** को देह की **तद्‌रूपता सी** से मुक्ति मिल जाएगी और आत्मतत्त्व का प्रतिनिधित्व प्रकट होगा। देह का अर्थ सब समयों, स्थितियों, स्थानों, अवस्थाओं में एक ही है। जीवन-मृत्यु से बँधी देहावधि के जिन क्षणों में तू स्वयं को देह की उन अवस्थाओं से पहचानेगा, जिनमें देह तुझे नहीं पहचानती, वे क्षण अक्षुण्ण होंगे और वहीं से तेरे **'सद्'** जीवन (जीव+न) का शुभारम्भ होगा। जो **'मैं'** देह के साथ तद्‌रूपता सी में विभिन्न अवस्थाओं में प्रारब्धवश, कालवश, कर्मवश भटक रही थी; उसे अपना शाश्वत् स्वरूप मिल जाएगा। उस समय वह **'देह'** काल, कर्म और प्रारब्ध के बन्धनों से मुक्त होकर अन्यार्थ (अर्थहीन, निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ) से यथार्थ हो जाएगी। तुझे (आत्मतत्त्व) तेरी पहचान मिल जाएगी और ईश्वर का ईश्वरत्व तेरे लिए अनाच्छादित हो जाएगा। वह जीवन सीधे ईश्वर निर्देशन में चलता है। वह देह **'मैं मयी'** आत्मामयी और परमात्मामयी होती है। तू सद्‌गुरु कृपा से इन अवस्थाओं की अवधारणा के नित्याध्यासन का **'अभ्यस्थ'** हो। जब तू अभ्यास करते-करते अभ्यस्थ हो जाएगा, तो **'सिद्धस्थ'** हो जाएगा। तुझे **'स्थान', 'साधन'** (देह), **'साध्य'** (आत्म स्वरूप), **'साधना'** (सद्‌गुरु के निर्देशन में होने वाले प्रकरणों) की सिद्धि मिल जाएगी।

***''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''***

**(2 अगस्त से 11 अगस्त एवं 28 व 29 नवम्बर 2012)**

# संहार (दर्शन)

## (भाग – 10)

**स**द्‌गुरु में स्वतः सहज संकर्षण होता है। जिस पर उसकी कृपा-दृष्टि पड़ती है, उसमें आकर्षण आ जाता है। महापुरुष कभी पृथ्वी पर नहीं चलते अर्थात् पृथ्वी का कोई प्रलोभन या आकर्षण उन्हें आकर्षित नहीं कर सकता। वे अपने **'संहार'** के **'संहार'** से गुज़र चुके हैं। इसलिए वे पृथ्वी की समस्त विधाओं और मानवों को आकर्षित करते हैं। अपने स्वरूप को पहचानने की उत्कण्ठा जब कण्ठ तक आ जाती है, तो दैवीय अधिनियमानुसार सद्‌गुरु देह धारण करके प्रकट हो जाता है।

जीवन में **'आत्मज्ञान'** का प्रकाश ही मानव के छोटेपन और बड़ेपन का मापदण्ड है। जीवन यदि निरन्तरता है, तो आध्यात्मिक निरन्तरता है। भौतिक जगत में निरन्तरता नहीं होती। **'दिव्य चेतना'** व **'दिव्य आनन्द'** की निरन्तरता 'जीव' के साथ जन्मों-जन्मान्तरों में चलती है। इसकी लब्धि जप-तप, यज्ञ-हवन, सद्‌गुरु-सेवा व सद्‌गुरु के आशीर्वाद से होती है। यदि कोई मानव जिज्ञासु है, तो उसे सद्‌गुरु अवश्य मिलता है। दिव्य चेतना का स्तर निरन्तर बढ़ता है और एक स्तर तक आने के बाद कभी नीचे नहीं आता। मानव में स्वाभाविक चेतना अथवा सोचने की शक्ति अन्य प्राणियों से कहीं अधिक होती है। बचपन में स्वाभाविक चेतना होती है, धीरे-धीरे यह बढ़ती है, एक स्तर तक इसका रख-रखाव होता है, उसके बाद इसका ह्रास होना प्रारम्भ हो जाता है। जिस प्रकार दैहिक शक्ति के विकास में कोई निरन्तरता नहीं है, उसी प्रकार इस स्वाभाविक चेतना के विकसित होने का भी कोई क्रम नहीं है। एक अवस्था तक देह की शक्ति बढ़ती है, उसके बाद

प्रौढ़ावस्था में शक्ति कुछ देर स्थिर रहती है और वृद्धावस्था में धीर-धीरे इसका क्षय होने लगता है। मस्तिष्क की शक्ति कमज़ोर होने से सोचने की शक्ति कम हो जाती है। इस स्वाभाविक चेतना में मानव कम शक्तिशाली को दबा कर भौतिक उपलब्धियाँ तो कर सकता है, लेकिन उनका भोग नहीं कर सकता। भोग के लिए **'अधिकार'** चाहिए, जो दैवीय नियमानुसार **'समर्पण'** से ही मिलता है। **'भोग'** के लिए प्राप्ति होना आवश्यक नहीं है।

**'विरक्ति'** दिव्य चेतना में वृद्धि है। विरक्त को भोग एवं भोग पदार्थों का स्वामित्व मिल जाता है। दिव्य चेतना स्वयं में किसी अवस्था की मोहताज नहीं है, यह मात्र कृपा-साध्य है। सद्‌गुरु द्वारा निर्देशित जप, तप, यज्ञादि पुरुषार्थपरक प्रकरणों से जो तूने पाया है, उस दिव्य चेतना का कभी ह्रास नहीं होता। मानव **'दिव्य चेतना'** को विकसित कर सकता है। इष्ट व सद्‌गुरु-कृपा से इस दिव्य चेतना का विकास ही मानव का एकमात्र **'कर्म'** है। **'मैं'** शब्द स्वयं में आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि है, लेकिन इसके प्रकाट्‌य के लिए निद्रा से उठी हुई एक अवचेतनामय मानव-देह का तनिक अवलम्बन अत्यावश्यक है। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्‌य के बिना मानव-देह और जगत का क्रियान्वयन नहीं है। पूर्ण जड़ता (निद्रा) और पूर्ण चेतना (तुरिया समाधि) में देह व जगत के साथ **'मैं'** शब्द का भी लोप हो जाता है। दिव्य चेतना के विकास की चरम स्थिति पर स्वाभाविक चेतना भी दिव्य हो जाती है। जब स्वाभाविक चेतना में मानव चेत (समझ) जाता है, कि सम्पूर्ण जगत उसके समझ से परे का विषय है, तब वह अपनी स्वाभाविक चेतना को उस महा चेतना के सम्मुख समर्पित कर देता है, "कि **'तू'** (परमात्मा) है, तो **'मैं'** हूँ। मेरा होना तेरी वजह से है।" वसुन्धरा का भोग, ऐश्वर्य, आनन्द **'दिव्य चेतना'** के अनुसार मिलता है।

कोई भी नद, नहर, प्रपात, जल स्रोत, झरना अन्ततः सागर की ओर ही बहता है। जल का महा स्रोत सागर ही है। जल का धरती में समाना भी सागर की ओर ही होता है। जल का उद्‌गम और समाहन सागर **से** सागर **में** होता आया है और होता रहेगा। हर भौतिक विधा का उद्‌गम अथवा स्रोत

प्रभु हैं और समाहन भी प्रभु हैं। **'स्रोत'** से जुड़कर सब कुछ **'स्तोत्र'** में रूपान्तरित हो जाता है। अपनी प्रत्येक जान्यता को प्रभु को समर्पित करने पर वही **'ज्ञान'** में रूपान्तरित होने लगती है। अपनी हर कला, ज्ञान-अज्ञान, सोच-असोच, भाव-अभाव और सब कुछ को ईश्वर से जोड़ देने से भौतिक विधाएँ भी आध्यात्मिक जगत में प्रविष्टि का हेतु बन जाती है। ***'स्तोत्राणि सर्वा गिरौ',*** फिर सब कुछ प्रभु का यत्न होता है।

ईश्वर सच्चिदानंद है। दृश्यमान सृष्टि स्वयं में अदृश्य ईश्वर का **'सद्'** है और अदृश्य में ईश्वर **'चेतन'** और **'आनन्द'** है। समस्त दृश्यमान जगत उसका **'विश्व रूप'** है। रूप का अपना धर्म है, जिसका निर्वाह ईश्वर भी करता है। रूप अर्थात् **'देह'** सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड जो दृश्यमान हैं, वह ईश्वर की **'देह'** है। जिस प्रकार मानव-देह (जो मानव की नहीं है) हर क्षण परिवर्तनशील एवं नित नूतन है उसी प्रकार दृश्यमान कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड सतत् परिवर्तनशील एवं नित नूतन है। **'काल'** तेरा भौतिक दृष्टिकोण है। तू पैदा हुआ था, अब इतने वर्ष का हो गया, तू मरेगा आदि-आदि अर्थहीन दृष्टिकोण न केवल तुझे जन्मों-जन्मान्तरों के काल-चक्र में सीमित रखते हैं, बल्कि प्रारब्ध और कर्म बन्धन में भी बाँधे रखते हैं। तू स्व निर्मित निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थकारी काल-चक्र में भ्रमित हुआ घूम रहा है। अस्थिर सिर से **व्यस्तता** के नाम पर तू **अस्त-व्यस्त** है। सद्गुरु अव्यय है, सद्गुरु तुझे **'अव्यस्त'** करते हुए व्यस्त कर देता है। उस अव्यय से जुड़ी **'स्थिति'** अव्यस्तता है। स्थान, स्थिरता, स्थिति की सिद्धि अध्यात्म में प्रविष्टि के लिए आवश्यक है। किस देह की कितनी अवधि है, इसको कोई नहीं जानता। इसकी अवधि का प्रत्येक क्षण स्वयं में क्षण भंगुर है। प्रत्येक क्षणिक क्षण काल से बँधा हुआ है। **'काल'** स्वयं में **'अकाल'** से और **'अकाल', 'महाकाल'** से बँधा है। उस अक्षुण्ण ने क्षण भंगुर को अक्षुण्ण करने के लिए बाँधा हुआ है। सद्गुरु कृपा से सम्पूर्ण देहावधि में किसी एक अक्षुण्ण क्षण की लब्धि के बाद उस लब्ध अक्षुण्ण क्षण का सम्पूर्ण अतीत भी अक्षुण्ण हो जाता है।

अक्षुण्ण क्षण काल-चक्र का केन्द्र बिन्दु है, जिसके चारों ओर काल-चक्र घूमता है। वह केन्द्र बिन्दु स्वयं में स्थिर है। वह अक्षुण्ण केन्द्र बिन्दु, काल-चक्र के असंख्य क्षणिक क्षणों रूपी बिन्दुओं से एक निश्चित एवं निर्धारित दूरी रखता है। व्यास किसी भी चक्र के केन्द्र बिन्दु से गुज़रते हुए दो विपरीत बिन्दुओं को मिलाता है। **'व्यास'** किसी भी चक्र की प्रत्येक गति, प्रत्येक Volume और प्रत्येक पैमाइश का आधार है। यदि काल-चक्र के असंख्य बिन्दुओं में से कोई क्षणिक क्षण, केन्द्र बिन्दु रूपी स्थिर व अक्षुण्ण क्षण को छूता हुआ सीधे काल-चक्र के विपरीत बिन्दु को छू ले, तो वह **'व्यास'** (गुरु) कहलाता है। किसी प्रकार काल-चक्र में घूमते असंख्य क्षणिक क्षणों में कोई एक क्षण (बिन्दु) उस केन्द्र बिन्दु रूपी अक्षुण्ण क्षण को छू ले, तो वह एक क्षण केन्द्र बिन्दु की तरह अक्षुण्ण हो जाता है। तभी क्षणों का सार्थक सदुपयोग होता है। व्यास (सद्‌गुरु) ऐसी स्थिर शक्ति है, जो सुख-दुःख, लाभ-हानि, गरीबी-अमीरी, मिलन-विरह आदि-आदि क्षणिक एवं विपरीत स्थितियों में सामंजस्य रखता है।

जब तू अपने **'सिर'** (जो अगणित चिन्ताओं की पिटारी है) को सद्‌गुरु के श्री चरणों में टिका देता है, तो तेरी समस्त चिन्ताएँ समाप्त हो जाती हैं। सद्‌गुरु चिन्ताओं से बोझिल तेरे सिर को संशोधन के लिए अपने पास रखते हुए अपना स्थिर व चिन्तन युक्त सिर तुझे दे देता है। माँ की गोद के अतिरिक्त कोई गोद ऐसी नहीं है, जहाँ तू निश्चिन्त होकर अपना सिर रख सके। सद्‌गुरु के **'श्री चरणों'** के अतिरिक्त कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ तू निश्चिन्त होकर अपना **'सिर'** समर्पित कर सके। शैशव में तू अबोध था, उस अबोधता में माँ की गोद में निश्चिन्त होकर सोता रहा। अब बोधता में निश्चिन्त होने के लिए सद्‌गुरु के श्री चरणों में अपना सिर समर्पित करना ही होगा। चरणों में **'सिर झुकाना'** दैहिक भंगिमा है, लेकिन चरणों में झुक कर अपना 'सिर' उसके **'सिर'** करना ही वास्तविक समर्पण है।

दृश्यमान **'विश्व रूप'** स्वयं में ईश्वर का **'दर्शन'** है, अर्थात् उसके अदृश्य चेतन एवं आनन्द से ओत-प्रोत है। दृश्यमान की अदृश्यता (चेतन

एवं आनन्द) की अनुभूति के बिना ईश्वर की Realisation नहीं हो सकती। देह मेरी है और मैं देह हूँ, यह मान्यता तेरे **'सर'** को घेरे है, इसलिए तू चेतन और आनन्द की अनुभूति नहीं कर पाता। मात्र प्रवचन एवं श्रवण से ईश्वरीय **'सद्'** अनुभूतिगम्य नहीं होता। बात केवल शब्दों तक रह जाती है। **'असुर'** (मैं देह हूँ, देह मेरी है) बनकर इनका **असर** नहीं हो सकता, बल्कि **असर (सर रहित)** होकर ही **असर (प्रभाव व अनुभूति)** होगा। अपना **'सर'** समर्पित करने पर ही असर होगा और तेरा चेतन व आनन्द स्वरूप अनाच्छादित हो पाएगा। साथ ही तुझे देह-दर्शन भी होगा। तुझे तथाकथित तेरी अपनी दृश्यमान देह के, तेरे लिए अदृश्य आयामों का दर्शन करना होगा। उन अदृश्य आयामों में ही समस्त रहस्य छिपे हैं, उनके दर्शन से तेरा चेतन और आनन्द जाग्रत हो जाएगा।

आत्मतत्त्व जो दृष्टा रूप में महाचेतन (परमात्मा तत्त्व) का अंश है, वह मानव-देह के रूप के साथ नाम-रूप में तद्रूपतावश अवचेतना में उतर कर आच्छादित हो गया। इसके साथ ही मानव-देह का यथार्थ तथा ईश्वर का ईश्वरत्व भी आवृत हो गया। आत्मतत्त्व स्वयं में अनाम व अरूप है। आच्छादित आत्मतत्त्व के अनाच्छादन के तीन सोपान हैं–जागृति, अमरत्व एवं शिवत्व। निद्रा प्रकृति का एक प्रबन्धन एवं देह की ऐसी अवस्था है, जिसमें देह जीवित होती है, लेकिन देह-अवचेतना का प्रकाट्य नहीं होता। मृत्यु, देह की अवस्था है, जिसमें देह **'शव'** रूप में होती है। भस्मी, देह की ऐसी अवस्था है, जो अवस्था देह की नहीं है, अर्थात् उसमें देह नहीं होती। निद्रा-दर्शन–जागृति है, मृत्यु-दर्शन–अमरत्व है और भस्मी-दर्शन–शिवत्व है। शिवत्व में ज्योति में ज्योति समा जाती है। अमरत्व में अपने स्वरूप की स्मृति आ जाती है और जागृति में देह के मोह की निद्रा से जागकर देह सहित जगत के प्रदर्शन की स्वप्नवत् प्रतीति होने लगती है।

Body Consciousness स्वयं में अदृश्य है, देह सहित जगत का प्रकाट्य Body Consciousness में शब्द **'मैं'** के साथ लगने पर ही होता है। निद्रा में Body Consciousness होती है, लेकिन प्रकट नहीं होती। निद्रा से

उठते ही **‘मैं’** शब्द के प्रकाट्य के साथ Body Consciousness प्रकट हो गई, इसलिए देह व जगत खड़ा हो गया। यह **‘मैं’** विशुद्ध आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि नहीं, बल्कि **‘मैं’** Complex है। इस **‘मैं’** ने Body Consciousness में देह सहित जगत के प्रकाट्य को घोषित व प्रमाणित कर दिया। यह Body Consciousness **‘मैं’** के चेतना के स्तर के अनुसार होती है। महापुरुषों को भी देह रूप में प्रकट होने के लिए अवचेतना अथवा माया का तनिक सा स्पर्श लेना पड़ता है। लेकिन उनका चेतना का अनुपात अधिकतम होता है। अवचेतना स्वयं में चेतना नहीं है और जड़ता भी नहीं है।

**‘मैं’** का अवचेतना में चेतना का जो स्तर है, उसके अनुसार उसके लिए देह सहित जगत का प्रकाट्य होता है। Body Consciousness मुझे युगों-युगान्तरों से है। इसलिए बार-बार जन्म लेता हूँ, मरता हूँ, लेकिन देह का आभास मेरी चेतना में बना रहता है। निद्रा स्थिति में Body Consciousness अप्रकट होती है इसलिए देह व जगत अप्रकट होता है। साथ ही इस अप्रकट अवचेतना और देह व जगत के नहीं होने की चेतना और ज्ञान भी नहीं होता। इसलिए निद्रा **‘जड़ता’** है। निद्रा से उठा तो अप्रकट Body Consciousness देह सहित जगत सहित प्रकट हो गई। तुरिया समाधि में भी Body Consciousness नहीं होती, लेकिन उसमें मैं अपने चेतन स्वरूप के अभावमय आनन्द में सराबोर रहता हूँ।

**‘मैं’** जटिल्य की अप्रकट-अप्रकट अवस्थाओं (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था) में तू **‘जड़ता’** में होता है और अप्रकट-प्रकट स्थिति में तू **‘अवचेतना’** में होता है। जड़ता में भी आत्मतत्त्व होता है, लेकिन **‘मैं’** शब्द रूप में उसका प्रतिनिधित्व अप्रकट रहता है। इसे मानसिकता कहते हैं। तेरी मानसिकता भी स्वयं में अप्रकट है। आत्मतत्त्व का प्रतिनिधित्व **‘मैं’** शब्द में प्रकट होने पर तेरी अप्रकट मानसिकता ही तेरी देह व जगत बनकर प्रकट हो जाती है। यह प्रकाट्य **‘नित नूतन’** होता है। सोते समय भी तेरी एक अप्रकट-प्रकट मानसिकता होती है, जिसमें तेरी अपनी देह सहित जगत, तेरे उस समय के अतीत की भावनाओं व भविष्य

की सम्भावनाओं सहित प्रकट-अप्रकट रूप में होता है। सुषुप्ति में वह अप्रकट-प्रकट मानसिकता अप्रकट-अप्रकट हो गई। वह अप्रकट मानसिकता स्वप्न में भी प्रकट हो जाती है। मूलतः तू अपने जगत सहित समय-समय की अपनी मानसिकता के गर्भस्थ है।

**'मैं देह हूँ'** जटिल्यवश तू देह को पृथक् और जगत को पृथक् मानता है। अवचेतना में उठकर विवेकपूर्ण स्वप्न-दर्शन से तुझे ज्ञान होता है, कि तेरा अप्रकट-अप्रकट **'मैं'** जटिल्य ही देह सहित जगत सहित स्वप्न-सृष्टि के रूप में प्रकट हुआ। तू तो कहीं आया-गया नहीं। दृश्यमान सृष्टि प्रकट होती है और अप्रकट होती है, लेकिन निर्माण, पालन और संहार अवचेतना में तेरे दृष्टिकोण (Concept) में रचा बसा है। अवचेतना और दृष्टिकोण दोनों अदृश्य हैं। स्वप्न सृष्टि में तू और तेरी देह सहित जो जगत प्रकट होता है उसमें समस्त विभिन्न प्राणियों सहित भिन्न-भिन्न असंख्य पदार्थों का निर्माण, पालन कहाँ हुआ? इसी प्रकार यह सृष्टि जो तू देख रहा है, वह निर्मित व पालित है, लेकिन अवचेतनामयता में निर्माण, पालन तेरी धारणा है। मृत्यु होगी एवं देह चिताग्नि में दहन होती हुई जगत सहित पंच-महाभूतों में विलय हो जाएगी, यह भी अवचेतना में तेरी धारणा है।

निर्माण-निर्मित और पालन-पालित का **'संहार'** होता है और संहार के तीन आयाम हैं—मृत्यु, चिता एवं भस्मी। **'मृत्यु'** देह के साकार का अन्तिम पड़ाव है। **'शव'** के लिए अन्य द्वारा अर्थी बनाई जाती है, उसे कन्धों पर उठा कर शमशान में ले जाया जाता है और चिता पर रखकर जलाया जाता है। संहार तब हुआ, जब मृतक में जीने-मरने, कन्धों पर उठाए जाने और जलने का लेश मात्र भी अभिमान नहीं था। कोई नहीं कहता, कि मरने के बाद मैं कन्धों पर चढ़कर शमशान जाऊँगा और चिता में जलूँगा। सब यही कहते हैं, कि मरने के बाद मुझे शमशान ले जाया जाएगा, चिता पर जलाया जाएगा। मरने के बाद की स्थिति की कल्पना भी अहं रहित है। मरने के बाद उसके शव के लिए कोई यह सब न करता, तो उसे कोई अन्तर नहीं पड़ना था। लेकिन मरने तक व्यक्ति अभिमान नहीं छोड़ता, कि मैं मरूँगा। इसलिए हर

व्यक्ति मरने से भयभीत रहता है और बचने के असंख्य असफल उपाय भी करता रहता है। जो जीना-मरना मात्र ईश्वर के हाथ में ही है, उस पर भी मानव अहंवश अपना अधिकार करना चाहता है। अन्य मानव **'अपने लिए'** किसी मृतक के शव को शमशान ले जाकर और चिता में डालकर जलाते हैं। उसकी भस्मी को **'सम्मान'** भाव से गंगा-यमुना में अर्पित करते हैं।

मानव जो, जब, जहाँ, जैसा होता है, भिन्न-भिन्न होता है अर्थात् स्वयं में देह व जगत सम्बन्धी विधाओं की अनेकानेक भिन्नताओं से **'भेद युक्त'** होता है। लेकिन जब भी, जैसा भी, जहाँ भी मरता है, चिताग्नि में उसके **'शव'** के पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय होने के बाद उसकी भस्मी में कोई अन्तर नहीं होता। उसकी और अन्य मृतकों की **'भस्मी'** में कोई भेद नहीं होता। सभी **'भेद युक्त'** नाम-रूप वाले मानवों के शवों की **'भस्मी'** अनाम व अरूप है। अतः **'भेद रहित'** पदार्थ रूप में दृश्यमान है। वे जब तक जीवित रहे **'भेद युक्त'** ही रहे। **'भेदरहित' 'भस्मी'** जिस देह का प्रमाण है, वह **'संहारित देह'** सबकी **'अनाम', अरूप', 'अभिन्न', 'देहातीत', 'अभेद'** एवं **'अदृश्य'** है। तूने कभी अपनी भस्मी नहीं देखी। इस विषय में तूने आजीवन सोचना ही नहीं चाहा। निर्मित और पालित में ही जन्म-दर-जन्म भटकता रहा। तेरी अदृश्य संहारित देह का प्रमाण भस्मी तुझे दृश्यमान है। इस देहातीत पदार्थ को देह से देखा, सूंघा, चखा एवं स्पर्श किया जा सकता है। अपनी स्वयं की भस्मी किसी ने देखी नहीं है इसलिए वस्तुतः यह वास्तविक वस्तु **'भस्मी'** स्वयं में **'दर्शन'** (दरश न) है।

गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था मानव देह **की** अवस्थाएँ हैं और देह **में** हैं। **'भस्मी'** देह की है लेकिन **देह में** नहीं, देहातीत है। इसलिए माया रहित एवं भेद रहित है। यह देहातीत एवं प्रपंचातीत भस्मी स्वयं में **'अभेद'** व **'अदृश्य'** संहारित देह का प्रमाण है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश तथा इनसे निर्मित व पालित **'सब कुछ' 'माया में'** है, सतत् परिवर्तनशील है। पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अधिगृहीत समस्त दृश्यमान जगत प्रपंच है, माया है। प्रपंच **'जादू'** है और जादू के अतिरिक्त कुछ

**'दूजा'** नहीं है। इसका जो पदार्थ **'दूजा'** **'है'** वह प्रपंच में निर्मित, पालित और भिन्न-भिन्न से **'दूजा'** है। जब तक तू **'जादू'** से दूजा (**'अलग'**) नहीं होगा, पंच-महाभूतों के प्रपंच के इस मायिक जादू का रसास्वादन नहीं कर सकता।

प्रत्येक मानव देह निर्मित व पालित के साथ संहारित भी है। अतः उसके **'भेद रहित'** प्रमाण **'भस्मी'** को प्रणाम वस्तुतः **'संहारित देह'** का सम्मान है। संहारित देह ही मायातीत एवं प्रपंचातीत है। ***'क्वचिद् दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि।'*** रावण जैसा समस्त बहुमूल्य मायिक पदार्थों व शक्तियों का स्वामी भी इसी वास्तविक **'वस्तु'** (भस्मी) की आकांक्षा करता है। मृत्यु **'यम योग'** और भस्मी **'शिव योग'** है। योग का अर्थ है जुड़ना। जुड़ना और जुड़े हुए होना दोनों पृथक् हैं। एक प्रक्रिया है, दूसरा **'संयोग'** है। योग प्रकरण द्वारा योग में वृत्ति और लालसा हो जाती है, लेकिन **'योग होना'** स्वयं में कृपा और संयोग है। एक बार **'योगयुक्त'** स्थिति होने के बाद **'योग'** अविरल बना रहता है।

निर्माण, पालन व संहार तीनों माया में हैं। अपनी बनी-बनाई (निर्मित) और पली-पलाई (पालित) देह के बारे में तेरी समस्त जान्यताएँ एवं मान्यताएँ निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ हैं, क्योंकि **'सद्'** यह नहीं है। अवचेतना में तेरी अवचेतनामयता का मूल **'मैं'** जटिल्य एवं सन्देह है। न तूने अपना जन्म होते देखा, न मृत्यु होते देखेगा और न स्वयं को मृतक एवं अग्नि में दहन द्वारा पंच-महाभूतों में विलय होते देखेगा। संहार के दोनों आयाम (मृत्यु और चिता) भी देह अवचेतना में तेरी धारणा में रचे-बसे हैं। इस अवचेतनामयता में तू यह भी जानता है और मानता है, कि तेरी मृत्यु के बाद तेरी भस्मी बनेगी और कोई न कोई तेरी उस भस्मी को गंगा अथवा यमुना में विसर्जित कर देगा।

अवचेतनामयता में तेरी मुख्य जान्यताओं एवं मान्यताओं में निर्माण-निर्मित, पालन-पालित एवं संहार के अतिरिक्त अन्य भी बहुत कुछ है जिसमें तू हर वर्तमान में व्यस्तता के नाम पर अस्त-व्यस्त रहता है। तेरी

अपनी भविष्य की योजनाएँ, परियोजनाएँ, तेरे लगाव, अलगाव, मित्र, शत्रु, परिवार, सम्बन्ध, धर्म, कर्म, कर्तव्य, देश, काल, की विभिन्न विधाएँ, लेना, देना, करना, करवाना, पसन्द, नापसन्द, मान, अपमान, नाम, यश, पद, प्रतिष्ठा और देह व जगत सम्बन्धी असंख्य विधाएँ तेरे साथ चिपकी रहती हैं। बहुत कुछ ऐसा है, जो तू जानना चाहता है और बहुत कुछ नहीं जानना चाहता। बहुत कुछ ऐसा है, जो तू जानते बूझते भूलना चाहता है। यह सब कुछ अवचेतना में तेरी तथाकथित Awareness है। अवचेतना में, यह अवचेतनामयता तेरा सन्देह है।

**'मैं देह हूँ'** इस जटिल्य के कारण अवचेतनामयता ही तेरा अज्ञान है। 'मैं देह हूँ' सन्देह में सब के अलग-अलग पहचान-पत्र (I.D.) बनते हैं। सब मानवों के पहचान-पत्र (I.D.) अलग-अलग इसलिए होते हैं क्योंकि उनकी निर्मित पालित देहें भिन्न-भिन्न होती हैं। पहचान-पत्र (I.D.) में निर्मित व पालित देह के प्रमाण होते हैं, लेकिन संहार के प्रमाण तो नहीं होते, कि कब, कहाँ, कैसे मृत्यु होगी? सबकी मृत्यु भी एक ही स्थान, समय व स्थिति में एक ही प्रकार से नहीं होती। सबकी मृतक देह का अग्नि-दहन प्रकरण एक सा होता है और पदार्थ रूप में दृश्यमान **'भस्मी'** भी एक ही होती है। अवचेतना में सब मानवों में **'संहार'** के मात्र दो आयाम मृत्यु तथा मृतक देह का अग्नि-दहन ही जान्यता व मान्यता में नहीं है, बल्कि भस्मी बनना और उसका किसी के भी द्वारा गंगा-यमुना में विसर्जन भी है। किसी ने अपनी मृत्यु, मृतक देह का पंच-महाभूतों में विलय और भस्मी भी उसी प्रकार नहीं देखी जिस प्रकार अपनी निर्मित देह का निर्माण और पालित देह का पालन होते नहीं देखा।

अलग-अलग देहों की एक ही भस्मी है, इसका अर्थ है, कि भिन्न-भिन्न देहों का परिणाम एक ही है। उस अभिन्न परिणाम स्वरूप का प्रमाण **'भस्मी'** माया रहित और अवचेतना रहित है। यह **'परिणाम स्वरूप'** भिन्न-भिन्न देहों में क्या है? तेरी मृत्यु होगी, तेरी मृतक देह का पंच-महाभूतों में विलय होगा। यह पंच-महाभूत भी सबके एक ही हैं। शमशान में पड़ी कोई

भी भस्मी यह प्रमाणित करती है, कि कोई मानव जो कभी जीवित था, उसकी मृत्यु हुई और उसकी मृतक देह चिताग्नि में दहन होती हुई पंच-महाभूतों में विलय हो गई। भिन्न-भिन्न मानव जो अनेक व असामान्य थे, जब मर गए तो यद्यपि मृत्यु के कारण, प्रकार, स्थान, समय व स्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, उनकी मृतक देह एक ही सामान्य **प्रकरण** (चिताग्नि में दहन) के ज़रिए पंच-महाभूतों में विलय हुई। **'पंच-महाभूत'** और **'भस्मी'** सबकी सामान्य एवं एक ही है।

संहारोपरान्त पंच-महाभूतों में विलय और भस्मी नहीं बनी, बल्कि संहार प्रकरण (चिताग्नि में दहन) के दौरान ही परिणाम-स्वरूप भस्मी बननी शुरू हो गई और मृतक देह का पंच-महाभूतों में धीरे-धीरे विलय होने लगा। पूर्ण संहारोपरान्त पूर्ण भस्मी पदार्थ रूप में दृश्यमान हुई। प्रश्न उठता है, कि यह पदार्थ भसम जो सबका एक ही है, किस एक परिणाम का प्रमाण है? भिन्न-भिन्न अनेकानेक जो वर्तमान में हैं, भूत में हुए और भविष्य में होंगे, उनका यदि परिणाम एक ही है, तभी तो परिणाम का प्रमाण भस्मी एक ही है। वह एक ही परिणाम क्या है, जिसका प्रमाण **'भस्मी'** एक ही है। देहें पृथक्-पृथक् थीं, हैं और होंगी, तो **'परिणाम'** एक नहीं हो सकता। अतः **'भस्मी'** तेरी निर्मित, पालित और मृतक देह का **प्रमाण** नहीं है, क्योंकि **'भस्मी'** तो **'परिणाम स्वरूप'** जो सबका एक ही है, उसका प्रमाण है। अतः भिन्न-भिन्न में कुछ ऐसा एक ही अभिन्न है, जिस परिणाम का प्रमाण **'भस्मी'** है। विभिन्न नामों, धर्मों, देशों, कालों के मानव जहाँ एक हो जाते हैं, वह **'अभिन्न'** क्या है? **'भस्मी'** निर्माण, पालन और मृत्यु की तरह न देखी हुई कल्पना नहीं है, बल्कि पंच-महाभूतों की दृश्यमान सृष्टि में उस **'एक'** का एक **'पदार्थ'** रूप में प्रकट प्रमाण है।

तेरी देह का संहार होगा अर्थात् मृत्यु होगी और मृतक देह चिताग्नि में दहन होकर पंच-महाभूतों में विलय हो जाएगी। विलय के उस प्रमाण, भस्मी को तू देह अवचेतना में भी जानता व मानता है। संहार-प्रकरण जैसा आज तक सबकी मृतक देहों का हुआ, वर्तमान में हो रहा है और भविष्य में होगा,

तेरा भी वैसा ही होगा। संहार के परिणाम स्वरूप प्रकट प्रमाण **'भस्मी'** एक ही है। संहार बनी-बनाई, पली-पलाई देह का हुआ। वह पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय हुई, तो भस्मी प्रकट हुई। **'भस्मी'** तेरी एक अदृश्य देह का प्रमाण है, जिसे तूने कभी नहीं देखा, लेकिन वह है और तेरे लिए अप्रकट-अप्रकट है। वह अप्रकट-अप्रकट **संहारित देह** संहार के परिणाम स्वरूप प्रकट होगी। उसी का प्रमाण भस्मी है। अतः तेरी व सबकी दृश्यमान निर्मित व पालित देह के दौरान भी देह का एक अदृश्य व अप्रकट स्वरूप है, जिसका प्रकाट्य पूर्ण संहारोपरान्त देह के पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय हो जाने पर होता है। जिसका प्रमाण **'भस्मी'** है।

तू देह है, यह तेरा सन्देह है। तू देह है, तो भस्मी किसकी है? तेरी एवं सबकी वह अदृश्य विधा **'नाम-रूप'** से परे है। वह निर्माण, पालन और संहार से भी परे है और सबकी एक ही है। साथ ही स्वयं में **'संहारित'** एवं **'संहारातीत'** है। निर्मित **'निर्माणातीत'** है, पालित **'पालनातीत'** है और संहारित **'संहारातीत'** है। अतएव वह मायातीत है। उसका प्रमाण **'भस्मी'** **'मायारहित'** है। तू देह के साथ सन्देह (मैं देह हूँ) में जटिल्य में फँस कर तद्रूप सा हो गया और जन्मों-जन्मान्तरों में भटक रहा है। यह **'मैं'** जटिल्य बीज रूप में तेरी संहारित देह के गर्भ में रहता है। यह जटिल्य न जलता है, न मिटता है न पानी में बहता है, वैसा का वैसा ही रहता है। **'संहारित देह'** के प्रमाण **'भस्मी'** को गंगा-यमुना में सम्मानपूर्वक विसर्जित करते हुए प्रणाम करने से सद्गति में अगला जन्म तेरे लिए सुनिश्चित हो जाता है।

'मैं देह हूँ' यह जटिल्य तेरा सन्देह है, तेरी मानसिकता है। 'मैं भस्मी हूँ' यह **'संहारित देह'** का अनाच्छादन है एवं उसका अप्रकट-प्रकाट्य है। तेरी **'संहारित देह'** सर्वेसर्वा है। **'संहारित देह'** निर्माणोपरान्त, जन्मोपरान्त, निर्मितोपरान्त, पालनोपरान्त और पालितोपरान्त, मृत्योपरान्त और संहारोपरान्त है। **'संहारितोपरान्त'** कुछ नहीं है, क्योंकि वह स्वयं में सर्वोपरान्त है। उपरामोपरान्त **'उपराम'** है। इसीलिए जीते जी संहारित

देह की अनुभूति होते ही तू **'उपराम'** हो जाएगा। फिर तेरा जन्म नहीं अवतरण होगा। प्रभु स्वयं तुझे अपने भक्तों के लिए देह देकर भेजेगा। तू रूप, स्वरूप, सर्वरूप, अरूप और विरूप सभी में **'विरूपाक्ष'** होकर विचरण करेगा।

**'भस्मी'** में **'रूप'** नहीं रहता। अतः **'रूप'** की नाम से गुण्ठा व कुण्ठा का आधार निर्मूल हो जाता है। उस रूप से गुण्ठित **'मैं'** की गुण्ठा व कुण्ठा की घुण्डी निर्मूल हो जाएगी। तब **'मैं'** विशुद्ध और स्वतन्त्र होती हुई **भस्मी'** से जुड़ जाएगी, जो स्वयं में अनाम व अरूप है। वह तेरा आनन्दमय, अभावमय मानस है। तेरी अपनी निर्माण, पालन एवं संहार की जान्यता व मान्यता तेरी अन्य समस्त जान्यताओं एवं मान्यताओं के साथ समाप्त हो जाएँगी। उस मानस से जब तेरी देह व जगत प्रकट होगा, तो वह दिव्य होगा। जन्म-मृत्यु की देहावधि में दृश्यमान प्रपंच साकार है, चिताग्नि में दहन **'निराकार'** है, भस्मी **'भेदरहित'** है और संहारित **'अभेद'** है। साकार और निराकार दोनों माया में हैं। अभेद व अदृश्य, मायातीत संहारित देह का **'भेद रहित'** दृश्यमान प्रमाण **'भस्मी'** है। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः सविस्तार वर्णन करूँगा।

जन्म लेते ही किसी देह का कोई नाम नहीं होता। परिचय, पहचान और जगत व्यवहार के लिए **'नाम'** रखा जाता है। लेकिन एक सरल सा **नाम** धीरे-धीरे सम्पूर्ण देह का स्वामी बन जाता है। व्यक्ति जो, जब, जहाँ, जैसा भी होता है, अपने जगत सहित होता है। नाम से गुण्ठित **'रूप से'** के साथ **'तद्रूपता सी'** में जीव अपने ही जगत से पृथक् हो जाता है। व्यक्ति के जागने का अर्थ है, **'मैं'** शब्द का प्रकट होना और देह अवचेतना का चेतना के किसी भी स्तर पर देह सहित जगत के रूप में प्रकट होना। तभी **'मैं'** द्वारा देह सहित जगत सहित तेरा **'होना'** प्रमाणित होता है। कोई भी स्वयं में व्यष्टि नहीं है। जब एक व्यक्ति जागता है, तो अपनी उस समय की कुल समष्टि के साथ जागता है। समष्टि में व्यष्टि भी होता है।

**'मैं'** जीवात्मा की प्रतिनिधि है, लेकिन एक जाग्रत मानव-देह जो पहले

से ही **'नाम'** द्वारा अधिगृहीत थी, उसके तनिक अवलम्बन से जब **'मैं'** प्रकट हुई, तो भ्रम हो गया, कि मैं अमुक-अमुक हूँ। जगत में **'मैं'** सबकी एक है, लेकिन नाम और गुण-दोष, धर्म-कर्म अलग-अलग हैं। मैं गिरधारी, मैं मुहम्मद याकूब, मैं हिन्दू, मैं मुसलमान, मैं मालिक, मैं नौकर, मैं अध्यापक, मैं छात्र, मैं राजा, मैं प्रजा। **'मैं'** जो, जब, जहाँ, जैसी देह है, थी और होगी उसके जैसी होते हुए उस देह की प्रतिनिधि एक जटिल्य बन गई। **'मैं'** व्यष्टि देह के साथ नाम-रूप में तद्रूप सी हुई, तो देह की यह अवचेतना देह सहित जगत के रूप में चौरासी लाख मायिक योनियों में प्रकट हुई।

दृश्यमान प्रकाट्य में देह के साथ जगत होगा ही, अन्यथा खेल कैसे चलेगा? एक मानव देह कुल समष्टि की प्रतिनिधि और संघनित स्वरूप है। मेरा होना जगत का होना है और जगत में मैं भी होता हूँ। **'मैं'** समय-समय पर चेतना के जिस स्तर पर होती है, उसी के अनुसार उसका समय-समय का जगत होता है। **'मैं'** डॉक्टर बनने का निमित्त बनता है, तो रोगी बनने का निमित्त भी बनता है। **'मैं'** शिक्षक बनने का निमित्त बनता है, तो छात्र बनने का निमित्त भी बनता है। यदि इस प्रकाट्य में परिवर्तन करना है, तो अदृश्य मानसिकता में परिवर्तन लाना होगा। क्योंकि जो चैनल लगी है, व्यक्ति देह सहित जगत उस चैनल में पहले से Recorded है। अप्रकट व अदृश्य, विरक्त एवं अभावमय मानस की अनुभूति आनन्द व चेतना है। तेरा **'मैं'** जटिल्य (मैं अमुक-अमुक हूँ) स्वयं में अदृश्य व अप्रकट मानसिकता है।

मानसिकता का प्रकाट्य **'अवचेतना में'** दृश्यमान है। जब **'मैं'** जटिल्य (Complex) अप्रकट होता है, तो वह जड़ता है, जब प्रकट होता है, वह अवचेतना है। जब भी **'मैं'** होश में होता हूँ, तो मैं स्वयं को **'निर्मित'** और **'पालित'** पाता हूँ। चाहे मैं शैशव से बाहर आऊँ अथवा निद्रा से उठूँ। निर्मित के अतीत में निर्माण था और पालित के अतीत में पालन था। स्वयं का निर्माण और पालन होते किसी ने नहीं देखा, न देख सकता है तथा न कर सकता है। **अतः स्वयं का निर्माण व पालन 'अतीत' ही रहता है।**

वर्तमान में जब मैं हूँ, निर्मित व पालित हूँ, यह मेरा होना **'मैं'** लगने पर अप्रकट देह अवचेतना के प्रकाट्य में है। यह अवचेतनमयता मेरी देह की अवचेतना **में** ही होती है, जड़ता और चेतना में नहीं होती। हर वर्तमान में यत्नपूर्वक एक निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'मृत्यु'** भी मेरी जान्यता एवं मान्यता में रहता है। यह समस्त मायामयता अवचेतना में अवचेतनामयतावश होती है।

अप्रकट-अप्रकट के प्रकाट्य का चमत्कारिक एवं परम रहस्यमय सौन्दर्य यह है, कि एक व्यक्ति जब उठता है, तो अनेकों को साथ लेकर उठता है। इसी प्रकार जब एक व्यक्ति सोता है, तो अनेकों को लेकर सोता है। इस सद् को मैं अक्सर जाने-अनजाने उपेक्षित किए रहता हूँ, कि जो मेरे साथ उठे हैं, उनमें और मुझमें कोई सम्बन्ध तो अवश्य होगा। जब मैं सो रहा था, तो **'मैं'** स्वयं में नहीं था और मुझे अपने सहित जगत का, भूत, भविष्य, वर्तमान का कोई ज्ञान नहीं था। साथ ही यह ज्ञान न होने का भी ज्ञान नहीं था। जब मैं उठा हूँ, तो देह सहित जगत सहित तथा उस समय के भूत, भविष्य, वर्तमान सहित उठा हूँ। मैं जैसा भी हूँ और जगत जैसा भी है, मेरे साथ उठा है। मेरे दोस्त, मेरे दुश्मन, मेरा भूत, भविष्य, वर्तमान, जन्म-मृत्यु, लेना-देना, रोग-दोष, राग-द्वेष, भय-त्रास, सुख-दुःख और सब कुछ मेरे साथ उठते हैं। जगत नित्य नया होता है, क्योंकि **'मैं'** नित नूतन होता हूँ।

जब आप स्वयं को एक देह रूप में पहचानते हैं, तो आपके साथ ज्ञात अथवा अज्ञात, प्रकट अथवा अप्रकट **'अनेक'** होंगे ही और जब स्वयं को एक देह रूप में नहीं पहचानते, तो न एक होगा न अनेक होगा। उदाहरणतः जब आपको निद्रा आ जाती है, उस समय आप स्वयं में एक भी नहीं होते, तद्नुसार आपका कोई जगत भी नहीं होता। समस्त खेल **'एक'** (परमात्मा) का **'एक'** के द्वारा है और उसका दृष्टा (जीवात्मा) भी **'एक'** ही है। समस्त दृश्यमान प्रकाट्य (**'सृष्टि'**) निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में एक अदृश्य स्रष्टा (परमात्मा) द्वारा, **'एक'** अदृश्य दृष्टा (जीवात्मा) के लिए है। अतः एक के प्राण से देह सहित जगत प्राणान्वित है। जो जगत एक मेरे साथ

प्रकट होता है, मुझ एक के प्राण से होता है। प्राण देह में नहीं है, पंच-महाभूतों सहित तेरी देह व जगत **'प्राणों में'** है। स्वप्न में तुझ एक सहित जो जगत प्रकट हुआ, उन सबमें प्राण कहाँ से आए। उसमें मृतकों में भी प्राण आ गए और जीवित मृतक हो गए। वह समस्त **'स्थूल जगत'** अदृश्य सूक्ष्म जगत से प्रकट हुआ। सूक्ष्म जगत में **'मैं'** देह रूप में नहीं होता और जगत भी नहीं होता। पंच महाभूत भी नहीं होते। एक का सूक्ष्म है और स्थूल भी एक का है तथा स्थूल और सूक्ष्म का **'कारण'** भी एक ही है। वह ईश्वर स्वयं में सच्चिदानंद है।

सूक्ष्म जगत **'एक'** का है। इसके दुःखों से परे होने के लिए और उस सच्चिदानंद कारण से सम्पर्क के लिए इस **'एक'** को एकान्त में जाना होगा। एकान्त स्वतः अनेकान्त भी है। एक और अनेक में Common **'एक'** है उस **'एक'** के न रहने पर अनेक स्वतः नहीं रहते। वह समाधि है। अतः उठते ही अपनी **'मैं'** को अपनी देह की **'भस्मी'** के साथ आत्मसात् कर। भस्मी का कोई रूप ही नहीं है। **'रूप'** के न रहते ही नाम का आधार समाप्त हो जाएगा। **'भस्मी'** तेरी देह की एक ही ऐसी अवस्था है, जो **'रूप रहित'** है। **'मैं भस्मी हूँ'** इसकी अवधारणा कर। तू होगा, लेकिन किसी नामरूप से बंधा हुआ नहीं होगा। तू इस **'मैं'** जटिल्य से बाहर आ जाएगा। तेरा सूक्ष्म आनन्दमय हो जाएगा, तो जो स्थूल देह सहित जगत प्रकट होगा, वह भी आनन्दमय होगा।

मानव-देह का विराट स्वरूप ईश्वरत्व से ओत-प्रोत है। **'सद्'** रूप साकार एवं निराकार दृश्यमान है और **चेतन** एवं **आनन्द** अदृश्य हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु निराकार हैं, जो दृश्यमान हैं और इनके द्वारा निर्मित, पालित एवं इन्हीं में विलय होता समस्त प्राणी जगत साकार रूप में दृश्यमान है। इस प्रकार ईश्वर तीन विधाओं का संगम है– साकार-निराकार (सद्) चेतन एवं आनन्द (अदृश्य)। अदृश्य व अप्रकट रूप में शिव स्वयं में अत्यन्त विरक्ति शक्ति है। यह विरक्ति शक्ति प्रकाट्य रूप में निराकार पंच-महाभूतों एवं इनके अद्भुत संगम से निर्मित व पालित समस्त साकार

को दशानन गति प्रदान करती है। किसी गति के लिए शक्ति अपेक्षित है। शक्ति शिव की है। उसकी आद्याशक्ति माँ भवानी इस शक्ति को रूपाकार देती है और उसकी सहायिका प्रकृति ने असंख्य प्रकार दिए हैं। इस प्रकार निराकार पंच महाभूतों से **'सद्'** रूप साकार एवं निराकार जगत का निर्माण, पालन व संहार होता है। संहार के तीन (मृत्यु, चिता एवं भस्मी) आयामों में तीन ईश्वरीय विधाओं (सद्, चेतन एवं आनन्द) का समागम देखा जा सकता है।

देह के अन्तान्त में **'भस्मी'** का प्रकाट्य होगा ही। जो **'होगा ही'** वह **'है ही'।** सद्गुरु कृपा से ध्यान समाधि में जब इसका पुनः पुनः नित्याध्यासन होता है, तो सद्, चेतन, आनन्द के प्रकाट्य की अनुभूति होती है। यहाँ देह, जगत, आत्मा, परमात्मा सबके रहस्य अनावृत होने लगते हैं। अपनी मृत्यु, चिता और भस्मी से आत्मसात् होने वाली **'मैं'** और किसी दूसरे की मृतक देह, चिता एवं भस्मी देखने वाली **'मैं'** बिल्कुल भिन्न है। अपनी मृतक देह की चिता देखने के लिए तुझे अपनी उस देह से हटना होगा, जिससे तू अन्य लोगों की मृतक देह को चिता में जलते देखता रहा है। एक विशुद्ध **'मैं'** आत्मतत्त्व की द्योतक है और दूसरी **'मैं'** जटिल्य है। अपनी चिता तेरी विशुद्ध **'मैं'** चेतना में देखेगी। वह तेरे अदृश्य चेतन का चिता रूप में दृश्यमान प्रकाट्य है। इससे तेरी सुषुप्त चेतना जाग्रत हो जाएगी। यह चिता-दर्शन ही **'चिदा-दर्शन'** है। यह विशुद्ध **'मैं'** का दृश्य रूप में प्रकाट्य है। वह देह चेतन व आनन्द के समन्वय का प्रकाट्य **'सद्'** होगी। उस **'संत'** का सत्संग ही **'सद्'** है।

सद्, चेतन और आनन्द तीनों गुथे-मुथे हैं। **'सद्'** में चेतना और आनन्द, **'चेतना'** में सद् और आनन्द तथा **'आनन्द'** में सद् एवं चेतना भी समाहित होती है। **'मृत्यु-दर्शन'** में भी **'सद्'** के साथ चेतना व आनन्द की अनुभूति होती है, लेकिन वहाँ साकार के अन्तिम पड़ाव रूप **'मृत्यु-दर्शन'** में **'सद्'** की प्राथमिकता है। वहीं से विरक्ति भाव की जागृति शुरू हो जाती है। जगत की लीला का महत्व भी वहीं से समाप्त होने लगता है, कि जो मैं था (नाम-रूप की देह) वह मैं नहीं हूँ। **'चिता'**

और **'चिदा'** पयार्यवाची हैं, इसमें साकार की निराकार में पूर्ण परिणति होती है। देह के **'निराकार'** का अन्तिम पड़ाव **'चिता'** है। चिताग्नि की विराट लपटों में साकार देह शनैः शनैः निराकार पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलीन हो जाती है। पूर्ण साकार से पूर्ण निराकार में विलय ईश्वर की महा चमत्कारिक कला है। दृश्यमान निराकार में विलय होते ही साकारों के समस्त भेद-भाव तिरोहित हो जाते हैं और **'चेतना'** का प्रकाट्य होता है। ध्यान द्वारा अपनी **'चिता-दर्शन'** में जब पंच-महाभूतों में निर्मित व पालित देह स्वयं में निराकार पंच महाभूतों में विलय हो जाती है, वहीं से पर्दा गिरने में निराकार रूप में ईश्वर की सर्व व्यापकता एवं उसके अदृश्य अंग **'चेतना'** की अनुभूति होती है। **'चिता-दर्शन'** में प्राथमिकता चेतना की है।

**'मृत्यु-दर्शन' सदानुभूति, 'चिता-दर्शन', 'चेतनानुभूति एवं 'भस्मी-दर्शन'** स्वयं में आनन्दानुभूति है। **'भस्मी-दर्शन'** में देह के अदृश्य की अनुभूति आनन्दानुभूति अथवा ब्रह्मानुभूति है। इस प्रकार मृत्यु-दर्शन, चिता-दर्शन एवं भस्मी-दर्शन संहार के तीनों आयामों में सद्, चेतन एवं आनन्द की अनुभूति होने लगती है। फिर भी **'मृत्यु-दर्शन'** में ईश्वर के सद् स्वरूप की प्रमुखता है, **'चिता-दर्शन'** में चेतन और **'भस्मी-दर्शन'** स्वयं में आनन्द-दर्शन की मुख्यता लिए हैं। यह समस्त प्रकरण मात्र कृपा-साध्य है। सदानुभूति, अमरत्व, चेतनानुभूति, चेतना और आनन्दानुभूति आनन्द से ओत-प्रोत हैं। आनन्द, परमानन्द, ब्रह्मानन्द का स्रोत **'भस्मी-दर्शन'** ही है। परम, परमपार, अपरम, अपरमपार क्रमशः शक्ति, महाशक्ति, अतिशक्ति, अत्यन्त शक्ति है। अत्यन्त स्वयं में अनन्त है और अपरमपार है।

***''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''***

**(4 जून से 16 जून एवं 8 से 10 अक्टूबर 2012)**

# संहार (देह-धर्म)

## (भाग – 11)

**स**द्‌गुरु स्वयं में **'मौन'** की प्रतिमूर्ति है। उसकी दृष्टि, स्पर्श, शब्द, निःशब्द, प्रसाद, चरणामृत और सब कुछ में **'मौन संकर्षण'** सन्निहित है। सौन्दर्य, ज्ञान, प्रतिभा, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति और कला का आकर्षण उसकी विशिष्टता है। उसका संकर्षण स्वयं में प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठित ही प्रतिष्ठा पाता है और निष्ठापूर्वक, विशिष्ट कलात्मक एवं परमोत्कृष्ट जीवन जीता है। जीवन स्वयं में एक ईश्वरीय खेल है। खेल में सब कुछ खेल है। आयु अथवा life एक देहावधि है, जो जन्म-मृत्यु के छोरों में सीमित है। सीमा की अनुभूति सीमा के भीतर रहते हुए नहीं हो सकती। आयु में आयु का उल्लंघन (आयु+उल्लंघन=आयोर्लंघन) सीमा द्वारा असीम में प्रविष्टि है।

प्रत्येक मानव देहाकृति की एक अवधि है, जिसे आयु और अंग्रेज़ी में life कहते हैं। मानव ही नहीं प्रत्येक प्राणी, पेड़-पौधे, पदार्थों की भी एक अवधि होती है। मानव-देह जो अवधि से बँधी है, वह दर्शित है। मृत्यु के साथ यह अवधि समाप्त हो जाती है और जन्म के साथ शुरू होती है। किसकी कितनी अवधि है, इसका अनुमान लगाना असम्भव है। यह अवधि काल के तीन अंगों (समय, स्थान, स्थिति) में से एक अंग (समय) है। जन्म किस समय, किस स्थान व किस स्थिति में हुआ, यह दर्शित है, लेकिन मृत्यु किस समय, स्थान व स्थिति में होगी, यह कोई नहीं जानता।

यह ईश्वरीय सुकृति तेरी नहीं है। तूने इस देहाकृति पर हठात् अधिपत्य किया हुआ है। अतः यह देह ही भौतिक एवं क्षणिक उपलब्धियों के लिए उसी अनुपात में तुझे आजीवन भगाती है, जितनी गहराई से तूने देह पर

अनधिकृत कब्ज़ा किया हुआ है। देह **'भोग एवं योग'** दोनों से वंचित कर देती है। वहाँ **'गेम'** (Game) समाप्त हो जाता है और सन्देह में तेरी समस्त दौड़ अधिक से अधिक **'गेन'** (Gain) के लिए हो जाती है। तू एक मालवाहक जहाज की भाँति हो जाता है और तेरा माल ही तुझे ले डूबता है। अधिक से अधिक उपलब्धियों की ओर तेरी यह दौड़ सीधे देह पर तेरे अधिपत्य व अध्यास की गहनता के समानानुपात में होती है। जीते जी सारा **'मज़ा'** समाप्त करते हुए **'मृत्यु'** को भी **'जाम'** लगा देती है। देह ही तुझे देह और देहों द्वारा सज़ा देती है। मानव-देह कालवश तो है ही, साथ ही कर्म एवं प्रारब्धवश भी है। किसी के प्रारब्ध का किसी को नहीं मालूम। हम जो देखते हैं, वह अपनी दृष्टि से देखते हैं। किसी मानव के विषय में जो भी वर्णन किया जाता है, वह उसका किया जाता है, जिनसे देह बँधी है। इन्हीं बन्धनों को **'तुष्ट, पुष्ट और स्पष्ट'** करने के लिए विविध अनुमान लगाए जाते हैं।

प्रभु ने अनादि से अनन्त तक की सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि का प्रतिनिधित्व अपनी सर्वोत्कृष्ट सुकृति एक मानव-देह में संघनित किया है। मानव-देह स्वयं में दिखाई देती है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों अदृश्यों ने एक दृश्यमान सुकृति मानव-देह को चुना। जिसके द्वारा वह स्रष्टा निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में कोटि-कोटि दृश्यमान महाब्रह्माण्ड दृष्टा को दिखा सकता है और दृष्टा जीवात्मा देख सकता है। समस्त दृश्यमान के पीछे कोई अदृश्य छिपा है, इसका अनुमान केवल मानव ही लगा सकता है। देखने वाला मानव ईश्वर को मानने से पहले इस समस्त दृश्यमान द्वारा उसका अनुमान लगाता है। मानने से पहले की भूमिका को **'अनुमान'** कहते हैं। अनुमान से मान्यता तक पहुँचने पर अनुमान से **'अनु'** उपसर्ग हट जाता है और केवल **'मान'** रह जाता है। मान्यता की परिपक्वता में जीव अदृश्य **'चेतन'** व **'आनन्द'** तथा दोनों के अदृश्य समन्वय रूप में दृश्यमान प्रकट सृष्टि के **'सद्'** की अनुभूति करता है।

अदृश्य जीवात्मा, दृश्यमान मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेकर ही दृष्टा बन सकता है। दृश्यमान का दृष्टा बनने के लिए जीवात्मा को अपने स्थान पर स्वयं का प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द चाहिए। सम्पूर्ण दृश्यमान, **'मैं'** शब्द द्वारा ही क्रियान्वित एवं जीवन्त घोषित होता है। एक जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेते हुए प्रकट होकर देह सहित जगत सहित को क्रियान्वित करने में **'मैं'** शब्द आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि न रहकर एक जटिल्य बन गया। **'मैं'** शब्द द्वारा जीव-सृष्टि में भटके हुए जीव को अविलम्ब किसी भी प्रकार से अपने विशुद्ध विरक्त आत्म-स्वरूप का दिग्दर्शन करना होगा। **'नाम, रूप, मैं और होना'** चार अंगों के जटिल्य को ही जीव कहते हैं। अवचेतना में जीव स्वयं को दृश्यमान समझने लगता है। इस समस्त दृश्यमान चराचर जगत का निर्माता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता कौन है? यह जिज्ञासा मानव को ही हो सकती है। एक अदृश्य (दृष्टा आत्मतत्त्व) दृश्यमान देह द्वारा चराचर जगत सहित पल-पल परिवर्तित विभिन्न दृश्य देखकर दूसरे अदृश्य (स्रष्टा परमात्मा) का अनुमान लगाता है। दूसरा अदृश्य (स्रष्टा परमात्मा) इस दृश्यमान मानव-देह द्वारा ही जीव की स्थिति देखता है, कि जीव क्या देखना चाहता है?

जीव को इस जटिल्य से बाहर आने के लिए सर्वप्रथम मानना होगा, कि मानव-देह मेरी नहीं है, यह परमात्मा की है। उसे इस **'सद्'** को जानना, मानना एवं इसका नित्याध्यासन करना होगा। इसके बाद दिल व रूह से पूर्णतः आश्वस्त होने के बाद मानव-देह का परमात्मा के चरणों में समर्पण करना होगा, कि ''मैंने तेरी इस महान सुकृति मानव-देह को **'मालवाहक जहाज'** बना लिया है। मैं एक महासागर में बहता जा रहा हूँ। हे अजानुभुज ! तू मेरी रक्षा कर।'' **'हार गर्भित'** प्रार्थनाएँ ही **'सारगर्भित'** होती हैं। इस आर्तनाद से द्रवित होने और तेरा समर्पण स्वीकार करने के बाद इस दृश्यमान मानव-देह द्वारा प्रभु तुझे अनादि से अनन्त तक समस्त दृश्यमान चराचर सृष्टि दिखाएँगे। साथ ही तेरी देह ही समस्त अदृश्य (परमात्मा, जीवात्मा, चेतना तथा आनन्द) की अनुभूति का हेतु भी बनेगी। दृश्यमान में

चेतना व आनन्द की अनुभूति के बाद ही चराचर सद् सृष्टि का रसास्वादन सम्भव है। यदि देखने वाले जीव का चेतन व आनन्द आच्छादित हो गया, तो वह **'सद्'** कैसे देखेगा?

दृश्यमान मानव-देह के **'होने'** में ही अदृश्य स्रष्टा (परमात्मा) दृश्यमान चराचर जगत का सृजन, पालन और संहार दिखा सकता है और अदृश्य दृष्टा (जीवात्मा) देख सकता है। अदृश्य दृष्टा के लिए दृश्यमान मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेते हुए उसकी पहचान एवं उसके **'सद्'** का अधिग्रहण अत्यावश्यक है। यदि उसे इसकी विधि का ज्ञान नहीं था, तो विधि के विधाता से अपनी असमर्थता की स्वीकृति आवश्यक थी। सच्चिदानन्द विधि के विधान के तहत आए व्यवधानों से दुःखी, त्रसित एवं पीड़ित जीव जब प्रभु से अपनी असमर्थता स्वीकार करते हुए आर्तनाद करता है, तो वह स्वयं विधि के विधान के संविधान का ज्ञाता बन कर पूर्ण सद्गुरु स्वरूप में प्रकट हो जाता है। वह ध्यानस्थ होकर विधि के विधानों का दर्शन करता हुआ प्रभु के संविधान को रचता है। अपनी उत्कृष्टतम बुद्धि से तू जान ले, कि तू **'कुछ नहीं'** जानता। **'सब कुछ'** जनवाने के गुरु बहुत मिल जाएँगे, लेकिन **'कुछ नहीं'** की जान्यता और मान्यता की सिद्धि सद्गुरु कृपा पर ही निर्भर है। जो यह जनवा दे, कि तू कुछ नहीं जानता, वही सद्गुरु है। तुझे सद्गुरु का शरणागत होना ही पड़ेगा। **'कुछ नहीं'** की जान्यता और मान्यता ही वास्तविक जान्यता-मान्यता है। वही मानव मान्यवर है।

सृष्टि के नियमों के तहत मानव-देह का निर्माण, पालन एवं संहार और सम्पूर्ण चराचर जगत का 'नियमन' होता है। हर क्षण परिवर्तनशील और जन्म-मृत्यु के दो छोरों में बँधी प्रत्येक मानव-देह एक दूसरे से भिन्न है। भिन्न-भिन्न देहों में पाँच अवस्थाएँ अभिन्न हैं—गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था। स्वयं **'देह-धर्म'** अभिन्न हैं। मानव-देह क्षणिक एवं क्षण-भंगुर है, एक दिन थी नहीं, अन्ततः रहेगी नहीं, जब है तो यह सर्वोत्कृष्ट ईश्वरीय सुकृति है। इन देह धर्मों पर कोई थोपे हुए

धर्म लागू नहीं होते और ये देह-धर्म प्रत्येक धर्म की देह पर लागू होते हैं। देह-धर्म प्रत्येक मानव-देह को धारित हैं। कोई धर्म इन देह-धर्मों में संशोधन, परिवर्तन और नवीनीकरण नहीं कर सकता। अतः भिन्न-भिन्न देहों में इन देह-धर्मों की अभिन्नता थी, है और रहेगी। कोई देह-धारी इस **'सद्'** को जाने, चाहे न जाने, मानव-देह किसी मानव की नहीं है और कोई मानव इसका निर्माण, पालन एवं संहार नहीं कर सकता।

आत्मज्ञान के लिए देह ही साधन है, देह अपने धारित धर्मों पर टिकी है और वही इसके मूल हैं। हर क्षण होते इसके परिवर्तनों को कोई रोक नहीं सकता। हर क्षण होने वाला परिवर्तन दूसरे परिवर्तन से भिन्न और स्वतः पूर्ण है। उसका पिछले व आगामी परिवर्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी भी परिवर्तन पर मृत्यु आ सकती है। कोई परिवर्तन किसी परिवर्तन का आरम्भ और अन्त नहीं है। हर परिवर्तन स्वयं में **'वर्तमान'** है। जिसे हुआ **'था'** कहते हैं, वह भी **'है'** था और जिसे **'होगा'** कहते हैं, वह भी यदि होगा तो **'है'** ही होगा। **'है' 'है' 'है'** यही देह-धर्म के अन्तर्गत होते परिवर्तनों का **'सद्'** है। 'देह काहे के लिए है' यह जानने के लिए देह है। तू मानव होते हुए जो देह व देहों के लिए कर रहा है, उसका अन्त क्या है? यह जानने के लिए तुझे अपनी देह का अन्त व अन्तान्त जीते जी ध्यान में देखना पड़ेगा। तू देह द्वारा, देह व देहों के लिए जो कर रहा है, करना चाहता है अथवा नहीं करना चाहता, उस सबका अन्ततः एक पदार्थ में अन्त हो जाता है, वह है तेरी देह की **'भसम'**।

सच्चिदानन्द स्रष्टा की अदृश्यता, ठोस-घन-शिला की नाईं स्थिरता और छः दिव्य विभूतियों से विभूषित होना ईश्वर-धर्म है। जीवात्मा, जो मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेते हुए **'मैं'** शब्द में प्रकट हो कर दृश्यमान सृष्टि की निर्माण, पालन एवं संहार तीनों विधाओं का एकमात्र दृष्टा है; उसके भी यही धर्म हैं। मानव देह के धर्म, जो देह को धारित हैं, वे सब धर्मों के मानवों की देहों में समान हैं। मानव ही धर्म, कर्म, सम्बन्ध, देश, काल, पाप, पुण्य, शुभ, अशुभ के बन्धनों में बँधा है। अन्य प्राणी (जलचर, नभचर,

थलचर) इनसे परे हैं। मानवों के अलग-अलग धर्म हैं, लेकिन इस देह के अपने धर्मों में कोई भिन्नता नहीं है। जिन देहों और धर्म सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न धर्म हैं, वे सब मानव-देहें हैं। लोग धर्म परिवर्तन, धर्मान्तरण करते हैं, लेकिन मानव-देह स्वयं में मानव-देह ही रहती है। प्रश्न उठता है, मानव को ही धर्मों की आवश्यकता क्यों पड़ी और धर्म गुरुओं ने मानवों को अलग-अलग धर्मों में क्यों बाँधा? ***''धारयति इति धर्मः''*** जो धारण किया जाए, वह **'धर्म'** है। जिसने धारण किया उस मानव-देह के अपने धर्म वास्तविक (Real) हैं। वास्तव में (Really) मानव-देह के धर्म स्वयं में पृथक्-पृथक् नहीं हैं, लेकिन उनकी अनुभूति (Realisation) आवश्यक है। वस्तुतः (Really) वास्तविकता (Reality) की अनुभूति (Realisation) के लिए यथार्थ (Real) मानव-देह होनी अपेक्षित है। तभी वास्तव में (Really) उसकी वास्तविकता (Reality) की अनुभूति व दर्शन (Realisation) सम्भव है।

मानव-देह के अपने धर्म अनादि काल से अपरिवर्तनीय हैं और अनन्त तक रहेंगे। कोई धर्म, देह के उन धर्मों को बदल नहीं सकता। चाहे कोई धर्म देह पर रखा जाए, फिर भी देह के अपने धर्म वे ही रहते हैं। उदाहरणतः —प्रत्येक मानव-देह जिसका जन्म हुआ, माँ के गर्भ में लगभग नौ महीनों में निर्मित होती है। माँ के गर्भ में, गर्भस्थिति में गर्भावस्था धारण ही है। एक स्वस्थ शिशु देह का जन्म अक्सर नौ महीने बाद ही होता है। देह का दूसरा धर्म है, कि मानव-देह **'अपौरुष'** है, अर्थात् किसी पुरुष द्वारा निर्मित नहीं। इसका एक-एक रोम ईश्वरीय शक्ति द्वारा ही निर्मित है। कोई धर्म, देह के इस धर्म का विरोधी नहीं है। देह का तीसरा धर्म है, कि जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु अवश्य होगी। जीवित मानव-देह प्रत्येक पल परिवर्तित होती है। यह परिवर्तनशीलता हर देह का धर्म है। चाहे परिवर्तन दिखाई दे या न दे। साथ ही मृत्यु किसी भी आयु, अवस्था, स्थिति, परिस्थिति, स्थान में हो सकती है। देह की विभिन्न अवस्थाओं का एक क्रम है। गर्भावस्था के बाद ही जन्म व शैशवावस्था होगी। शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था, अतिवृद्धावस्था होगी। गर्भावस्था, शैशवावस्था से

पहले ही होगी, बाद में नहीं हो सकती, लेकिन मृतकावस्था किसी भी अवस्था से पहले, किसी भी अवस्था के बाद और किसी भी अवस्था के दौरान कभी भी हो सकती है। मृतकावस्था तक नाम-रूप की देह नाम-रूप में रहती है। लेकिन **'भस्मावस्था'** एक ही **'अवस्था'** है, जो स्वयं में नाम-रूप से परे है।

संसार में भिन्नताएँ, वैर, ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा आदि उन अवस्थाओं एवं स्थितियों में होता है, जो हम अन्य की भी देखते हैं और अपनी भी देखते हैं। एक और अन्य+एक=अनेक में **'एक'** समान है। **'मैं'** एक हूँ तो अनेक हैं, मैं एक **था** तो अनेक थे और मैं एक हूँगा, तो अनेक होंगे। देह की पाँचों (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था, और भस्मावस्था) अवस्थाओं में **'मैं'** एक भी नहीं होता, इसलिए मेरे लिए अनेक (अन्य एक) भी नहीं होते। इन पाँच अवस्थाओं में आत्मतत्त्व **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट नहीं होता। इसलिए कोई स्वयं को इन अवस्थाओं में नहीं देख सकता। हर व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न है और प्रत्येक की मानसिकता भिन्न-भिन्न है, लेकिन मानस एक ही है। मानव-देह के सभी भिन्न-भिन्न अंग एक ही प्राण-शक्ति से गतिमान होते हैं। हर व्यक्ति की अपनी मान्यताएँ, धारणाएँ एवं मानसिकता है। उस मानसिकता में हम स्वयं को अलग मानकर चलते हैं, कि सब मुझसे पृथक् हैं। हर व्यक्ति अपने लाभ, स्वार्थ, मान्यताओं को सर्वोपरि रखते हुए जगत व्यवहार करता है। महापुरुष **'मानस'** में लीला करते हैं। लीला में आलोचना, प्रत्यालोचना नहीं होती। **'रामचरितमानस'** में राम और रावण दोनों राम की लीला के पात्र हैं। राम के साथ राम का ही युद्ध होता है। परिपक्व स्थिति में सब भूमिकाएँ एक ही निर्देशक एवं कहानी लेखक की होती हैं।

मानव-देह की यह आलोचना कि यह नश्वर है, असद् है और पल-पल परिवर्तनशील है, स्वयं में मानव-देह के **'सद'** हैं। मानव-देह के **'सद्' 'अ लोचन'** अर्थात् दर्शन हैं। दरश+न अर्थात् **'दर्शन'** चर्म चक्षुओं से नहीं होता। दृश्यमान देह की पल-पल नूतनता और परिवर्तनशीलता स्वयं में देह का **'दर्शन'** है। परिवर्तनशीलता स्वयं में अ **'लोचना'** अर्थात् अदृश्य है,

इसलिए स्वयं में मानव-देह का **'दर्शन'** है। परिवर्तनशीलता का दर्शन नित्य एवं स्वयं में अपरिवर्तनीय व अदृश्य दृष्टा आत्मतत्त्व (अ**'लोचक'**) ही कर सकता है। नित-नूतन और पल-पल परिवर्तित होती देह अथवा **'रूप से'** के साथ नाम-रूप में तद्रूप सा जीव इसका दर्शन नहीं कर सकता। चर्म चक्षुओं से दिखाई देने वाली (दर्शित) देह गर्भित (Conceptual) है। जन्म-मृत्यु की सीमित अवधि में बँधी यह देह वास्तविक (Factual) देह नहीं है। इसकी जो अवस्थाएँ जीव को स्वयं अपनी दर्शित नहीं हैं, उनमें इस दर्शित देह का दर्शन अन्तर्हित है। कृपया एकाग्र करें, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

चर्म चक्षुओं को **'लोचन'** कहते हैं। **'अ'** लोचना अर्थात् जो चर्म चक्षुओं से अवलोकित न हो। उस अलौकिक परमात्मा की अलौकिकता की अनुभूति लौकिक चर्म चक्षुओं से सम्भव नहीं है। दर्शित देह की आलोचना की जाती है, कि पल-पल अस्थिर व परिवर्तित होने के कारण यह **'असद्'** है। पल-पल परिवर्तनशीलता हर दर्शित मानव-देह का **'सद्'** है। अतः यह **'सद्'** देखने में, देह की आलोचना (Criticism) होते हुए भी देह दर्शन है। आलोचना शब्द का **'अर्थ'** Criticism, जीव का भ्रम है। इसका शास्त्रीय **'अर्थ'** स्वयं में दर्शन है। आलोचना वस्तुतः अ**'लोचना'** है, अर्थात् जो चर्म चक्षुओं से दिखाई न दे। मानव ने देह की परिवर्तनशीलता नहीं, परिवर्तन देखा है। दस वर्ष बाद किसी से मिलने पर उस मानव का परिवर्तन देखने वाला मानव, देह रूप में खुद भी परिवर्तित हुआ होगा। लेकिन परिवर्तनशीलता को देखने वाला स्वयं में अपरिवर्तनीय होगा। अपरिवर्तनीय स्वरूप उसका अदृश्य आत्मतत्त्व है। इस आलोचना का आलोचक स्वयं में अ**'लोचक'** अर्थात् अदृश्य ज्ञान स्वरूप आत्मतत्त्व है। **'लोचन'** अर्थात् चर्म चक्षु दर्शित मानव-देह की परिवर्तनशीलता के आलोचक नहीं हो सकते। वे आलोचना (criticism) ही करेंगे, कि मानव देह **'असद्'** है, माया ठगनी है, नर्तकी है आदि-आदि।

आत्मज्ञान एवं आत्मानुभूति ही नहीं, ब्रह्मज्ञान एवं ब्रह्मानुभूति का

साधन भी मात्र मानव-देह है। देह के विषय में चिकित्सा वैज्ञानिक तथ्यों को वैज्ञानिक और विशेषज्ञ थोड़ा बहुत जानते हैं। लेकिन मानव-देह का अदृश्य एवं आध्यात्मिक आयाम समस्त दृश्यमान नित नूतन सृष्टि के रहस्यों को समेटे हुए है। ये रहस्य अद्भुत नहीं अद्भुतातीत हैं। देह से परे के गुणातीत, प्रपंचातीत, निर्गुणातीत, आकारातीत, निराकारातीत एवं अदृश्य चेतना और आनन्द तत्त्व की अनुभूति के लिए **'देह धर्म'** की अनुभूति होनी आवश्यक है। मानव-देह के भौतिक दर्शित आयामों में प्रभु की इस सर्वोत्कृष्ट सुकृति के **'देहधर्म'** दर्शित हैं, जिन्हें इस देह ने धारण किया हुआ है। हर देह अपने इन धर्मों को धारण किए हुए ही आती है और धारण किए हुए ही रहती है एवं देह के जाने के बाद भी वे देह-धर्म ज्यूँ के त्यूँ बने रहते हैं। Really Real देह की इन Realities को Realise करना सद्गुरु कृपा से ही सम्भव है। तू अहं त्यागकर उसके चरणों में श्रद्धा रख।

मानव-देह क्षण भंगुर है, लेकिन इसके धर्म अक्षुण्ण हैं। मानव-देह साधन के रूप में वह आधार है, जिसे लेकर साधक, साधना करता है और सिद्धि प्राप्त करता है। इसी का अवलम्बन लेकर साधक अपने निर्देशक सद्गुरु से व्यवहार करता है एवं अपनी जिज्ञासाओं को प्रकट करता है। सद्गुरु के प्रति उसकी निष्ठा, श्रद्धा, दृष्टि उसकी अपनी देह के **'देहधर्मों** की अनुभूति पर निर्भर है, जो ऊपर से धारण नहीं किए गए, बल्कि देह को धारित ही हैं। धारण किए गए धर्मों में धर्म परिवर्तन भी होते हैं। जो परिवर्तनीय है, वही परिवर्तित होता है। भिन्न-भिन्न धर्मों की मान्यताओं का आधार **'रूप से'** के साथ तद्रूप सी हुई नाम-रूप की देह की धारणा है, कि मैं देह हूँ। **'धर्म'** सन्देह को दूर करने और परस्पर समानता के लिए महापुरुषों द्वारा चलाए गए।

मानव-देह और मानव-जीवन पृथक्-पृथक् होते हुए भी परस्पर गुथ-मुथ गए। अवधि उसकी होती है, जिसका **'वध'** या नाश होना सुनिश्चित होता है, जो वध युक्त अर्थात् जन्म-मृत्यु युक्त है, उसकी अवधि है। मानव-देह की सुनिश्चित अवधि है, जिसका किसी को कोई ज्ञान न है

और न हो सकता है। इस अवधि को Life कहते हैं, जिसकी Insurance की-करवाई जाती है। **'जीवन'** का कोई अंग्रेज़ी अनुवाद ही नहीं है। मृत्यु Real है, इसे तू जान ले। यह Really Real है जानते हुए, मान ले। Really Real को ध्यान में आँखें मूँद कर देखना होगा, Visualisation (दर्शन) के दौरान यदि तेरी सद्‌गुरु में अति श्रद्धा होगी, तो तुझे इसकी Realisation (अनुभूति) होनी शुरू हो जाएगी और Reality तेरे सामने आ जाएगी। Realisation (अनुभूति या दर्शन) मात्र कृपा साध्य है। यही इस Royal मानव-देह की Royality (रायल्टी) है, जो जन्मों-जन्मान्तरों तक साथ रहती है। Realisation स्वयं में **'दर्शन'** है। धर्मी, अधर्मी, विधर्मी, कुधर्मी सभी की देहों के देह धर्म समान हैं। जीवन में देह या देहों से तू जो-जो चाहता है, उन चाहतों का अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। अध्यात्म में प्रविष्टि के लिए **जीवन से** चाहत **'एक'** ही है, कि देह को जो धारित हैं, वे धर्म जानते-मानते हुए अनुभूतिगम्य हो जाएँ।

ईश्वर (स्रष्टा) एक है, जीवात्मा (दृष्टा) एक है। पंच-महाभूतों की सृष्टि (जगत) एक है; वह सद् (factual) है। जो भिन्न-भिन्न हैं, वे दृष्टिकोण व धारणाएँ (Concepts) हैं। **'सद्'** का अधिग्रहण **'एक'** से होगा। जहाँ-जहाँ भिन्नता है, वह Conceptual है और जो अभिन्न है, वह factual है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था सबकी एक **सी** हैं और भस्मावस्था **एक ही** है। **'मैं'** गर्भ में हूँ, **'मैं'** शिशु हूँ, **'मैं'** सोया हुआ हूँ, **'मैं'** मरा हुआ हूँ, **'मैं'** भस्मी हूँ, कोई नहीं कह सकता। तू अपनी गर्भित (Conceptual) देह का एक **'सद्'** अधिगृहीत कर ले, कि इसने अन्ततः **'भस्मी'** बनना है। देह की जिन अवस्थाओं में तू **'मैं'** नहीं लगा सकता, यदि तू ध्यान में अवधारणा करते हुए **'मैं'** लगा ले, तो उन स्थितियों की तुझे अनुभूति हो जाएगी। तब तेरी देह Conceptual से Factual हो जाएगी। तेरा आत्मतत्त्व जाग्रत हो जाएगा।

स्थिति का स्थिति पर शासन है। जो स्थित है, वह शासन करता है। अस्थिर हमेशा शासित होता है। स्थिर व्यक्ति अपनी वाणी और संकल्प का

पक्का होता है। उस पर लोगों को विश्वास होता है। साधना **'स्थिरता'** के लिए की जाती है। दैहिक स्थिरता, मानसिक स्थिरता में अभ्यस्त होते-होते मानस स्थिति बदल जाती है। स्थिति मानस की है और अवस्था दैहिक है। किसी भी दैहिक अवस्था के कण-कण में **'स्थिति'** का होना अनिवार्य है। अवस्था की अवधारणा **'स्थिति'** से परे होकर की जाती है तभी उसकी अनुभूति होती है। निद्रावस्था और मृतकावस्था दैहिक हैं। **'निद्रा'** में **'निद्रामय'** तथा **'मृत्यु'** में **'मृत्युमय'** होने पर ही **'निद्रावस्था'** एवं **'मृतकावस्था'** होती है। निद्रावस्था के रोम-रोम में **'निद्रा'** एवं मृतकावस्था के रोम-रोम **'मृत्यु'** स्थिति होनी अनिवार्य है। इन अवस्थाओं पर ध्यान में एकाग्र करके स्थिर होते हुए जब इन अवस्थाओं का अधिग्रहण करना चाहते हैं, तो सद्गुरु कृपा से इन **'स्थितियों'** की अनुभूति जागृति एवं अमरत्व का हेतु बनती है।

मानस का वह स्वरूप जो स्वयं में निद्रा और मृत्यु से परे है, वही निद्रावस्था एवं मृतकावस्था का अवलोकन कर पाएगा। मृतकावस्था किसी भी अवस्था और स्थिति में हो सकती है। मृत्यु स्थिति और मृतकावस्था, निद्रा और निद्रावस्था सहित अन्य समस्त दैहिक अवस्थाओं को हमेशा के लिए हटा सकती है। मृत्यु स्थिति, निद्रा स्थिति में परिवर्तित नहीं हो सकती। **'भस्मावस्था'** स्वयं में नाम-रूप से परे की स्थिति है और स्थित्यातीत है। **'भस्मी'** बनने के बाद देह अपने समस्त देह धर्मों से परे होती हुई अपनी हदें पार कर लेती है। अवस्था की अवधारणा द्वारा अनुभूति **'स्थिति'** की है, जो मानस-प्रकरण में स्थिति से परे होकर होती है। अपनी नाम-रूप की देह को सुषुप्त एवं मृतक देखने वाला स्वयं में नाम-रूप से परे ही होगा। भस्मावस्था की स्थिति **'संहारित देह'** है और इसकी अनुभूति विरक्ति है।

जन्म-मृत्यु सब स्वप्न के हैं। इसलिए **'हैं नहीं'**, लेकिन आभासित हो रहे हैं। अवचेतना में जो तुझे मालूम है, तू उसे अवचेतना में ही पकड़ कर अवचेतना का लाभ उठा। हर स्वप्न निद्रावस्था में एक ही मानस से प्रकट होकर उसी में समा जाता है। कोई भी **'स्वप्न'** शुरू से अन्त तक निद्रावस्था

से प्रकट होता है और एक का होता है। एक का स्वप्न था, लेकिन स्वप्न में उसे स्वप्न नहीं लगा। उठकर जो स्वप्न का बयान करता है, उसे मालूम होता है, कि वह स्वप्न था। स्वप्न **से** उठे हुए और स्वप्न को स्वप्न मानकर सुनाने वाले व्यक्ति तथा स्वप्न **में** उठे हुए और स्वप्न की स्वप्नवत् प्रतीति न होने वाले व्यक्ति की **'मैं'** एक नहीं हो सकती। जबकि शब्द **'मैं'** एक ही है। दोनों व्यक्ति भी एक नहीं हो सकते। एक को स्वप्न सृष्टि में विचरते हुए मालूम नहीं था, कि यह स्वप्न **है**। मेरी समस्त भाग-दौड़ निरर्थ और व्यर्थ ही नहीं अनर्थ है। दूसरा कहीं गया आया नहीं, जिस बिस्तर पर रात्रि में थक कर सोया था, उसी से उठा हुआ स्वप्न वाले के साथ स्वप्न में घटी घटनाओं का वर्णन कर रहा है। आगे कौन सा स्वप्न आएगा, यह उसे मालूम नहीं है और उस स्वप्न की निरन्तरता की सम्भावना भी उसे नहीं है।

कौन सा स्वप्न आया **था,** यह उसे मालूम है। साथ ही उसे यह मालूम है, कि वह स्वप्न वाला व्यक्ति नहीं है, फिर भी ज्ञात-अज्ञात रूप से उस स्वप्न वाले के साथ हुई घटनाओं से मानसिक रूप से प्रभावित है। यद्यपि स्वप्न के लेने-देने से अब उसका सम्बन्ध नहीं है, लेकिन स्वप्न में सम्बन्ध था। अब जो समय, स्थान व स्थिति है, वह स्वप्न के समय, स्थान व स्थिति से पूर्णतः भिन्न है। यदि स्वप्न में विचरते व्यक्ति को यह मालूम हो जाए, कि यह सब **'है कुछ नहीं'** अर्थात् **'स्वप्न'** है, तो उसकी देह यथार्थ होती। स्वप्न का मानव पहले था नहीं, प्रकट हुआ और स्वप्न टूटते ही उस जगत सहित नहीं रहा। सपने के चोर, राजा, भिखारी, दानी, पापी, पुण्यी सब प्रकट हुए। स्वप्न समय, स्थान और सब स्थितियों सहित प्रकट हुआ। निद्रा से उठकर अब तू स्वप्न वाले का दर्शन कर। स्वप्न में तू **'एक'** प्रकट हुआ है, तो तेरे साथ तेरा इस समय का सारा जगत प्रकट हुआ है। इसी प्रकार रात्रि स्वप्न में तू एक प्रकट हुआ तो तुझ एक सहित तेरा उस समय का जगत प्रकट हुआ, जो इस समय की तेरी देह और जगत से बिल्कुल भिन्न था।

जब तक स्वप्न में तू एक है, तब तक सब कुछ रहेगा, उसमें अदला-बदली होती रहेगी। स्वप्न एक का ही है और स्वप्न में **'तू'** पहले

**'एक'** हुआ, फिर एक से अनेक हुआ। स्वप्न में तू किसी अन्य को गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था में देख सकता है, लेकिन खुद को इन अवस्थाओं में नहीं देख सकता। लेकिन एक तेरी वजह से अनेक हैं और जो हैं, वे कुछ नहीं हैं, क्योंकि तेरे एक के स्वप्न से निकलते ही वह समस्त सृष्टि **'कुछ नहीं'** रहेगी। इस सृष्टि में भी जो समय, स्थान, स्थिति है, वह वास्तव में नहीं हैं। निद्रा स्वयं में स्थिति है और निद्रावस्था में वह है, जो सोया हुआ है और उसे ज्ञान नहीं है, कि वह सोया हुआ है। जिसे स्वप्न में ज्ञान होगा, कि यह स्वप्न है, उसने अपनी निद्रा स्थिति का **'दर्शन'** किया है। उसकी निद्रा स्वयं में समाधि स्थिति है। उसके लिए जगत सब सपना है। वह स्वयं में एक ज्योति है, जहाँ से वह देह रूप में एक, अनेक सहित प्रकट हुआ है।

यदि तू स्वप्न दृष्टा होता, तो स्वप्न सृष्टि में तुझ सहित अन्य अनेक प्रयत्न करते दिखाई देते हुए भी तेरा अपना कोई प्रयत्न नहीं होता। स्वप्न में तूने मृतक, बुजुर्गों व पूर्वजों से लेना-देना कर लिया। देह रूप में जिस **'एक'** का तेरा स्वप्न है, वह **'एक'** भी तू नहीं है। जब तू वह **'एक'** नहीं रहेगा, तो **'कुछ नहीं'** रहेगा। एक के अप्रकट होते ही स्वप्न का सब कुछ अप्रकट हो जाएगा। स्वप्न वाली देह जगत सहित पहले थी नहीं और स्वप्न के टूटते ही जगत सहित रहेगी नहीं। अब जो **'है'** वह **'है सी'** है, क्योंकि **'है नहीं'।** इसकी अनुभूति तुझे जीते जी उसी देह के संहार (मृत्यु और चिता-दर्शन) के ध्यान द्वारा होगी। जो **'होगा ही'** (मृत्यु) अवचेतना में जान एवं मानकर **'है ही'** की अवधारणा करेगा, तो तेरी चेतना जाग्रत होने लगेगी। चेतना जाग्रत होने के साथ-साथ आनन्द भी अनाच्छादित हो जाएगा। यही तेरा कर्म है, जिसके लिए तुझे सद्गुरु का शरणागत होना होगा। अन्ततः जो **'होगा ही'** उसकी **'है ही'** के रूप में अवधारणा के नित्याध्यासन से तेरा **'हैत्व'** प्रकट हो जाएगा। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

हम जिसमें देह व जगत को देखते हैं, वह **'मैं'** जटिल्य के चार अंगों का सामूहिक प्रकाट्य है। इसमें एक रूप सा (देह) है, उस रूप से का एक

**'नाम'** है और वह उठा हुआ है; जिसे **'मैं'** शब्द प्रमाणित करता है। यही उसका 'होना' है। देह अवचेतना स्वप्न की है। इस देह Consciousness में तुझे जो-जो पता है अथवा नहीं पता है, वह इस Consciousness में तेरी Awareness है। दृश्यमान देह तेरा रूप है, जो क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। तेरा स्वरूप देहातीत और अदृश्य है। वह स्वरूप परिणाम है और उसका प्रमाण पदार्थ (भसम) रूप में दृश्यमान है। तू देह के साथ तन्मय हो गया, कि मैं देह हूँ। अब तू इसी देह के ऐसे पदार्थ के साथ **'मन्मय'** हो, जो देह से परे हो। तभी तुझे अपने स्वरूप की अनुभूति होगी। उस देहातीत पदार्थ **'भसम'** से तू जीते जी आत्मसात् हो। उस पदार्थ के साथ आत्मसात् होने के लिए विशुद्ध मानस होना आवश्यक है। इसके लिए तुझे जीते जी ध्यानस्थ होकर अपनी प्रपंचमय देह के संहार से गुज़रना होगा। जब तेरी देह मृत्योपरान्त चिताग्नि में **'दहन'** होते हुए **'देह न'** रह जाएगी अर्थात् पंच-महाभूतों में पूर्णतःविलय हो जाएगी, तब ध्यान में तेरा वह पदार्थ प्रकट होगा। ध्यान में एकाग्र होते हुए 'मैं देह हूँ' जटिल्य से अपनी **'मैं'** हटाकर इस देहातीत पदार्थ से जोड़ दे। आनन्द की अविरल एवं अखण्ड अनुभूति तेरी **'संहारित देह'** (परिणाम) के प्रमाण (भसम) से आत्मसातता में निहित है।

सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति, ऐश्वर्य एवं विरक्ति छः विभूतियों का स्वामी सच्चिदानंद ईश्वर स्वयं में अदृश्य है। उसकी आद्याशक्ति माँ **भगवती** उस अदृश्य को सौन्दर्यवान, ज्ञानवान, शक्तिवान, ख्यातिवान, ऐश्वर्यवान एवं वैराग्यवान बनाकर **'भगवान'** रूप में दृश्यमान करती है। वह सुकृति अपनी प्रकृति की सहायता से उसे अनेक प्रकार देती है। इस प्रकार ईश्वर की भगवत्ताएँ प्रकट होती हैं। एक शक्ति **'स्वरूप'** है और दूसरा शक्ति **'रूप'** है। **'स्वरूप'** अदृश्य है। शक्ति **'रूप'** धारण करती है, तो दृश्यमान होती है। शक्ति जो **'रूप'** है, वह **'अग्नि'** है। अग्नि ही एक ऐसा तत्त्व है, जो शक्ति रूप है। हाइड्रोइलैक्ट्रिक परियोजनाओं में **'जल'** को वेग से गिराकर और टर्बाइन द्वारा घुमाकर ऊर्जा पैदा की जाती है।

**'जल'** की शक्ति, **'वायु'** की शक्ति को अनुभव किया जा सकता है। **'अग्नि'** स्वयं में शक्ति है और **'शक्तिरूपा'** है। गर्मी या उष्णता इसका **'प्रारूप'** है। एक ही शक्ति या अग्नि नेत्रों में देखती है, नाक से सूँघती है, कानों से सुनती है, जिह्वा से चखती है और त्वचा से स्पर्श करती है। स्वयं में सहज जड़ पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश एक ही शक्ति से दशानन व अदृश्य रूप से गतिमान रहते हैं। यह **'एकमात्र'** शक्ति ईश्वर है। समस्त दृश्यमान सृष्टि के रोम-रोम में वह **'अग्निशक्ति'** समाहित है। उस अग्नि के स्वामी ईश्वर की पूजा **'हवन'** या **'यजन'** है।

मानव-देह एवं जीवन स्वयं में यज्ञ है। **'ह' 'व' 'न'** ही **'जी' 'व' 'न'** है। जिस प्रकार **'यजन'** का प्रसाद भस्मी है, उसी प्रकार **'जीवन'** का प्रसाद भी भस्मी है। हवन का वृहद् स्वरूप यज्ञ है। ईश्वर की सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति एवं विरक्ति छः विभूतियों को हवन में देखा जा सकता है। यज्ञकुण्ड में अग्नि की लपटों का नृत्य (सौन्दर्य), लपटों का प्रकाश (ज्ञान), विभिन्न पदार्थ (ऐश्वर्य) और धूना (ख्याति) दृश्यमान है। लेकिन लपटों की प्रचण्डता (शक्ति) और यज्ञ कुण्ड में निरन्तर बनती भस्मी (विरक्ति) दिखाई नहीं देती। हवन में जितने पदार्थ, समिधाएँ आदि डाली जाती हैं, वे डलती हुई दिखाई देती हैं, लेकिन जलते ही ढलने लगती हैं और अग्निमय हो जाती हैं। लपटों की प्रचण्डता व शक्ति अनुभव की जाती है, दिखाई नहीं देती। धूना दिखाई भी देता है और खुशबू रूप में महसूस भी किया जाता है। हवन के दौरान एक वस्तु दिखाई नहीं देती, वह है **'भस्मी'**।

संसार में अवास्तविक (Conceptual) वस्तुएँ असंख्य हैं। भस्मी ही एकमात्र वास्तविक (Factual) **'वस्तु'** है। हवन में डाली जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ धीरे-धीरे ढलती हुई इसी वास्तविक **'वस्तु'** (भस्मी) में परिणत होती जाती हैं। हवन की लपटें तब तक हैं, जब तक हवन में डाले जाने वाले भिन्न-भिन्न पदार्थों में ज्वलनशीलता है। विभिन्न वस्तुएँ जलती हुई ढलने लगती हैं और धीरे-धीरे अपनी भिन्नता खो देती हैं तथा अग्निशमन होते ही

एक ही वस्तु **'भस्मी'** में परिणत हो जाती हैं। वास्तविक वस्तु (भस्मी) में परिणत होते ही अग्निशमन होने लगता है और धूना भी शान्त हो जाता है।

यज्ञाग्नि जैसे ही प्रज्ज्वलित की जाती है, तुरन्त भस्मी भी बनने लगती है। भस्मी निरन्तर बनती एवं बढ़ती है। जैसे-जैसे विभिन्न पदार्थ डलते और ढलते हैं, वैसे-वैसे भस्मी बढ़ती है, परन्तु भस्मी न दिखाई देती है और न हम देखना चाहते हैं। जबकि **'भस्मी'** ही प्रसाद है। जलती हुई प्रचण्ड लपटों के दौरान, होते हुए भी भस्मी को देखा एवं निकाला नहीं जा सकता। मानव जीवन भी बिल्कुल ऐसा ही है। होश सम्भालते ही पढ़ाई, लिखाई, व्यापार आदि जीवन रूपी हवन की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। जिस प्रकार उत्सुकता होती है, कि हवन में क्या-क्या **'पड़ा'** है, उसी प्रकार जीवन में कोई क्या-क्या **'पढ़ा'** है इसका महत्व होता है। उसके बाद जीवन रूपी कुण्ड में जो-जो डाला जाता है, वह **'ढलना'** शुरू हो जाता है। ढलते-ढलते वह सब अग्निमय हो जाता है। खूबसूरती, तरह-तरह की जीवन-शैली, डिग्रियाँ, गाड़ियाँ, मकान, दुकान, पद, प्रतिष्ठा, नाम, यश, सेवक, सेविकाएँ, धन, दौलत, ज़मीन, जायदाद, प्रौपर्टी आदि की लपटों के आडम्बर में मानव खो जाता है। जीवन काल में निरन्तर होने वाली और बढ़ने वाली **'भस्मी'** को कोई नहीं देखना चाहता। **'भस्मी'** रूपी **'अर्थ'** जीवन रूपी हवन के साथ-साथ चलता एवं बढ़ता है और अन्ततः वही प्रसाद रूप में रह जाता है। लपटों के दौरान **'भस्मी'** हमने कभी नहीं देखी। अन्ततः जो जीवन का **'अर्थ'** एवं प्रसाद है, उससे विमुखता के कारण **'सब कुछ'** निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ बन जाता है। इसीलिए हमारा आनन्द खो जाता है।

सद्गुरु के सद् निर्देशन में होने वाले यज्ञ, हवन आदि पुरुषार्थ कर्म हमारी बुद्धि के संतुलन के लिए हैं, कि जीवन में सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति आदि की लपटें व धूना आदि हमेशा रहने वाला नहीं हैं। हम जो असंख्य पदार्थ एकत्रित करते हैं, वे तो डलते ही ढलने लगेंगे। जिनकी व्यवस्थाओं में हम आजीवन संघर्षरत रहते हैं, उनकी प्राप्ति होते ही वे अपना महत्त्व खो देते हैं। जैसे ही सब कुछ जीवन में डलता है, सब कुछ ढलने

लगता है और अग्निमय होते हुए धीरे-धीरे भस्मीमय हो जाता है। नीचे बनने और सदा बढ़ने वाली भस्मी अदृश्य रहती है। जिसकी हम जाने अनजाने उपेक्षा ही करते हैं। जीवन रूपी यह प्रसाद साथ चलता है और बढ़ता है। यदि जीवन काल में भस्मी रूपी प्रसाद का अधिग्रहण कर लिया जाए, तो तेरी वृद्धावस्था दर्शनीय होते हुए महा युवावस्था बन जाती। अपनी वृद्धावस्था का रसास्वादन करने के लिए तुझे साथ-साथ अपनी भस्मी देखनी होगी, जो निरन्तर बनती और बढ़ती है।

जीवन यज्ञमय तभी होगा, जब तू भस्मीमय होकर जीवन में उतरेगा। तेरी हर श्वास **'स्वाहा-स्वाहा'** हो और अभ्युन्तर हवन निरन्तर चलता रहे। यह **Fact** हमारे **Concept** (दृष्टिकोण) का उन्मूलन करके **'दृष्टि'** देता है। जीवन रूपी इस प्रसाद का अधिग्रहण करते ही मानव देह यथार्थ (यथा+अर्थ) होने लगती है। जन्म-मृत्यु, काल, कर्म एवं प्रारब्ध की मिथ्या धारणाएँ समाप्त होने लगती हैं। **'भस्मी'** सबकी एक ही है और सम्पूर्ण जीवन का प्रसाद है। जीवन से और जीवन में वही रसास्वादन कर सकता है, जिसने शीघ्रातिशीघ्र इस प्रसाद का अधिग्रहण कर लिया। जो **'बाद'** में होगा ही, उसका **'बाध'** करते हुए तू काल से अकाल और कालातीत होते हुए सीधे महाकाल से जुड़ जाएगा।

जीव को देह धारणा है और संत-महापुरुष जगत के कल्याण के लिए देह, धारण करते हैं। 'मैं देह हूँ' इस देह धारणा में प्रारब्ध, काल व कर्म तीन वशों से तू वशीभूत है। इस धारणा में देह तेरा धर्म बनी हुई है। अपनी देह की **'भस्मी'** की अवधारणा से यह वशीकरण निरस्त होने लगता है। इस अवधारणा से तुझे अनुभूति होने लगेगी, कि प्रारब्ध, काल एवं कर्म बन्धन वास्तव **'बन्धन से'** हैं। इस वास्तविक वस्तु (भस्मी) को जीते जी आत्मसात् करने में तेरी विरक्ति जाग्रत होने लगती है। **'संहारित देह'** स्थिति का प्रकाट्य हो जाता है। **'भस्मी'** उस देह की नहीं है, जिसकी तुझे धारणा हुई है, क्योंकि वह तो संहार के मानस प्रकरण द्वारा पंच-महाभूतों में विलीन हो गई। यह भस्मी तेरी अदृश्य व यथार्थ संहारित देह की है, जो निर्माण, पालन

एवं संहार तीनों से परे है। धारित देह का संहार हुआ, तो तेरी यथार्थ देह का **'उद्धार'** हुआ। तेरी वह अदृश्य संहारित देह जाग्रत हो गई। यह संहारित देह अर्थानुसार है, अतः यथार्थ है और पूर्ण प्रपंच से मुक्त है। **'भस्मी'** इसी यथार्थ देह का प्रमाण है। संहारित देह स्वयं में समस्त प्रपंच के विलय का **'परिणाम'** है। देह से देह की हदों का उल्लंघन करते हुए तुझे अनुभूति होगी, कि तू स्वयं में प्रपंच से परे है।

अपनी सबसे भिन्न देह की **'भस्मी'** की अवधारणा से एक अभिन्न **'संहारित देह'** के परिणाम की अनुभूति हुई। स्वयं में एक अभिन्न परिणाम का प्रमाण **'भस्मी'** भी अभिन्न है। संहारित देह, अदृश्य है और **'भस्मी'** दृश्यमान है। इसके बाद तुझे अनिर्वचनीय विश्राम की अनुभूति होगी और तू सहज समाधि में रहेगा। समाधि से उठने पर तेरे सम्मुख जो देह होगी, वह धारणा वाली नहीं **'धारित'** होगी। यह देह तुझ पर आधारित होगी। प्रमाण **'अर्थ'** है और यह देह यथार्थ है। अन्यार्थ देह के संहार से तू मानस प्रकरण में इस यथार्थ देह की अनुभूति करेगा, जो प्रमाण से प्रमाणित (भस्मी युक्त) विरक्तिमयी एवं परिणाम (संहारित देह) में रची-बसी है। यह चारों दिव्य बुद्धियों (विवेक, मेधा, प्रज्ञा एवं ऋतम्भरा) से भी युक्त हैं। तुझ पर आधारित यह देह **'साधन'** बनते हुए तेरे द्वारा धारित होगी। धारित देह स्वयं में संहारित है, अतः प्रमाणानुसार विरक्तिमयी है। सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति आदि विभूतियों से ओत-प्रोत है। यह देह जन्म-मृत्यु से परे, तेरे अवतरण का हेतु है। इस दिव्य देह में तू अवतरित हो लीला करेगा।

***''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''***

**(7 जुलाई से 22 अक्टूबर 2012)**

# संहार (स्थिति)

## (भाग – 12)

**पा**रब्रह्म परमेश्वर ब्रह्मात्मा स्वयं में ठोस-घन-शिला है। वह सच्चिदानंद सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति एवं विरक्ति छः दिव्य विभूतियों का स्रोत है। अपनी आद्याशक्ति की प्रेरणा (एकोऽहम् बहुस्याम्) से ब्रह्मात्मा अदृश्य में ही अपनी दो विधाओं (परमात्मा एवं जीवात्मा) में **अविभाजित-विभाजित** होता है। निश्छल और निश्चल में अदृश्य में ही हलचल शुरू हो जाती है। अनादि से अनन्त महाकाल में कल, आज और कल की कल-कल की हलचल से, अकाल में काल की लहरें, तरंगे व चिंगारियाँ अदृश्य रूप से उठनी शुरू हो जाती हैं। जो आज, कल और कल-कल (काल) से परे है, वह **'अकाल'** है। **'महाकाल'** स्वयं में **'अकाल'** से भी परे तथा काल एवं अकाल दोनों का स्वामी है। महा+काल=महाकाल, महा+ अकाल=महाकाल, काल+अकाल=कालाकाल का अस्तित्व **'महाकाल'** है।

परमात्मा **'स्रष्टा'** है और जीवात्मा दृष्टा है। सच्चिदानंद का **'सद्'** सम्पूर्ण सृष्टि में कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के रूपों में प्रकट होता है तथा चेतना और आनन्द अदृश्य रहते हैं। इस प्रकाट्य की निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ हैं। वह ब्रह्मा बन कर निर्माण करता है, विष्णु बन कर पालन करता है और शंकर रूप में संहार करता है। उसके द्वारा निर्मित, पालित एवं संहारित अनादि से अनन्त तक सम्पूर्ण सृष्टि का रसास्वादन जीवात्मा, **'दृष्टा'** रूप में करता है। जीवात्मा, परमात्मा का महा प्रशंसक एवं उसके द्वारा प्रकट सृष्टि के समस्त रहस्यों को जानता है, लेकिन वह प्रकट सृष्टि की किसी भी विधा का कर्ता नहीं है। इसलिए उसमें आगे प्रकट होने

वाले दृश्यों के प्रति अति कौतूहल भरी जिज्ञासा है। परमात्मा सृष्टि को रच कर प्रभावित नहीं होता और जीवात्मा इसे देखकर प्रभावित नहीं होता। दोनों निर्लेप एवं निर्विशेष हैं।

ब्रह्मात्मा स्वयं में **अत्यन्त शक्ति** (विरक्ति) है। अत्यन्त विरक्ति **'शिव'** का स्वरूप है। इस सम्पूर्ण सृष्टि की संरचना के लिए अत्यन्त शक्ति स्वतः, स्वयं में, स्वान्तः सुखाय क्रीड़ा हेतु **'अति शक्ति'** और **'महाशक्ति'** दो अदृश्य स्वरूप धारण करती है। अतिशक्ति विरक्ति स्वयं परमात्मा है और महाशक्ति पंच प्राणों से आप्लावित एक अदृश्य ज्योति पुंज है। अतिशक्ति और महाशक्ति में क्रीड़ा होती है। उस महाशक्ति की पंच प्राणमयी विधाएँ, जब एक अतिशक्ति के साथ क्रीड़ा करती हैं, तो प्राण-प्राण से **'अग्नि'**, अपान प्राण से **'वायु'**, उदान प्राण से **'जल'**, समान प्राण से **'पृथ्वी'** और व्यान प्राण से **'आकाश'**–इन पंच-महाभूतों का प्रकाट्य होता है। ये पंच-महाभूत स्वयं में निराकार हैं और स्वतः दशानन गतिशील हैं। इनकी गतियाँ स्वयं में अदृश्य हैं। इन गतियों की अदृश्यता को शिव ने अपनी अतिशक्ति रूप में अपने अधीन रखा है। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

अतिशक्ति से क्रीड़ा के एवज में पंच प्राण, निराकार पंच-महाभूतों में प्रकट हुए। निराकार से, निराकार में सम्पूर्ण चराचर साकार प्राणी जगत का निर्माण, निर्मित का पालन और अन्ततः निर्मित व पालित का पुनर्निर्माण के लिए संहार होता है। इस प्रकार प्राण शक्ति (पंच प्राणों की अदृश्य ज्योति) का प्रकाट्य स्वतः गति में होता है और गतियाँ अदृश्य रहती हैं। ये प्राण क्या हैं? **'प्राण'** स्वयं में शक्ति है। जितना भी दृश्यमान चराचर जगत है, वह प्राण का महासागर है। मानवों सहित समस्त प्राणी (जलचर, नभचर, थलचर आदि) उसके बुलबुले की भाँति हैं। अतिशक्ति विरक्ति की पंच-प्राणों से हुई क्रीड़ा के फलस्वरूप पंच-महाभूतों का प्रकाट्य होता है। पंच-महाभूत पंच-प्राणों से प्रकट हुए हैं, लेकिन ये स्वयं में सहज जड़ हैं। चिकित्सक प्राण बचाने के लिए जीवन रक्षक औषधियों का प्रयोग करते हैं, लेकिन मृत्यु हो जाए, तो सभी जीवन रक्षक प्रयोग निष्फल हो जाते हैं। ये जीवन बचाने

वाली औषधियाँ भी प्राण शक्ति से फलीभूत होती हैं। योगी वर्षों तक जल के भीतर या भूमि के गर्भ में प्राणों का आयाम करके ही तप करते हैं।

तुझ **'एक'** में प्राण हैं, तो सबमें प्राण हैं। नदियों का प्रवाह तेरी प्राण शक्ति से है। पंच महाभूतों में दृश्यमान सृष्टि में सब कुछ **'है सा है।'** अतः ये पंच-महाभूत भी **'हैं से हैं'।** समस्त दृश्यमान जगत **'चिदाभास'** (चेतना का आभास) है। सब कुछ ईश्वर का **'हैत्व'** है। ईश्वर स्वयं अस्तित्व है, **'अस्ति'** अर्थात् **'है'।** उस **'है'** का **'हैत्व'** दृश्यमान है और जो वह वस्तुतः **'है'** वह अदृश्य है। ***'एक ज्योति से सब जग प्रकट्या'।*** वस्तुतः जो मानवीय बुद्धि से परे की बातें थीं, उन्हें हमने अहंवश अति बुद्धिवादिता में पौराणिक मिथक कहते हुए उपेक्षित ही किया है। मानव-देह को जीवित रखने एवं उसके संचालन के लिए देह के भीतर विभिन्न अंगों-प्रत्यंगों की असंख्य व अगणित गतियाँ हमारे बिना ध्यान दिए अदृश्य रूप से चलती हैं। इन्हीं के फलस्वरूप देह की बाहरी क्रियाएँ होती दिखाई देती हैं। उन अंगों को उन क्रियाओं का कोई ज्ञान नहीं है। इस प्रकार देह के बाहर जगत में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश पाँचों तत्त्वों की दशानन गतियाँ भी अदृश्य रहती हैं। मानव-देह में **'मैं'** जटिल्य के प्रकट होने पर **'जीव'** अपनी शक्ति से दैवीय क्रियाओं में मस्तिष्क के जरिए हस्तक्षेप करने लगा।

प्राणायाम आत्मा का दण्ड है। योगी अपने प्राणों का नियन्त्रण व प्रसार करता है। इसकी पहुँच न केवल अंतरिक्ष बल्कि उसके बाहर तक होती है। जो **'स्व'** और **'सर्व'** को मिला ले, उसे प्राणायाम कहते हैं। योगी का श्राप अथवा वरदान इसी प्रकार कार्यान्वित होता हुआ प्रकट होता है। प्राणों के नियन्त्रण के फलस्वरूप जड़ चेतन समस्त चराचर जगत उस विरक्त योगी के भावानुसार स्थूल रूप से प्रकट होता है। तुझ सहित सम्पूर्ण जगत का प्राण भिन्न-भिन्न देहों में नहीं अपितु देहातीत है। वस्तुतः यह प्राण शक्ति तेरे भीतर नहीं है, तू जगत सहित उस प्राण शक्ति से गतिशील है। मस्तिष्क से जब हम स्वयं काम लेना शुरू करते हैं, तो **बुद्धि** साधारण सोच बन जाती है (Brain starts draining)। मानव के समस्त रोग, दोष, दुःख,

सुख, जन्म, मृत्यु जरा, मल, विक्षेप, वैर, वैमनस्य, मानसिक तनाव, ईर्ष्या, द्वेष आदि जितनी भी पीड़ाएँ हैं, उनका कारण मानव का, मस्तिष्क की स्वतः होती दैवीय क्रियाओं में हस्तक्षेप ही है। मस्तिष्क भी दैवीय सदुपयोग के लिए है।

मानव देहावधि के दो छोर (जन्म और मृत्यु) किसी मानव के हाथ में नहीं हैं। अतः मध्य भी उसके विचार से नहीं चलता। वही होता है जो मंज़ूरे खुदा होता है। तुझे विचार यह करना है, कि जो तेरे सम्मुख हो रहा है, वही और वैसा ही होना था। तू सोच-समझ कर विचार करके चलना चाहता है। वस्तुतः जो होना होता है, तद्नुसार ही तू विचार करता है। तेरे विचार के अनुसार होना नहीं है, बल्कि होने के अनुसार तेरी विचार श्रंखला चलती है। तू अपने विचार के अनुसार होना मानेगा, तो वह **'होनी'** अर्थहीन ही नहीं निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ होती हुई, तेरे प्रारब्ध-बन्धन को पुष्ट करेगी। वह विचार नहीं, **'अविचार'** होगा और यह **'अविचार'** ही **'व्यभिचार'** है।

जीवन के शुभारम्भ में तू अबोध था, तेरे लिए **जैसा होना था, हो गया।** जो हुआ, उससे तू रंचमात्र भी प्रभावित नहीं हुआ। मध्य में जब तू **बोधमय** हुआ, तू विचार कर, कि इसी प्रकार तेरा अन्त भी तेरे विचार से नहीं होगा। जिसने अपने संहार (मृत्यु, चिता और भस्मी) को उपेक्षित किया, वह काल, कर्म और प्रारब्ध के बन्धनों में वशीकृत ही जन्मता-मरता रहता है। इस वशीकरण में तू सृष्टि को अपने विचार से चलता हुआ मान रहा है। तेरी हृदय की हर धड़कन, देह की प्रत्येक गति-अगति, वाक्-अवाक्, चलन-प्रचलन-अचलन सब कुछ प्रभु की इच्छा से ही होता है। तू यह जानकर एवं मानकर प्रभु का पूर्णतः शरणागत हो जा। अपने प्रत्येक ख्याल, भाव, विचार, कृत्य-अकृत्य को तू प्रभु चरणों में समर्पित कर। जहाँ किसी भी होने का **'श्रेय'** तू प्रभु को देता है, उस **'निःश्रेयस' में ही आनन्द है।** सद्गुरु **'देह'** को देह की **'हदें'** तोड़ने के लिए सदुपयोग करता है।

'मैं देह हूँ' भ्रम में **'देह'** से मैंने **'हदें'** बना लीं और फँस गया। मेरी **'दृष्टि'** और **'दृष्टिकोण'** संकीर्ण व सीमित हो गया। मैं यह जान जाऊँ, कि

मैं देह नहीं हूँ, इसलिए मुझे मानव-देह मिली है। मुझे मानव-देह देने में प्रभु का यही अर्थ है। उस **'अर्थ'** को **'मैं'** देह से ही जान सकता हूँ। पशु जगत यह नहीं जान सकता, कि पशु रूप में वह क्यों है? देह सहित जगत में पल-पल होते सतत् परिवर्तन को रोक पाना किसी के वश में नहीं है। यह परिवर्तनशीलता दशानन है और इसका सहज ही पता नहीं चलता। यह मानव-देह ईश्वर प्रदत्त उपहार नहीं है, देने वाला इसे कभी भी ले जाएगा। देने वाले का अपना **'अर्थ'** है, जिसे जानना बहुत दुष्कर कार्य है।

जीवन में होश सम्भालते ही हम मानव भूल जाते हैं, कि हमारी देह परमात्मा ने दी है, हमारी नहीं है। उस देह द्वारा जो कुछ प्राप्त हुआ उसके लिए मान लेते हैं, कि हमने उपलब्ध किया है। इसे **'अहंकार'** कहते हैं। यह Possession हमारे लिए Posion बन जाती है। हमारा **'अधिकार'** खो जाता है। अधिकार के लिए तहेदिल से देह सहित समस्त जगत का प्रभु के चरणों में समर्पण परमावश्यक है। तभी दुर्लभ पदार्थों का भोग सुलभ होता है। हमारी देह एक दिन थी नहीं और एक दिन रहेगी नहीं। कब तक है और जब तक है, क्यों है? यह मालूम नहीं है। जो मैं कर-करवा रहा हूँ, वह सब मेरे से पहले भी हो रहा था तथा मेरे बाद भी होगा। यह भी मैं जानता हूँ। तब मैं क्यों हूँ? यद्यपि कोई भी मानव यह नहीं जान सकता, परन्तु उसे जानने की इच्छा अवश्य होनी चाहिए। क्योंकि यही जानने के लिए मानव-देह मिली है। यह जिज्ञासा, कि 'मैं' हूँ तो क्यों हूँ? जब चिन्तन बनकर रातों की नींद उड़ा देती है, तो चेतना का स्तर बढ़ने लगता है।

चिन्ता और चिन्तन दोनों में रातों की नींद उड़ जाती है। **'चिन्ता से जड़ता बढ़ती है।** व्यक्ति नशा करने के लिए मादक द्रव्यों को सेवन करने लगता है। **'चिन्तन'** से चेतना बढ़ती है। योगी और भोगी दोनों की रातें जाग-जाग कर बीतती हैं। **भोगी पाकर खोता है और योगी खोकर पाता है।** देह को प्रभु समर्पित करके जो कुछ होता है, वह आनन्द में ही होता है। मानव इस देहाकृति का सदुपयोग कर सके या न कर सके, उसे आत्मविश्लेषण के लिए मालूम होना चाहिए, कि देह का उपयोग, दुरुपयोग

और सदुपयोग क्या है? स्वाध्याय और अपने स्वयं के विश्लेषण के लिए यह अनिवार्य है। हम मानव इस देहाकृति को अपनी मानकर चलते हैं। यही मानव के समस्त दुःखों, भय, त्रास, विक्षेप, काल, कर्म एवं प्रारब्ध-बन्धन का मूल कारण है। वहाँ सदुपयोग तो क्या उपयोग भी नहीं होता और जो कुछ होता है, दुरुपयोग ही होता है।

अन्ततः तय है, कि मृत्यु किसी भी क्षण, स्थान, स्थिति, परिस्थिति में हो सकती है। तेरे हाथ में कुछ नहीं है। जिसका प्रारम्भ (जन्म), प्रारम्भारम्भ (गर्भाधान) अन्त (मृत्यु) एवं अन्तान्त (भस्मी) **'तय'** है उसका मध्य भी **'तय'** है। तू अपनी बुद्धि से **'सोच'** कर इन बातों पर विचार कर, कि **जो (यत)–जो (यत)** होता है, वह प्रभु द्वारा **'तय'** किया हुआ होता है, इसलिए होता है। जिसने **'दृश्य'** तय किया है, वह स्वयं अदृश्य है। इन विचारों के नित्याध्यासन से तू जान लेगा और मान लेगा, कि सब कुछ **'तय'** है। अन्ततः तय है, कि तेरी देह **'भस्मी'** में रूपान्तरित हो जाएगी। तेरी मृत्यु और उसके बाद जो (यत)–जो (यत) होना है, वह भी निश्चित (तय) है। अपनी मृत्यु का उल्लंघन (मृत्योर्लंघन) करते हुए साधक देहावधि के दौरान देहातीत हो जाता है। जीवन में प्रविष्टि के लिए जीते जी मृत्योर्लंघन आवश्यक है। देहावधि के दौरान अपनी मृत्यु, चिता और भस्मी (संहार के तीन आयाम) की अवधारणा के बाद मानव-देह यथार्थ हो जाती है और अपनी समस्त सीमाओं को भूल जाती है। कृपया एकाग्र करिए।

तेरी मृत्यु कब, कैसे, किस स्थान व स्थिति में होगी, **'तय'** है, लेकिन तू नहीं जान सकता। तेरे पास उस समय कौन-कौन होगा, कौन तुझे उठाएगा और तुझे कौन शमशान ले जाएगा, कौन चिताग्नि देगा, तुझे नहीं पता। लेकिन तू जानता है, कि अन्ततः **'भस्मी'** ही बनेगी, वह **'तय'** है। अन्ततः जो **तय** है, वह **'भस्मी'** ही है। जब प्रारम्भ और अन्त जो **'तय'** है, वह तेरी सोच से नहीं हुआ, न होगा, तो तू सोच, मध्य में तुझे सोच क्यों मिली है? अन्ततः तेरी सोच चली जाएगी और जन्म के समय तेरी सोच थी ही नहीं। मध्य में तुझे सोच, यह विचार एवं अनुभूति करने के लिए मिली है, कि मध्य में भी सब

कुछ **'तय'** है। तूने वे भविष्य ढोए हुए हैं, जो **'तय'** नहीं हैं। तेरा जो भविष्य निश्चित व **'तय'** है, उस **'तय'** की **'तह'** (गहराई) में जा, तो देह पर तेरे अधिपत्य व अध्यास की गहराई कम होने लगेगी। तद्नुसार उसी अनुपात में अनिश्चित भविष्यों के लिए तेरी **'दौड़'** भी कम होने लगेगी। संसार का **'सार'** पकड़ने के लिए तू ध्यान द्वारा अपनी देह के **'संहार'** का आश्रय ले। संसार का **'सार'** तेरे पल्ले पड़ जाएगा।

मानव स्वयं में न स्रष्टा है, न दृष्टा है। दृष्टा आत्मतत्त्व सन्देहवश, कि देह मेरी है, भाव में **'सार'** से वंचित हो गया। **'संसार'** से **'सार'** के अधिग्रहण के लिए तुझे जीते जी समाधिस्थ होकर अपनी देह के **'संहार'** से आत्मसात् होना होगा। जीते जी अपनी देह का **'संहार'** दर्शन तुझे संसार का **'सार'** दे देगा। क्योंकि अपनी देह के **'संहार-दर्शन'** से तेरा सन्देह (मैं देह हूँ और देह मेरी है) जाता रहेगा। तेरी **'मैं'** तेरी देह की भस्मी से आत्मसातता में अपना विशुद्ध स्वरूप पा लेगी। देहाधिपत्य का रूपान्तरण भस्माधिपत्य और देहाध्यास का रूपान्तरण भस्माध्यास में हो जाएगा। अपनी विभूत्यातीत विभूति **'विरक्ति'** (जो समस्त विभूतियों का स्रोत है) को पाकर देह व जगत के **'सार'** से तू विभूषित हो जाएगा।

अन्ततः सब, चाहे राजा हों, चाहे भिखारी **'एक'** भस्मी (पदार्थ) में ही रूपान्तरित हो जाते हैं। यह प्रभु द्वारा **'तय'** है। जब तू स्वयं अपने से पूछने लगता है, तो तुझे शनैः शनैः अनिर्वचनीय विश्राम मिलने लगता है। तू जान एवं मान लेता है, कि मध्य में भी सब कुछ पहले भी प्रभु इच्छा से ही हो रहा था और आगे भी होगा। जो **'होना'** है, वही होगा। प्रभु ने तेरा **'होना'** और **'होनी'** (प्रारब्ध) सब कुछ अपने हाथ में रखा है। तू सहर्ष इसे स्वीकार कर ले। प्रारब्धवश हर **'होनी'** को तू ईश्वर चरणों में समर्पित करते हुए प्रारब्ध, काल एवं कर्म-बन्धन को सहर्ष स्वीकार कर ले। इनकी सहर्ष स्वीकृति से तेरी बुद्धि बोधमयी **'सद्'** बुद्धि हो जाएगी। तेरा **'होना'** तेरे अपने हस्तक्षेप से **'होनी'** बनते हुए तुझे काल, कर्म एवं प्रारब्धवश ही रखता है। सद्गुरु कृपा से, तुझे तेरे **'शव'** का चिन्तन, इस **'वशता'** से मुक्त कर देगा।

ध्यान में प्रभु की **'संहार'** नामक विधा का आश्रय ले और अपनी मृत्यु एवं चिता का दर्शन कर। **'शिव'** की कृपा से **'वशी'** करण हटना शुरू हो जाएगा।

**'मैं'** शब्द के प्रकाटय के लिए एक मानव-देह का **'अवचेतना में'** उठा हुआ **'होना'** अति आवश्यक है। अन्यथा आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** प्रकट नहीं हो सकता। मानव-देह की जिन स्थितियों में शब्द **'मैं'** प्रकट नहीं होता, वे देह की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थितियाँ हैं और इनकी अवस्थाएँ **'जड़ता'** की हैं। **स्थिति मानसिक है और अदृश्य है तथा दैहिक अवस्थाएँ दृश्यमान होती हैं।** गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था स्वयं में जड़ता इसलिए हैं, क्योंकि **'मैं'** अपनी इन स्थितियों और अवस्थाओं को स्वयं देख नहीं सकता, लेकिन जगत में अन्य लोगों को इन अवस्थाओं में देख सकता है। **'जड़ता'** की अनुभूति स्वयं में **'चेतना'** है और महाजड़ता की अनुभूति महाचेतना है। उपरोक्त पाँच अवस्थाओं में **'मैं'** प्रकट नहीं होती और तुझे देह सहित जगत का कोई आभास नहीं होता, साथ ही देह व जगत का आभास न होने का आभास भी नहीं रहता। इन अवस्थाओं को **'मैं'** अवचेतना में प्रकट होकर अन्य में देख सकता है। इनमें प्रथम चार अवस्थाएँ देह **'की'** और देह **'में'** हैं, लेकिन भस्मावस्था देहातीत है। निद्रा स्थिति में तेरी एक ऐसी अवस्था प्रकट हुई, कि जीवित होते हुए और देह व जगत के होते हुए, तेरा देह व जगत से पिण्ड छूटा हुआ था। लेकिन जब मानसिक (स्थिति) और शारीरिक (अवस्था) रूप से तेरा पिण्ड छूटा हुआ था, तूने अपनी उस स्थिति और अवस्था का आभास नहीं किया। निद्रावस्था में प्रभु ने तेरी एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी, कि जिस देह व जगत से तू थका है, उसका आभास ही समाप्त कर दिया। निद्रा से उठते ही देह व जगत के लिए तू वहीं से शुरू हो जाता है, जहाँ से निद्रा से पहले थक-हार कर सोया था।

तू जब उठा हुआ होता है, तो अवचेतना में ही होता है और देह व जगत सम्बन्धी विविध विधाओं के लिए असंख्य प्रश्नों व तनावों से ग्रसित रहता है। निद्रा में ईर्ष्या-द्वेष, रोग-दोष, भय-त्रास, मल-विक्षेप, वैर-वैमनस्य के साथ

समस्त सुख भी लुप्त हो जाते हैं। जन्म-मृत्यु, कर्म-बन्धन, काल-बन्धन, प्रारब्ध-बन्धन का आभास नहीं रहता और आभास न होने का आभास भी नहीं रहता। निद्रा स्थिति है और जो सोया हुआ है, वह सुषुप्तावस्था में है। जब कोई व्यक्ति निद्रा स्थिति में सुषुप्तावस्था में होता है, तब **'स्वप्न'** आता है। स्वप्न में किसी को यह ज्ञान नहीं होता, कि मैं स्वप्न में हूँ, क्योंकि निद्रा आने पर सुषुप्तावस्था में यह ज्ञान नहीं होता, कि मैं सोया हुआ हूँ। इसलिए स्वप्न में भी यह ज्ञान नहीं होता, कि मैं स्वप्न में हूँ। यदि यह मालूम हो जाए, कि मैं निद्रा में हूँ, तो यह मालूम हो जाएगा, कि मैं स्वप्न में हूँ। स्वप्न-सृष्टि मेरे मानस की है, जिसमें मेरी एक देह सहित जगत होता है। **'मैं'** जटिल्य देह अवचेतना में चेतना के एक विशेष न्यून स्तर पर स्वप्न सृष्टि बनकर दृश्यमान हो जाता है, जिसमें मेरा एक का होना बहुत आवश्यक है।

**'मैं'** जटिल्य जब सुषुप्त अथवा अप्रकट होता है, तो वह एक का होता है और जब प्रकट होता है, **'देह सहित जगत सहित'** दृश्यमान होता है। एक व्यक्ति सोया तो **'मैं'** जटिल्य अप्रकट हो गया। उसमें वह व्यक्ति अपने जगत सहित सो जाता है। वह जीवित होता है और सोया हुआ होता है। उसे स्वप्न आता है, स्वप्न में वह भाग-दौड़ रहा होता है। उसके साथ उसका जगत भी होता है, जिसके साथ वह व्यवहार करता है। उसमें कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो मर चुके होते हैं अथवा कभी-कभी कुछ जीवित लोगों को वह स्वप्न में मरा हुआ भी देख लेता है। स्वप्न सृष्टि में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और समस्त प्राणी जगत होता है, लेकिन सबके साथ मेरा **'एक'** का होना आवश्यक है। शेष सब आते जाते रहते हैं। स्थान, मित्र, शत्रु, सम्बन्धी, लाभ, हानि, सुख, दुःख सब बदलते रहते हैं। मैं नहीं हूँगा, तो स्वप्न सृष्टि न प्रकट होगी और न चलेगी।

सम्पूर्ण स्वप्न सृष्टि का एक दृष्टा उठा हुआ **'मैं'** जटिल्य है। यह जीव-सृष्टि एक ही जीव की है और यह एक जीव भी स्वयं में नहीं है। प्रश्न उठता है, कि इतने प्राणी जगत में प्राण कहाँ से आए? साथ ही एक देह सो रही है तथा एक स्वप्न में जगत सहित है। दोनों में प्राण कहाँ से

आए? उस स्वप्न सृष्टि में जो मृतक थे, वे भी प्राण सहित प्रकट हो गए। वस्तुतः स्वप्न सृष्टि के रूप में तेरा अदृश्य मानस दृश्यमान होते हुए प्रकट होता है। एक अदृश्य मानस ने एक दृश्यमान व्यक्ति का आश्रय लिया और उस व्यक्ति से **'व्यक्ति सहित जगत'** प्रकट हुआ। तेरे एक के होने से तेरे एक सहित जगत है। जिसमें **'तू'** होगा, तो जगत होगा। इसलिए तू अहम्, आवाम अथवा वयम् नहीं, स्वयं में **'स्वयं'** है। **'सब'** (**'वयम्'**) जिसकी वजह से हैं, वह **'स्वयं'** है। वह समस्त कारणों का कारण तेरा आनन्द स्वरूप है। जितना भी समस्त दृश्यमान है, वह **'है'** (परमात्मा) का **'हैत्व'** है।

यहाँ न कोई जन्म लेता है, न मरता है। एक मानस वैसा का वैसा और वहीं का वहीं विभिन्न रूपों में खेलता है, जिससे बनी-बनाई सृष्टि प्रकट होती है और लीन होती है। तेरे मानस की स्थिति और उस समय अवचेतना में चेतना के स्तर के अनुसार तेरे सम्मुख तेरी देह सहित जगत खड़ा होता है। तेरी पत्नी बनती है, जब तू पति होता है। तेरा बाप बनता है, तो तू बेटा होता है। जब तू बच्चों को देखता है, तो तू पिता होता है। जब तू शत्रु को देखता है, तो शत्रु और मित्र बनाता है, तो मित्र होता है। स्वप्न का वर्णन करते हुए कोई सुषुप्ति का ज़िक्र तक नहीं करता। निद्रा दर्शन के बाद जो कुछ तू देखेगा, वह स्वप्न ही होगा, लेकिन ध्यान रहे, स्वप्न सृष्टि का निर्माता, पालनकर्ता और संहारकर्ता तू नहीं है। जब तू नशे आदि पदार्थों द्वारा और नींद की गोलियाँ खाकर सोना चाहता है, तो तू जर्जर होता रहता है। क्योंकि वह निद्रा नहीं होती, **'निद्रा सी'** होती है।

मेरी देह सहित जगत वस्तुतः एक मानस से प्रकट होता है। किसी मानस में हम बुर्जुगों की चर्चा करते हैं, किसी में हम बच्चों, युवाओं का जिक्र करते हैं, किसी में मित्रों की तो किसी मानस में शत्रुओं की चर्चा करते हैं। **'मैं'** जटिल्य के प्रकट होने पर **'मैं'** निद्रा में उठता हूँ (स्वप्न) अथवा निद्रा से उठता हूँ (तथाकथित जागृति), दोनों का आधार निद्रा है। आयु, वायु और युवा शास्त्रीय शब्द हैं। युवावस्था दैहिक नहीं मानसिक है और इसका रहस्य प्राण वायु अथवा प्राण शक्ति में छिपा है। प्राण वायु के लिए अंग्रेज़ी में

कोई शब्द नहीं है। प्राण शक्ति का क्षय ही आयु की क्षीणता है, यौवन की समाप्ति है। वस्तुतः आयु दैहिक नहीं, मानसिक है। प्राण वायु हवा नहीं, प्राण शक्ति की द्योतक है। जब मानव अपनी देह के अर्थ या लक्ष्य से भटक जाता है, तो प्राण शक्ति नष्ट होने लगती है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

जीवन असंख्य क्षणिक, क्षण भंगुर एवं क्षण-क्षण क्षरित होते क्षणों का पुंज है। किसी मानव-देह का जन्म उसके नाम को साथ लिए नहीं होता। **'नाम'** जन्म के बाद किसी अन्य द्वारा रखा जाता है। फिर एक क्षणिक क्षण आता है, जब अवचेतना में चेतना के विशिष्ट स्तर पर शब्द **'मैं'** प्रकट होता है और तू उस नाम को स्वीकार करता है। **उस क्षण का जो रूप होता है, वह भी क्षणिक क्षण की तरह क्षणिक होता है। क्योंकि तेरा 'रूप' (देह) क्षण-क्षण परिवर्तित होता है।** तेरा हर रूप वस्तुतः **'रूप सा'** है। तूने आज तक अपना रूप देखा नहीं है और न देख सकता है। जिस क्षण तूने अपने जिस रूप के नाम को स्वीकार किया, आज वह **'रूप'** नहीं है, लेकिन फिर भी तूने स्वयं को उसी **'नाम का'** माना हुआ है। **'नाम'** ने तेरे रूप को जकड़ लिया और तेरा हर रूप **'नाम का'** हो गया। तेरी देह से सम्बद्ध सब कुछ तेरे नाम से जाना व माना जाने लगता है। **'मैं'** जटिल्य का एक विशेष नाम है, लेकिन कोई भी रूप विशेष नहीं है। तूने अपनी सपने वाली देह का भी **'रूप'** नहीं देखा। लेकिन **'नाम'** वही था और **'मैं'** वही थी। इस **'मैं'** जटिल्य के प्रकाट्य में **'रूप'** (देह) और **'होना'** बदलता रहता है। लेकिन **'नाम'** और **'मैं'** वही रहते हैं। चराचर प्राणी जगत में समस्त आकार, प्रकार, और निराकार अदृश्य परमात्मा के ही हैं। विभिन्न **'रूप'** परमात्मा के विभिन्न रूपों के प्रतिनिधि हैं और विभिन्न असंख्य **'नाम'** परमात्मा के असंख्य नामों के प्रतिनिधि हैं।

मानव-देह स्वयं में एक विशिष्ट आकार है, जिसमें असंख्य प्रकार हैं। आकार-प्रकार से पहचान होती है। भूलवश, अज्ञानवश **'मैं'** जटिल्य के कारण मानव ने इस देहाकृति को अपनी देह मान लिया। चार अंगों का

सामूहिक यह **'मैं'** जटिल्य पशुओं में नहीं होता। पशु-पक्षियों को तथा मानवों को विभिन्न नाम मानव ने दिए। मानव देह के असंख्य परिर्वतनों में 'नाम' वही रहता है। नाम अक्सर नहीं बदलता तथा नाम किसी भी परिवर्तन में स्वयं प्रभावित नहीं होता। जो बदलता नहीं तथा प्रभावित नहीं होता, वह ईश्वरीय ही हो सकता है। अतः किसी नामधारी द्वारा रखा गया **'नाम'** ईश्वर के नाम का प्रतिनिधि है। पूर्णतः परमात्मा द्वारा निर्मित, पालित एवं संहारित इस देहाकृति का जो भी नाम रखा गया, वह भी परमात्मा का ही होगा। वह एक अदृश्य सत्ता असंख्य देहों के रूप में उतरी, तो उसके असंख्य नाम हैं। अरूप व अदृश्य परमात्मा स्वयं में विरूप रूप में विभिन्न रूपों में विचरता है।

'मैं देह हूँ' सन्देहवश तूने **'नाम'** अपना मान लिया। नाम की रूप से पड़ी गाँठ अति सूक्ष्म और अदृश्य है। **'रूप से'** पर आरोपित **'नाम'** का ज्ञान होना, किसी के भी परिचय एवं पहचान के लिए आवश्यक है। **'रूप'** के बदलते रहने के कारण इस **'गाँठ'** का स्वरूप बदलता रहता है, लेकिन गाँठ बनी रहती है। पहले मानव-देह का प्रतिनिधित्व **'रूप'** या चेहरा करता था, लेकिन अब यह गाँठ प्रतिनिधित्व करने लगती है। इसलिए **'नाम'** ने तुझे जकड़ लिया। तेरा घर, पत्नी, बच्चे, प्रौपर्टी, मित्र, शत्रु, डिग्रियाँ, पद, प्रतिष्ठा, सगे-सम्बन्धी, जीना-मरना सब तेरे नाम से हैं। **'नाम'** की इतनी शक्ति इसलिए है, क्योंकि नाम परमात्मा का है, लेकिन तूने अपना मान लिया और तू काल, कर्म और प्रारब्ध तीन बन्धनों में जकड़ा गया। जब तक हर क्षण तू परमात्मा के नाम का आश्रय नहीं लेगा, तू सुखी नहीं हो सकता।

**'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए **'नाम-रूप'** से गुण्ठित देह का **'उठा'** हुआ होना अत्यावश्यक है। **'उत्तिष्ठ-जाग्रत'** उठकर तू स्वयं को पहचान, कि तू रूप वाली नाम से गुण्ठित देह नहीं है। तू जीवात्मा का प्रतिनिधित्व करते शब्द **'मैं'** को पहचान। जीवात्मा भी **'एक'** है और शब्द **'मैं'** भी एक है। **'मैं'** प्रकट होकर तेरी देह की नाम से गुण्ठा को कुण्ठा में घोषित करती है। शैशवावस्था में शिशु उठा हुआ होता है, लेकिन नाम होते हुए भी नाम से

गुँठा हुआ नहीं होता। उसकी अबोधता जड़ता है। इसलिए **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट नहीं होती। अवचेतना में रूप की नाम के साथ गाँठ की स्वीकृति होने पर चेतना के विशिष्ट स्तर पर **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट होती है। मात्र उठना ही पर्याप्त नहीं है, अवचेतना में चेतना का विशिष्ट स्तर होना भी अनिवार्य है, तभी **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट होकर उसका गुँठा हुआ उठना घोषित करती है। सीमित, कुण्ठित एवं गुण्ठित देह व जगत के प्रकाट्य की घोषणा शब्द **'मैं'** एक जटिल्य रूप में प्रकट होकर अवचेतना में करता है। **'मैं'** जटिल्य के प्रकाट्य के साथ ही नाम से गुँठे रूप (देह) के **'होने'** (जगत सहित) की घोषणा एवं परिपुष्टि होती है। इस रहस्य को **मेधावी, विवेकशील, प्रज्ञावान एवं ऋतम्भरित बुद्धि से ही अनुभूतिगम्य एवं गृहीत किया जा सकता है।**

**'स देह'** (जीव) को संदेह हो गया, कि मैं देह हूँ। इस अज्ञान की अनभिज्ञता में जो **'स सार'** था, वह संसार निःसार होकर जीव के गले पड़ गया। दृष्टा जीवात्मा स्वयं में अदृश्य है, सृष्टि दृश्यमान है। अतः प्रकाट्य में आत्मतत्त्व **'स देह'** है, लेकिन उसके प्रतिनिधित्व शब्दरूप **'मैं'** को देह का तनिक अवलम्बन लेने में सन्देह हो गया, कि मैं देह हूँ। मैं देह (अमुक-अमुक रूप) हूँ, इस जीवभाव के प्रकाट्य में **'मैं'** कुण्ठित होते हुए देहमय हो गया। अर्थात् रूप (देह) से के साथ तद्रूपता **सी** में जीवकोटि में आ गया। शब्द **'मैं',** नाम, रूप और होने का गुंथ-मुथा एक दल या जटिल्य जीव के **'होने'** को निर्धारित करता है। **देह के होने की प्रतीति से ही जगत के 'होने' की प्रतीति होती है।** उस समय (वर्तमान) के भूत, भविष्य सहित तेरे कार्यक्रम, विचार, उनमें संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्द्धन आदि-आदि सम्पूर्णतः जो भी होता है, वह एक तेरे होने से होता है। **'होना'** उस समय के चेतना के स्तर के अनुसार होता है। इसलिए देह सहित जगत सहित होने में नित नूतनता एवं भिन्नता होती है। यह **'होना'** सीमित और कुण्ठित **'मैं'** जटिल्य के प्रकाट्य में अवचेतना में चेतना के स्तर के आधार पर है।

**'मैं'** शब्द के प्रकट होने की जाँच या परीक्षण नाम से गुण्ठित उठी हुई

देह के **'होने'** से होता है। नाम से गुण्ठित देह के उस समय के जगत सहित होने की घोषणा एवं प्रमाणिकता तभी होती है। **'मैं'** और **'नाम'** दोनों अपरिवर्तनीय रहते हैं, लेकिन **'होना'** और **'रूप'** बदलता रहता है। **'मैं'** स्वयं में आत्मतत्त्व की प्रतिनिधि न रहकर नाम से गुण्ठित रूप (देह) का प्रतिनिधित्व करने लगी और **'नाम'** ईश्वर का न रह कर, एक मानव-देह का मालिक होते हुए हावी हो गया। तेरे होने में **'मैं'** जटिल्य के प्रकट होते ही **देह** का यथार्थ, स्वयं **'मैं'** का विशुद्ध स्वरूप (आत्मतत्त्व) एवं **'नाम'** का ईश्वरत्व तीनों आच्छादित हो गए। तीनों का यह आच्छादन एक साथ होता है और अनाच्छादन भी एक साथ होता है। यह जटिल्य ही **'जीव'** एवं जीव-सृष्टि है, जो पल-पल बदलती रहती है। इस बदलाव का आधार इस जटिल्य के प्रकाट्य में समय-समय पर चेतना के स्तर का होना निर्धारित करता है। इस आच्छादन में ईश्वर प्रभावित नहीं हुआ, लेकिन दृष्टा जीवात्मा एक जीव बनकर जीव-सृष्टि में भटकने पर विवश हो गया। जो, जब, जहाँ, जैसा तू है, तेरी देह के साथ तेरा **'होना'** बदलता रहता है। नाम एक होने के कारण हर **'रूप से'** के साथ तेरी **'मैं'** तद्‌रूप सी हुई कुण्ठित हो गई। **'रूप सा'** भी तूने स्वयं अपना कभी नहीं देखा। **'मैं'** जटिल्य के प्रकट होने पर सबके रूप भी तेरी उस समय की एक देह के अनुसार होते हैं।

**'दूध'** में Processing होकर उसकी **'स्थिति'** बदल जाती है। **'दही'** बनने के बाद उसे **'दूध'** में बदला नहीं जा सकता। **'दही'** की Processing के बाद स्थिति बदली, **'मक्खन'** प्रकट हुआ और मक्खन की Processing होकर, **'घी'** ऐसी स्थिति प्रकट हुई, जिसकी आगे Processing भी सम्भव नहीं है। स्थिति पर स्थिति का शासन है। एक **'स्थिति सी'** (दूध) है, एक स्थिति (दही) है, एक महास्थिति (मक्खन) है, एक अति स्थिति **'घी'** है। गर्भ, शिशु और निद्रा **'स्थिति सी'** है। पंच-महाभूतों के समस्त प्रपंच में, स्थापत्य स्थिति, एक मात्र **'मृत्यु'** है। यद्यपि इन चारों स्थितियों में **'गति'** अदृश्य ही रहती है, लेकिन **'मृत्यु'** **'स्थिति'** है। मृतकावस्था में परिवर्तित होते-होते स्थिति बदलने लगती है। **'भसम'** स्वयं में अवस्था नहीं **'स्थिति'** है, क्योंकि

स्वयं में अवस्थातीत अवस्था है। इसकी **'स्थिति'** सतत् स्थित्यातीत **'संहारित देह'** है। **'संहारित देह'** की अनुभूति तेरी विरक्ति है, जो **'अत्यन्त शक्ति'** ब्रह्ममय **'विरक्त स्थिति'** है। **'स्थितोऽस्मि'** व्यक्ति का मूल **'विरक्ति'** है।

व्यक्ति की अभिव्यक्ति स्वतः नित नूतन होती है। तू इस अभिव्यक्ति से अपनी विरक्ति पा ले। मानवों में कुछ **'स्थित से'** हैं, कुछ **'स्थित** हैं, कुछ **'महास्थित'** हैं और कुछ **'अतिस्थित'** हैं। जिसमें स्थिरता का अधिक्य है, उसका कम स्थित पर शासन होता है। यही **'सृष्टि'** का नियम है, जिसके अनुसार निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में सृष्टि का **'नियमन'** होता है। व्यक्ति क्षणिक है, तू अक्षुण्ण है, शाश्वत् है। व्यक्ति अभिव्यक्ति में एक से अनेक होता है, तू **'एक'** से एकान्त में जा। **'व्यक्ति'** मरण धर्मा है। तेरी वास्तविक **'स्थिति'** का प्रथम चरण ध्यान द्वारा तेरा **'मृत्यु-दर्शन'** है। ध्यान में अपनी भस्मी से आत्मसात् होना **'स्वयं'** शिव है। **'व्यक्ति'** प्रभु का है, भस्मी तेरी है, तू उससे आत्मसात् हो। तेरी **'भस्मी'** एक पदार्थ है, जो तू **'अन्य'** का इस प्रपंच में देख सकता है। व्यक्ति का यह पदार्थ वस्तुतः व्यक्तातीत, देहातीत, प्रपंचातीत है। यही तेरी पहचान (I.D.) है। तुझे **'स्वयं'** की **'अत्यन्त स्थिति'** के लिए अपने एक पदार्थ **'भस्मी'** का ध्यान चाहिए। भस्मी तेरे पद का अर्थ है। तू पदार्थी बन, सद्‌गुरु कृपा से हर क्षण तुझे देह को इसके लिए **'साधन'** बनाना होगा।

समस्त वक्तव्य का समन्वित सार है, कि पंच-महाभूतों से निर्मित, पालित एवं संहारोपरान्त इन्हीं में विलय होती साकार व निराकार सद् सृष्टि का खेल दृश्यमान होता हुआ अवचेतना में शब्द 'मैं' के साथ प्रकट होता है। **'सद्'** सीधा है, अचल व अदृश्य निर्मल मानस रूपी श्वेत पर्दे पर स्वयंभू प्रकाशयुक्त चलचित्र प्रकट होता है। चलचित्र के प्राकट्य से पूर्व रोशनी से जगमगाती नाट्यशाला का प्रकाश गुल कर दिया जाता है। क्योंकि चलचित्र स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है। चलचित्र को देखने के लिए बाहरी प्रकाश का गुल होना अत्यावश्यक है। **जगत के यथावत् प्राकट्य को तथावत् देखने के लिए बाह्य नेत्रों का मुँदना आवश्यक है।**

अन्यथा बहुत कुछ अनावश्यक दृश्यमान होगा। सुषुप्ति में और मृत्यु में मुँदी आँखें अवचेतना से **'जड़ता'** में ले जाती है और ध्यानावस्था अथवा समाधि से मुँदी आँखें अवचेतना से चेतना में ले जाती हैं। **''तत् सवितुर्वरेण्यम्''** वह स्वयंभू न केवल स्वयं प्रकाशित है, बल्कि प्रकाश के स्रोतों का प्रकाशक भी है। कुछ प्रकट होने से पहले बाह्य प्रकाश और इसे देखने वाली आँखों को मूँद ले, समाधि में जा। स्वयंभू प्रकाशक और बाह्य प्रकाश से प्रकाशित दोनों एक साथ दृश्यमान नहीं हो सकते। तू दोनों को देखना चाहेगा, तो सृष्टिकर्ता का खेल तेरे लिए झमेल बन जाएगा। तू कल-आज और कल की कलाकल में कलपता हुआ कर्म, प्रारब्ध और काल के चक्रव्यूह में भ्रमित ही घूमता रहेगा।

जगत का चलचित्र दृश्यमान होते समय मानस रूपी श्वेत, अचल व निर्मल पर्दे का अदृश्य होना आवश्यक है। चलचित्र के प्रकाट्य से पहले पूरी रील अदृश्य में बन चुकी होती है और चलचित्र यथावत् बना-बनाया प्रकट होता है। जीवन रूपी चलचित्र में तेरी प्रविष्टि से पूर्व बहुत सी फिल्म निकल चुकी होती है। तेरी प्रविष्टि, प्रचलन और अन्त्येष्टि सब प्रकाट्य है, लेकिन तेरे लिए तेरी अन्त्येष्टि **'अप्रकट-प्रकाट्य'** है, क्योंकि अन्त्येष्टि से पूर्व तू संसार रूपी रंगशाला से निकाल दिया जाता है। तेरे लिए चलचित्र का प्रकाट्य तेरी **'मैं'** लगने पर ही होता है। तूने अपने जीवन रूपी चलचित्र का प्रारम्भारम्भ (गर्भावस्था) और प्रारम्भ (जन्म और शैशवावस्था) नहीं देखा। एक दिन जब तेरी **'मैं'** लगी, तुझे चलचित्र वहाँ से दृश्यमान हुआ, जहाँ बहुत सी फिल्म तेरे लिए निकल चुकी थी। जब तेरी **'मैं'** लगी-लगाई हट गई, वहाँ **'निद्रावस्था'** तेरे लिए चलचित्र के मध्यान्तर की तरह रही। रात को रोज़ थक हार कर सोता है और अगले दिन तथाकथित तरोताज़ा होकर उन्हीं कार्यों में पुनः वहीं से व्यस्त हो जाता है, जहाँ से रात को थक हार कर सोया था। तेरा अन्त (मृत्यु) और अन्तान्त (मृतकावस्था और चिता दहन के उपरान्त भस्मी का प्रकाट्य) तेरे लिए अदृश्य रहता है। यही **'कल-आज और कल'** की कलकल की कलपन में तू जन्मों-जन्मान्तरों के निरर्थ,

व्यर्थ एवं अनर्थ **'कालचक्र'** में भ्रमित हुआ युगों-युगान्तरों से भटक रहा है।

**'मैं'** लगने पर तू चलचित्र के साथ प्रकट हो जाता है और **'मैं'** हटने पर तेरे लिए मध्यान्तर की भाँति चलचित्र गुल हो जाता है। तेरे होने का आधार तेरी चेतना का स्तर है। जगत सहित तेरे उठने का आधार मैं जटिल्य है और तेरे **'नित नूतन'** होने का आधार तेरी चेतना का स्तर है। चेतना के स्तर का आधार स्वयं में महा चेतन सद्गुरु व इष्ट है। तूने सद्गुरु कृपा से ध्यान में जितनी गहन जड़ता का दर्शन किया है, तद्नुसार तेरी चेतना के स्तर में वृद्धि होगी। **'निद्रा-दर्शन'** जागृति, **'मृत्यु-दर्शन'** अमरत्व एवं **'भस्मी-दर्शन'** शिवत्व की स्थिति है। पहले अपने आधार को निर्धारित कर, फिर उस पर आधारित हो। आनन्द और चेतना के अदृश्य समन्वय से **'सद्'** प्रकट होता है। ईश्वरीय मानस आनन्द का पुंज है और आनन्द के साथ चेतनामयी बुद्धि होती ही है। मन-बुद्धि दोनों अदृश्य हैं, दो अदृश्यों के अनन्त समन्वय से दृश्यमान जगत प्रकट होता है। यह जगत **'सद्'** है, ईश्वर की माया है। यदि तूने अपने जीवन रूपी चलचित्र का रसास्वादन करना है, तो जीते जी समाधि द्वारा तुझे अपनी देह का संहार-दर्शन करना ही होगा। अपना अन्त (मृत्यु) और अन्त का अन्त (चिताग्नि में अपनी देह के शव के दहनोपरान्त प्रकट भस्मी) जो होगा ही और तूने अन्य लोगों का जैसा देखा है, वैसा ही होगा। उसे तू ध्यान में मानस प्रकरण द्वारा देख। तुझे जीवन-काल में चलचित्र को रोक कर उस मानस रूपी श्वेत, निर्मल व अदृश्य पर्दे का दर्शन करना होगा, जो चलचित्र की किसी भी विधा एवं क्रिया-कलाप से अप्रभावित रहते हुए चलचित्र की यथावत् प्रस्तुति करता है, तभी उस **'यथावत्'** प्रस्तुति को **'तथावत्'** देखते हुए तू अपने जीवन रूपी चलचित्र का रसास्वादन कर पाएगा। यही तेरा **कर्म'** है। जो तेरे लिए तेरे अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता, लेकिन यह समस्त मानस प्रकरण मात्र कृपा साध्य है।

***''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''***

**(30 मई से 19 दिसम्बर 2012)**

# संहार (विरक्ति)

## (भाग – 13 )

**स**मस्त दृश्यमान कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड स्वयं में उस सच्चिदानन्द ईश्वर का **'सद्'** रूप में प्रकाट्य है। इस दृश्यमान का **'दर्शन'** (दरश न) **'सद्'** है। जैसे ही इस प्रकाट्य से **'सदानुभूति'** होती है, उसके साथ ही आनन्द व चेतना की अनुभूति भी होती है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश सहित चराचर प्राणी जगत, मानव देहें और देहों की विभिन्न अवस्थाएँ दृश्यमान हैं। इन समस्त भिन्न-भिन्न भिन्नताओं में अभिन्न **'एक'** ही है और वह **'अभेद'** है। तू और तेरा **'होना'** अदृश्य है और उस **'होने'** में जो हुआ, वह दृश्यमान है। तुझ सहित दृश्यमान जगत वस्तुतः तेरे **'होने'** का दर्शन है। प्रभु की रचना में अपने होने को तू ईश्वर से जुड़ कर ही अनुभव कर सकता है। यदि तुझे अपने **'होने'** की अनुभूति हो जाए, तो जो दृश्यमान होगा वह तेरे लिए आनन्दमय एवं चेतनायुक्त ही होगा। उसमें तू जगत को अपने से पृथक् करके नहीं देखेगा।

समस्त कहानी तेरे **'मानस'** की है और कहानी में हस्तक्षेप तेरी **'मानसिकता'** से है। मानसिकता में मानस उदात्त हो नहीं सकता। अदृश्य मानस में मानसिकतावश अदृश्य रूप से तू जो, जब, जहाँ, जैसा होता है, वैसा ही तुझ सहित जगत दृश्यमान होता है। **'मानसिकता'** वस्तुतः यही, माइनस-सिकता (रोग) है। यहाँ तेरा मूल्य हमेशा घटता ही है। यदि तू जगत को अपने से माइनस करके देखेगा, तो मानसिकतावश तेरा आनन्द और चेतना आच्छादित हो जाएगी। काम-क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार-मद,

रोग-दोष, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, जरा-रोग, भय-त्रास, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप, आवरण आदि आनन्द और चेतना के आच्छादन में हैं। इसमें तू हर दृश्यमान प्रकाट्य के सद् से वंचित ही रहता है। सच्चिदानन्द की दृश्यमान सृष्टि भी स्वयं में सच्चिदानन्द है और सब कुछ मात्र तेरे रसास्वादन के लिए है। जीते जी ध्यान समाधि में अपनी **'मृत्यु', 'चिता'** और **'भस्मी', 'संहार'** के तीनों आयामों के दर्शन में क्रमशः **'सद्', 'चेतन** एवं **आनन्द** का सम्पूर्ण रहस्य अन्तर्हित है। **'मृत्यु-दर्शन'** समस्त साकार-निराकार दृश्यमान सृष्टि के रहस्यों को समेटे **'सद्-दर्शन'** है, **'चिता-दर्शन',** चिदा-दर्शन है और तेरी चेतना की जागृति है तथा भस्मी-दर्शन **'आनन्द-दर्शन'** है। यह मानस प्रकरण मात्र कृपा साध्य है और विशेष चेतना का स्तर, एवं आनन्द की अनुभूति है।

मानस आनन्द का स्रोत है और चेतनामयी बुद्धि से जुड़ा हुआ है। अभावमयता उस मानस का स्वरूप है, अर्थात् वहाँ **'भस्मी'** के अतिरिक्त देह व जगत सम्बन्धी किसी भौतिक वस्तु का कोई भाव नहीं है। जहाँ आनन्द और चेतना है, उसका प्रकाट्य **'सद्'** ही होगा। **'भस्मी-दर्शन'** के समय **'मैं'** की भस्मी के साथ आत्मसातता में चेतना का स्तर उच्चतम होता है। उसके बाद समाधि से बाहर आने पर जटिल्य (मैं, नाम, रूप और होना) के दल-दल से विशुद्ध आत्मतत्त्व की प्रतिनिधि **'मैं'** निथर आती है। उस स्तर पर वह यथार्थ देह **'मैं'** (आत्मतत्त्व) की प्रतिनिधि होती है, उससे अन्यार्थ (अर्थहीनता, निरर्थता, व्यर्थता एवं अनर्थता) हट जाता है।

**'मानसिकता'** व्यक्तिगत है और **'मानस'** तेरी देह सहित जगत सहित है। दृश्यमान जगत अदृश्य मानस का प्रकाट्य है। मानस अदृश्य है और मानसिकता भी अदृश्य है। अतः समस्त संशोधन भी अदृश्य में, अदृश्य द्वारा ही होगा। मानस की रचना को तू जिस मानसिकता से देखता है, वह तेरा निजी **'दृष्टिकोण'** है। अपनी तुच्छ मानसिकता में तू चेतना एवं आनन्द को आच्छादित कर देता है। देह सहित जगत सहित दृश्यमान सृष्टि को **'एक'** मानकर देखना तेरा **'सृष्टिकोण'** होगा। जब मानस प्रकट होता है, तो

मानव की समस्त सोच एवं कृत्य समष्टिगत हित के लिए होते हैं। जगत तेरे साथ ही है, अतः जब भी तू है, तो जगत सहित ही है। तेरे सहित जगत है और जगत सहित तेरा होना एक तेरे **'होने'** से है। जैसा तू होगा, वैसा ही तू और तुझ सहित जगत होगा। कल का दिन तेरे लिए वैसा ही था, जैसा कल तेरा 'होना' था। तेरा **'होना'** वैसा ही होता है, जैसा तेरा **'मैं'** जटिल्य है अर्थात् अवचेतना में प्रकट होकर तेरी **'मैं'** का चेतना का जो स्तर होता है, उस होने के अनुसार तेरी देह, जगत सहित दृश्यमान होती है। यह सब प्रभु की इच्छा से होता है। तू **'मानसिकता'** (मैं अमुक(नाम)-अमुक(रूप) हूँ) में जगत को अपने से माइनस अथवा पृथक् करके देखता है। 2 + 2=4 होते हैं, लेकिन 2 में 2 माइनैस (घटा) किए, तो दोनों **'दो'** नहीं रहे और **'शून्य'** आ गया। 2 + 2=4 और 2x2=4 उत्तर में यद्यपि 2 नहीं रहते, लेकिन मूल्य दुगना हो जाता है। 2÷2=1 में भी कुछ तो रहा, लेकिन माइनस ने मूल्य शून्य कर दिया।

एक स्थान पर स्थित होने की प्रतिभा व क्षमता स्थिरता है। ध्यान, समाधि, जप, तप से दृष्टिकोण, सृष्टिकोण में रूपान्तरित हो जाता है और हर प्रकाट्य आनन्दमय ही होता है। तद्नुसार चेतना का स्तर बढ़ता है और चेतना का स्तर बढ़ने से मानस उदात्त होता है। यह परस्पर समान अनुपात में होता रहता है और तद्नुसार तू समय-समय पर अपने जगत सहित होता है। तेरे सहित तेरा सम्पूर्ण जगत समय-समय पर वैसा होता है, जैसा तेरा **'मानस'** होता है। तू देह सहित जगत सहित अपने अदृश्य मानस के गर्भ में है और वह मानस एक ही है। इस मानस और चेतना के स्तर का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। चेतना के स्तर की वृद्धि के साथ-साथ मानस वृहद् होता जाता है।

मानस में आनन्द और चेतना का स्तर एक समय में एक जैसा होता है। आनन्द और चेतना का स्तर समय-समय पर मानसिक स्थिति के अनुसार होता है और मानस स्थिति आनन्द सहित चेतना के स्तर के अनुसार होती है। आनन्द और चेतना में समन्वय, प्रतिरोध अथवा किसी भी

प्रकार का सम्बन्ध होने से देह सहित जगत सहित प्रकाट्य दृश्यमान होता है। अदृश्य मानस का आकलन दृश्यमान प्रकाट्य से होता है। समस्त साधना आनन्द एवं चेतना में अधिक से अधिक समन्वय के लिए की-करवाई जाती है, ताकि तुझ सहित तेरा समस्त जगत आनन्दमय एवं रसास्वादन का हेतु हो। आनन्द और चेतना का सम्बन्ध चार मुख्य रूपों में प्रकट होता है। मान लो आनन्द और चेतना 2 और 2 हैं। 2 - 2=0, 2÷2=1, 2+2=4, 2X2=4, जमा और गुना हुए दोनों 4 पृथक्-पृथक् हैं। पहला जमा वाला 4 भौतिक और स्थूल है और गुणा वाला चार **'विचार चार'** है। आनन्द और चेतना दोनों के जुड़ने से किसी भी प्रकार के सम्बन्धों के रूप में जो प्रकाट्य होता है, उसमें विचार करने वाली कोई बात नहीं होती। आनन्द और चेतना जब गुना होते हैं, तब उनके अनन्त समन्वय के बाद होने वाला **'सद्'** प्रकाट्य **'विचारणीय'** होता है। वहाँ गुणों की वृद्धि देखी जाती है।

साधक का अपने इष्ट व सद्गुरु के अतिरिक्त किसी से सम्बन्ध नहीं होता। उसकी साधना के अंग ही उसके सम्बन्धी होते हैं। साधक का पिता **'ज्ञान'** और माँ **'सत्या'** (सद्) है। उसका भाई **'धर्म'** और बहन **'दया'** है। शान्ति उसकी **'पत्नी'** है और अपनी शान्ति के रख-रखाव के लिए ही वह कभी-कभी अशान्त होता है, अन्यथा परम शान्त रहता है। **'क्षमा'** उसकी सन्तान है। इस प्रकार **'सद्', 'ज्ञान', 'धर्म','दया', 'शान्ति'** और **'क्षमा'** ही उसका परिवार होता है। तेरी देह (रूप) और और तेरा स्वरूप (विशुद्ध आत्मतत्त्व) तेरे होने से है और तेरा 'होना' प्रभु के होने से है। तू है तो तेरे साथ जगत भी है, जैसा भी है ! यदि तुझे उससे कष्ट हो रहा है, तो तू परमात्मा से प्रार्थना कर, कि ''प्रभु ! जो मैं हूँ वह तेरी इच्छा से हूँ। तू (परमात्मा) कृपा कर ! तू तो आनन्दमय है ही, मैं भी आनन्द में हो जाऊँगा।''

अवचेतना में देह के साथ प्रकट जगत के **'सर्व रूपों'** में मेरा, एक **'रूप'** भी होता है। 'मैं देह हूँ' तो जगत भी मैं हूँ और वास्तव में **'मैं'** आत्मतत्त्व का शब्द रूप में प्रतिनिधि हूँ, इसलिए न देह हूँ न जगत हूँ। देह

सहित जगत का होना, मेरी देह अवचेतना का बाह्य प्रकाट्य है। **'जड़ता'** (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) में मुझे मेरे होने का आभास नहीं होता और **'चेतना'** में मेरा होना **'देह व जगत** नहीं होता। यह **'हैत्व'** मेरी अनुभूति मात्र है, जो स्वयं में आनन्द है। प्रभु ने प्रत्येक मानव को शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियों से नवाज़ा है। उनका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग उनके पृथक्-पृथक् स्वभाववश होता है। अपनी शक्तियों का ज्ञान लगभग सभी व्यक्तियों को होता है। हर व्यक्ति की शक्तियाँ उसकी चेतना के स्तर एवं स्वभावानुसार होती हैं। कइयों में इच्छाशक्ति अथवा मानस-बल अथाह होता है, प्रभु ने मानव को ही यह विशिष्टतम शक्ति दी है। जिस मानव को अन्यथा (अन्य अथाह) जगत पर जितना अधिकार होता है, तद्नुसार वह अपने संकल्प द्वारा जब चाहे सैंकड़ों मानवों को अपने साथ जोड़कर कठिन से कठिन कार्य को भी सफलतापूर्वक कर सकता है। उदार एवं वृहद् मानस वाले लोगों का सोच-विचार, दृष्टिकोण एवं क्रिया-कलाप तद्नुसार ही होता है। ***'उदार चित्तानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्'*** उदार चित्त और विशाल हृदय वाले लोगों की सोच व जगत पृथक् होता है।

कोई भी मानव स्वयं में एक व्यक्ति नहीं है। 'मैं देह हूँ' भाव (जटिल्य) मानसिकता बनकर उसे व्यक्तिगत बना देता है और जीव अपनी ही समष्टि में कट सा जाता है। मानव की वृहदता अथवा संकीर्णता उसकी इसी मानसिकता का प्रकाट्य है। जगत कल्याण एवं समाज के हित में साधक एवं बाधक होना भी तद्नुसार मानसिकता का प्रकाट्य है। मानसिकता के अनुसार ही सबकी चेतना का स्तर होता है और उसी स्तर के लोगों में वे प्रसन्न रहते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति में भेद भी इस **'मानसिकता'** के कारण ही है। सद्गुरु के सत्संग और महापुरुष व सन्तों से मिलने में चेतना के स्तर में वृद्धि होती है। चेतना का स्तर स्वयं में असीम है। इसकी कोई गणना नहीं की जा सकती। यह **'चेतना'** स्वयं में अनादि व अनन्त ईश्वर है, जिसके साथ **'सद्'** एवं **'आनन्द'** है ही।

मानस स्वयं में **'भावपुंज'** है, ये **'भाव'** चेतना के स्तर के अनुसार होते हैं और नित्य बदलते रहते हैं। **'भाव'** परिपक्व होकर व्यक्ति के स्वभाव बनते हुए जन्म-दर-जन्म चलते हैं। अज्ञानवश, महादुर्भाग्यवश जीवभाव (मैं अमुक(नाम)-अमुक(रूप) हूँ) स्वभाव बनकर तेरे जन्मों-जन्मान्तरों की भटकन का कारण हो गया। जन्म से मृत्यु तक सम्पूर्ण देहावधि में अदृश्य व अज्ञात कालवश, कर्मवश, प्रारब्धवश बँधी मानव देह पल-पल परिवर्तनशील है। काल, कर्म एवं प्रारब्ध के वशीभूत अवचेतना में चेतना के स्तर के अनुसार समय-समय की मानसिकता होती है। प्रत्येक **'कर्म'** के छः अंग होते हैं — कर्ता, कर्तापन, कर्म से पहले की वृत्ति, कर्म, कर्म होने के बाद की वृत्ति और कर्मफल। कर्म का प्रत्येक अंग अनर्थ में फँसा सकता है अथवा प्रारब्ध से मुक्त करते हुए सार्थकता की ओर भी ले जा सकता है। काल और कर्मवशता परस्पर एक दूसरे से एवं प्रारब्धवशता से भिन्न है। प्रारब्ध का बन्धन काल एवं कर्म के बन्धन के कारण पड़ा। प्रारब्धानुसार कोई व्यक्ति क्या करेगा, यह कर्म-बन्धन एवं काल-बन्धन द्वारा निश्चित होता है। देह के काल, कर्म एवं प्रारब्ध का निर्देशक भी स्वभाव होता है। काल, कर्म और प्रारब्ध लगा-लगाया आता है, लेकिन उसका लागू होना आवश्यक नहीं है। प्रारब्ध से मुक्त होने के लिए काल-बन्धन को सहर्ष स्वीकार करना होगा। काल की समय, स्थान व स्थिति तीन विधाएँ हैं, जिनमें **'स्थिति'** सर्वोपरि है।

काल, कर्म और प्रारब्ध बन्धनों से मुक्त करने में एकमात्र ईश्वर की शरणागति का बन्धन ही सक्षम है। सद्‌गुरु का हस्तक्षेप व कृपा काल, कर्म एवं प्रारब्धवश लगे लगाए दृश्यों में संशोधन का हेतु है। लगा हुआ प्रारब्ध अति कृपावश पूर्णतः हट भी जाता है। सद्‌गुरु के सद् निर्देशन में होने वाले पुरुषार्थपरक कृत्यों दान-पुण्य, प्राणायाम, उपासना, ध्यान-समाधि, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्रों आदि का प्रभाव भी स्वभावानुसार होता है। सभी स्वभावों का **'चिन्मय'** ज्ञाता सद्‌गुरु है। किसी की बाह्य दिखावट, बनावट और सजावट से उसके स्वभाव को वह पहचान जाता है। सद्‌गुरु की **चिन्मयता ही**

**चयनमयता** है। तद्नुसार वह विशिष्ट कार्यों के लिए विशिष्ट स्वभाव वाले मानवों का **'चयन'** करते हुए उनकी चिदामयता अथवा चेतनामयता का स्तर बढ़ाता है। **'चेतना'** में **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं होता। उस समाधि स्थिति में तू होता है और तुझे देह व जगत का आभास नहीं होता।

देह सहित जगत का प्राकट्य अवचेतना में ही होता है और समस्त प्राकट्य अवचेतना में ही देखा जाता है। **'मैं'** स्वयं में अवचेतना में नाम-रूप से गुँठी एवं उठी हुई देह के होने में ही प्रकट होती है। **'मैं'** शब्द प्रकट होते ही मानस, मानसिकता अर्थात् अवचेतना युक्त हो जाता है। अवचेतना में तेरी समस्त दौड़ कुछ न कुछ प्राप्त करने के लिए होती है। यह दौड़ देह-भाव (मैं देह हूँ, देह मेरी है) की गहराई के समानानुपात में होती है और उसी अनुपात में तू अपनी प्राप्तियों के भोग एवं सुख से वंचित रहता है। 'मैं अमुक-अमुक हूँ' यह भाव सन्देह है। अवचेतना में चेतना के किसी विशिष्ट स्तर पर **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट होकर **'देह सहित जगत सहित'** तेरा होना प्रमाणित करती है। **'मैं'** जटिल्य के ज्यूं के त्यूं प्राकट्य में **'नित नूतन'** देह व जगत प्रकट होता है। इस प्रकाटय में जप-तप, तीर्थ यात्रा, यज्ञ-हवन आदि से तेरी चेतना के स्तर में वृद्धि होती है, तो तेरा **'होना'** बदल जाता है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

आनन्दमय एवं चेतनायुक्त **'सद्'** प्राकाट्य ही सच्चिदानंद की सृष्टि है। **'सद्'** जिनका लक्ष्य होता है, वे ईश्वरीय नियमों को देखते हुए पल-पल सतर्क एवं सावधान रहते हैं और वहाँ उनके लिए सब कुछ ईश्वर करता है। किसी मानव के साथ उसका नाम नहीं आता। किसी अन्य मानव द्वारा ही **'नाम'** रखा जाता है। एक अथवा दो महीने के मानव शिशु का नाम रखा गया। थोड़ा बड़ा होने पर वह उस नाम से पुकारे जाने पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। धीरे-धीरे वह पहचानने लगता है, कि मुझे इस नाम से बुलाया जा रहा है। कुछ और बड़ा होने पर वह उस नाम से निर्देशन अधिगृहीत करता है। अवचेतना में चेतना के विशिष्ट स्तर पर जीव उस नाम को स्वीकार कर लेता है। यह तब होता है, जब शब्द **'मैं'** द्वारा उस नाम की स्वीकृति प्रमाणित

होती है। **'रूप'** (देह) **का नाम जो अतिरिक्त है, उस नाम को वह रूप, 'देह अवचेतना' में प्रकट 'मैं' शब्द से स्वीकार करता है।** शनैः शनैः **'रूप'** नाम का हो जाता है। सिर्फ **'नाम'** से किसी **'रूप'** का और किसी **'रूप'** से **'नाम'** का पता नहीं चलता। दूसरे शब्दों में एक स्थिति में रूप (देह) की एक विशिष्ट नाम से गाँठ पड़ जाती है। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के साथ ही नाम-रूप की गुण्ठा को **'मैं'** की कुण्ठा में स्वीकार करते हुए मानव देह कार्यान्वित हो जाती है।

मानव देह, अवचेतना में एक विशिष्ट चेतना के स्तर पर नामक देह बन जाती है। उस स्थिति में अमुक नाम की देह की पुष्टि, प्रमाणिकता एवं सत्यापन शब्द **'मैं'** द्वारा होता है। सतत् परिवर्तित होना हर देह (रूप) का **'सद्',** अपना **'धर्म'** है। नाम इसलिए नहीं बदलता, क्योंकि नाम किसी परिवर्तनीय देह का ना होकर किसी अपरिवर्तनीय का है। जो बदलता नहीं, वह मात्र ईश्वर है। अतः नाम स्वयं में परमात्मा का ही है, जो कि बदलने वाले रूप के साथ लगकर मानव ने अपना समझ लिया, कि 'मैं अमुक (नाम) अमुक (देह) हूँ। इसी प्रकार **'मैं'** भी नहीं बदलती। लेकिन इस जटिल्य में नाम ने देह पर और देह ने नाम पर अधिपत्य एवं अध्यास कर लिया। **'मैं'** शब्द रूप में जब प्रकट हुई, तो उस समय के **रूप से** के साथ **तदरूप सी** हुई, जो पहले से ही एक नाम से गुण्ठित था। हर क्षण परिवर्तित होते रूप का नाम एक ही रहता है। देह का **'रूप'** सतत् परिवर्तनशील है। हर स्थिति और अवस्था में तेरा **'रूप'** (देह) बदलता है। तेरी आयु, अवस्था, स्थिति एवं हर परिस्थिति का अनुमान केवल **'नाम'** से नहीं लगाया जा सकता। अपनी ही **20 – 25** वर्ष पुरानी फोटो व्यक्ति नहीं पहचान पाता। रोग, दुर्घटना, विशिष्ट परिस्थितियों, अवस्था में मानव को अपना ही **'रूप'** पराया सा लगने लगता है। तेरी देह (रूप) और 'होना' बदलता रहता है। तू बच्चा है, जवान है, बूढ़ा है, अनपढ़ है, पढ़ा-लिखा है, अफसर है, रिटायर है, रोगी है, स्वस्थ है, कंगाल है, अमीर है, तो भी तेरा नाम वही रहता है। यहाँ **'देह'** बदलती रही, लेकिन **'नाम'** बदलते **'रूप से'** के साथ गुँठ गया। **'मैं'** शब्द

ने इस गुण्ठा का क्रियान्वयन कुण्ठा में किया। देह की हर प्राप्ति-खोना और सब कुछ नाम का हो गया।

देह पर कब्जा **'नाम'** का ही रहता है। यह **'नाम'** की शक्ति है। इस गाँठ में **'रूप'** बदलता रहता है और **'नाम'** वही रहता है। **'नाम'** उस **'रूप'** का हो गया, जो सतत् बदल रहा है। स्वयं में अदृश्य **'नाम-रूप'** की यह गाँठ पक्की इसलिए है, क्योंकि इस गुण्ठन को आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** प्रमाणित करता है। गाँठ का स्वरूप बदलता है, लेकिन गाँठ स्वयं में गाँठ ही रहती है। गाँठ का गुण्ठन समाप्त नहीं होता। यद्यपि **'नाम'** को **'रूप'** के परिवर्तन से कुछ लेना-देना नहीं होता, लेकिन यह गुण्ठन पूरी देहावधि में बना रहता है।

शब्द **'मैं'** प्रकट होकर प्रमाणित करेगा, तभी वह रूप उस नाम में और वह नाम एक रूप में क्रियान्वित (Activate) होगा। यहाँ शब्द **'मैं'** इस कुण्ठा में आत्मतत्त्व का नहीं, उस नामक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। किसी मानव का **'नाम'** जब तक सुना न हो और **'रूप'** जब तक देखा न हो, तब तक उस मानव की **'नाम-रूप'** में पहचान नहीं हो सकती। किसी **'रूप'** का एक सुनिश्चित नाम और किसी **'नाम'** का एक सुनिश्चित रूप नहीं है। **'नाम-रूप'** की गाँठ की प्रमाणिकता **'मैं'** शब्द अवचेतना में प्रकट होकर करता है और बिना **'नामरूप'** की गाँठ के शब्द **'मैं'** प्रकट नहीं होता। पूर्ण जड़ता और पूर्ण चेतना के मध्य अवचेतना है, जिसमें चेतना के विभिन्न स्तर होते हैं। अवचेतना में चेतना के भिन्न-भिन्न स्तरों पर **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट होकर रूप की नाम के साथ और नाम की रूप के साथ पड़ी अदृश्य गाँठ को प्रमाणित करता है।

**'मैं'** शब्द मानव ही लगाता है। कोई भी मानव किसी भी अवस्था व स्थिति में हो, **'मैं'** शब्द के बिना स्वयं में नहीं होता। आयु, आर्थिक स्तर, मानसिक स्थिति, सम्बन्ध, स्वास्थ्य, लाभ-हानि, उन्नति-अवनति, सुख-दुःख, गरीबी-अमीरी, देश-काल, धर्म-कर्म, लेना-देना और अन्यथा असंख्य दृष्टियों से कोई मानव कुछ भी हो, शब्द **'मैं'** सर्व का एक है और एक ही **'मैं'** सर्व का

है। सर्व में **‘मैं’** जटिल्य (Complex) समान रहा है और रहेगा। दूसरा **‘सर्व’** का तत्त्व **‘नाम’** है, नाम कुछ भी हो, नाम का नाम, **’नाम’** ही रहता है। किसी ने पूछा, कि नाम रख दिया? उत्तर मिला हाँ, नाम रख दिया। फिर पूछा जाएगा, कि क्या नाम रखा? नाम जो रखे जाते हैं, वे स्वयं में **अभिन्न, एक ‘नाम’ के भिन्न-भिन्न नाम हैं।**

**‘नाम’** मात्र नाम की दृष्टि से केवल परमात्मा का ही है। **‘नाम’** पर इतना अधिकार परमात्मा का ही इसलिए है, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक नाम के जितने भी नाम हैं, वस्तुतः परमात्मा के ही हैं। विशुद्ध **‘नाम’** का अपना कोई नाम नहीं है और विशुद्ध **’मैं’** (आत्मतत्व का प्रतिनिधि शब्द) का अपना कोई रूप व कोई नाम नहीं है। **‘नाम’** के हैत्व अथवा होने का हेतु मात्र परमात्मा ही हो सकता है, मानव हो ही नहीं सकता। **‘मैं’, ‘नाम’, ‘रूप’** और **‘होना’** चारों अंगों में गुंथे **‘मैं’** जटिल्य के प्रकाट्य के बिना तू अपना होना प्रमाणित नहीं कर सकता। गहन निद्रा में यह जटिल्य होते हुए भी सुषुप्त होता है। निद्रा से उठना अर्थात् इस जटिल्य का उठना है। एक तेरे होने से तू और तेरे जगत का होना है। जब भी तू **‘होता’** है, तो **‘मैं’** जटिल्य ज्यूं का त्यूं होता है। **‘मैं’** और **‘नाम’** वही होते हैं। **‘रूप’** में किंचित परिवर्तन सतत् होता रहता है, लेकिन यह परिवर्तन प्रत्यक्ष दर्शित नहीं होता। अवचेतना में चेतना के भिन्न-भिन्न स्तर के कारण तेरा **‘होना’** जगत सहित नित नूतन और पृथक्-पृथक् होता है, क्योंकि हर दिन तेरी चेतना का स्तर पृथक् होता है।

**‘मैं’** और **‘नाम’** को आधार तेरे उस **‘रूप’** ने दिया, जो निर्माण व पालन की हर अवस्था में सतत् परिवर्तनशील है और पल-पल बदलता है। फिर भी चार अंगों के इस जटिल्य में **‘मैं’** और **‘नाम’** ज्यूं के त्यूं रहते हैं। तेरी **‘मैं’** तेरी नहीं है और तेरा **‘नाम’** भी तेरा नहीं है। शब्द **‘मैं’** और **‘नाम’** सुनाई देते हैं, लेकिन दिखाई नहीं देते। **रूप** (मानव-देह) और उसका **’होना’** दृश्यमान है। **‘मैं’** शब्द हर होने की पुष्टि, प्रमाण एवं सत्यापन है। आत्मतत्त्व के प्रतिनिधि शब्द **‘मैं’** के बिना दृश्य की दृश्यमानता सम्भव नहीं

है। नाम मात्र श्रवण में आता है, देखा, सूंघा, चखा व छुआ नहीं जा सकता। अदृश्य दृष्टा जीवात्मा का प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** भी ऐसा ही है। **'मैं'** जटिल्य (Complex) होते हुए भी स्वयं में **'अरूप'** व **'अनाम'** है। वही नाम रहने से कुण्ठा पुष्ट-दर-पुष्ट होती रहती है। यहाँ **'मैं'** (आत्मतत्व का प्रतिनिधि) वही रही, लेकिन चेतना से अवचेतना में उतर कर एक जटिल्य (Complex) बन गई और मानव-देह अपना यथार्थ खो बैठी।

**'नाम का'** होते ही **'कामना'** के शिकंजे ने मुझे घेर लिया। देह व देहों के लिए असंख्य चाहतों के लिए मैं चिन्तित रहने लगा। मैंने चिन्तन ही नहीं किया, कि जगत में जो मेरी चाहतों के अनुकूल नहीं हैं, उनके लिए मैं क्यों चाहता हूँ ? उन्हें कुछ मिलने से मुझे क्या मिल जाएगा ? जिनके लिए मैं कुछ चाहता हूँ, क्या मैं उन्हें वास्तव में चाहता हूँ, क्या वे मेरे अनुकूल हैं? हमारी सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के पीछे भी कुछ कामनाएँ होती हैं। 'मेरा' की कुण्ठा को 'मोह' कहा गया है। कोई भी सांसारिक चाहत किसी चाहत के बिना नहीं होती। ऐसा हो जाए, तो मुझे अमुक सुविधाएँ मिल जाएँगी, मेरा रुतबा बढ़ जाएगा, सब लोग मुझे जानने लगेंगे आदि-आदि भाव मेरी चाहतों के उत्प्रेरेक हैं। किसी चाहत के पूरा होने से पहले ही, चाहत की पूर्ति के बाद की ये चाहतें मानव-मानस में अदृश्य रूप से प्रकट होने लगती हैं। उन प्रेरक भावों पर हम विचार नहीं करते और चाहत की पूर्ति में संघर्षरत रहते हैं। चाहत के पीछे जो चाहत है, उसे हम लोगों से ही नहीं, स्वयं अपने से भी छिपाकर रखते हैं। **यही हर व्यक्ति की नीयत है, जो उसकी नियति को तय करती है।** किसी अन्य को उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब मेरी चाहत के पीछे छिपी चाहत, यानि मेरी नीयत खराब होती है, तो मेरी वह नीयत मेरा दुर्भाग्य बनकर मेरे सम्मुख प्रकट हो जाती है। यदि मैं किसी भी प्रकार से और सब प्रकार से उस चाहत को फिर भी पूरा करना चाहता हूँ, तो मेरी नीयत अत्यधिक खराब हो जाती है। जीव कोटि में ईश्वर प्रदत्त हर शक्ति का दुरुपयोग ही होता है।

चाहत स्वयं में अदृश्य है और जिस वस्तु की चाहत है, वह पदार्थ

अथवा विधा दृश्यमान है। दृश्यमान पदार्थ की चाहत पूरी होने पर भी अदृश्य चाहत की वृत्ति मानव-मानस में रहती ही है, जो अन्य चाहतों के प्रस्फुटन का कारण बनती है। चाहत के पीछे की चाहत सूक्ष्मतर है। चाहत की पूर्ति के बाद जो मिलता है, उससे अधिक खोना पड़ता है। चाहत के पीछे जो **'चाहत'** है, उस पर विचार **विवेक बुद्धि** द्वारा होता है। अदृश्य चाहत की वृत्ति का उन्मूलन अदृश्य द्वारा होगा। विवेकी पुरुष चाहत पूर्ति से पहले, चाहत पूर्ति के बाद की स्थितियों पर विचार करता है। दैवीय चेतना से युक्त मानव पदार्थों के पीछे नहीं भागता और उसे पदार्थों की इच्छा ही नहीं होती। विवेकी पुरुष यह सोचता है, कि मेरी चाहत के पीछे क्या चाहत है ? उस चाहतातीत (चाहत से परे) चाहत का विश्लेषण आत्म-चिन्तन की ओर प्रवृत्त करता है।

देहावधि अथवा life का शुभारम्भ **'जन्म'** से होता है और अन्त मृत्यु से होता है। देहावधि का सदुपयोग ध्यान व समाधि द्वारा तेरी अपनी मृत्यु के दर्शन से होता है। मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है। देह की प्रत्येक स्थिति पर मृत्यु का शासन है, इसलिए मृत्यु **'महास्थिति'** है। **'मानस स्थिति'** ही आनन्द एवं चेतना का स्तर है। **'स्तर'** शब्द का स्रोत **'स्थिति'** है। **'मृत्यु स्थिति'** का जन्म-मृत्यु की देहावधि में देह की समस्त स्थितियों और अवस्थाओं पर शासन है। जिस दिन तू अपनी स्वयं की मृत्यु को समाधि द्वारा अनुभूतिगम्य करना चाहेगा, वहीं से तेरी **'जीवन'** में प्रविष्टि होगी। इस स्थिति में देह **'शव'** बन जाती है और नाम-रूप में पहचानी जाते हुए भी तीनों वशों से मुक्त हो जाती है, क्योंकि इस अवस्था में **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं होता। **'वश'** का उल्टा है **'शव'।** यदि जीते जी मानस प्रकरण द्वारा अपने **'शव'** और चिता से समाधिस्थ होकर गुज़रेगा, तो इसका नित्याध्यासन करते हुए समस्त वशों से परे हो जाएगा। वह **'चाहत'** तुझे तेरे सद् जीवन की ओर प्रेरित करेगी। तुरंत दैवी शक्तियाँ तेरे जगत सहित तेरी देह का समस्त उत्तरदायित्व सम्भाल लेंगी। तेरी **'मैं'** को नाम-रूप की गाँठ की **तद्रूपता सी** से मुक्त करने का यही एक द्वार है।

प्रभु ने तेरी देह की पाँच अवस्थाएँ ऐसी रखी हैं, जो तुझे अपनी दिखाई नहीं देतीं। जो तेरे लिए दरश+न (दर्शन) है, उन्हें देखने की इच्छा व चेष्टा करते हुए जब तू उन्हें अनुभूतिगम्य करेगा, तो तुझे सच्चिदानंद (सद्, चेतन व आनन्द) का दर्शन हो जाएगा। महाचेतन सद्‌गुरु स्वयं में गहन चेतना का स्वामी है। महाचेतन महाजड़ता को भी **भेद** सकता है। निद्रा को जागृति, मृत्यु को अमरत्व और भस्मी को शिवत्व के मानस से ही अनुभूत किया जा सकता है। निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था के रोम-रोम में क्रमशः निद्रा, मृत्यु और संहारित देह स्थिति है। महाचेतन सद्‌गुरु इन अवस्थाओं से इनकी स्थितियों से ऊपर उठते हुए चेतना जाग्रत करता है। सद्‌गुरु के स्पर्श, वाणी, दृष्टि आदि में यह शक्ति होती है, बशर्ते कि उसमें अटूट व अनन्य श्रद्धा एवं विश्वास हो। नाम-रूप **से** की तद्‌रूपता **सी** से हटकर **'मैं',** ध्यान में उसी देह का सदुपयोग उसके मानसिक संहार के लिए करे। ध्यान में देह से पूछे, कि ''गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था किसकी थीं और वृद्धावस्था, अतिवृद्धावस्था किसकी होगी?'' कि 'मेरी'। ''मृतकावस्था किसकी होगी?'' कि 'मेरी', ''चिता में कौन जलेगा?'' कि 'मैं' ''भस्मी कौन बनेगा?'' कि 'मैं'। यहाँ **'मैं'** की आत्मतत्त्व की स्मृति जाग्रत होने लगेगी। समाधि में अपनी गहन जड़ता (निद्रायोग, मृत्युयोग, भस्मीयोग) के दर्शन में जो तूने देखा, वह चेतना के विशिष्ट स्तर (चेतन स्वरूप) का प्रकाट्य है। वह तेरे वास्तविक **'जीवन'** का शुभारम्भ होगा।

चेतन करने के लिए सद्‌गुरु गहन जड़ता में बहुत से निर्देश देता है। गहन सुषुप्ति में चेतना का स्तर इतना कम होता है, कि **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं होता। निद्रा हल्की होने पर अर्थात् सुषुप्ति में ही थोड़ा सा चेतना का स्तर बढ़ने पर **'मैं'** प्रकट होता है और स्वप्न सृष्टि का दृष्टा बनता है। कभी-कभी निद्रा में ऐसा स्वप्न भी प्रकट होता है, जो दैवीय होता है। वह कहने को स्वप्न होता है, लेकिन वह एक सारगर्भित विशिष्ट अनुभूति होती है। सद्‌गुरु या इष्ट उस में विशेष निर्देश के लिए स्वयं को प्रकट करता है। किसी दिव्य स्वप्न में देव-दर्शन, सद्‌गुरु-दर्शन के समय चेतना का स्तर इतना बढ़ जाता

है, कि निद्रा और स्वाभाविक रूप से निद्रा से उठना दोनों की विस्मृति हो जाती है। इस प्रकार जब प्रभु तेरी देहावधि का सदुपयोग करेंगे, उसका नाम **'जीवन'** है। जिस दिन तू अपनी मृत्यु को ध्यान द्वारा आत्मसात् कर लेगा, तो तेरा जगत तेरे लिए कार्यक्रम बनाएगा और तेरे लिए जीते जी समस्त कार्यक्रम क्रियाकर्म की तरह होंगे। अपनी मृतकावस्था से आत्मसातता में तेरा अपना हस्तक्षेप पूर्णतः समाप्त हो जाएगा। वहाँ तुझे प्रभु की नित नूतन साकार सृष्टि, जो स्वयं में **'सद्'** है, उसके समस्त रहस्य अनावृत होने लगेंगे। **'सद्'** की अनुभूति में चेतन और आनन्द स्वतः होगा ही।

संहार के दो आयाम हैं—मृत्यु और मृतक देह का चिताग्नि में दहन। संहार **'होगा ही'**, जो **'होगा ही'** वह वस्तुतः **'है ही'** और **'था ही'**। अतीत में भी यह निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य था, अब वर्तमान में भी है और भविष्य में भी यही रहेगा। मृत्यु किसी भी अवस्था, स्थिति, स्थान में हो सकती है। **'मृत्यु'** स्थिति देह की सर्वोपरि स्थिति है और मृतकावस्था **'नाम-रूप'** में होते हुए भी स्वयं में **'नाम-रूप'** की समस्त वांछाओं से परे है। क्योंकि इस अवस्था में शब्द 'मैं' प्रकट नहीं होता। यह जीवन में अन्य भविष्यों की तरह तेरी कल्पना नहीं है। इस भविष्य का महत्व यह है, कि यह पहले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा। **'नाम-रूप'** का अन्तिम पड़ाव मृतकावस्था है, इसलिए **'शव'** के लिए अन्तिम दर्शन शब्द का प्रयोग किया जाता है।

**'चिता'** अन्तिम दर्शन नहीं है। चिताग्नि में शव दहन होगा और उसके बाद वह **'नाम'** एवं **'रूप'** की गुण्ठा हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा। जब चिता प्रज्ज्वलित होती है, तो वह साकार सुकृति धीरे-धीरे पंच निराकार तत्त्वों में विलय होने लगती है। निराकार पंच-महाभूतों में विलय होकर पंच-महाभूतों के अद्‌भुत संगम से निर्मित और पंच-महाभूतों द्वारा पालित साकार देह अपना **'नाम-रूप'** खो देती है। नाम-रूप में **'शव'** तक जो देहें पृथक्-पृथक् पहचानी जाती हैं, उन सबका विलय **'एक'** ही है। चिता दहन के बाद भस्मी प्रकट होगी। तू उसका ध्यान में दर्शन कर।

**'चिता-दर्शन'** तेरे भूत, भविष्य, वर्तमान सबकी भटकन समाप्त कर देगा। **'चिता-दर्शन'** वस्तुतः **'चिदा-दर्शन'** है। सुषुप्त और आच्छादित **'चेतन'** तत्त्व की जागृति के लिए ध्यानाग्नि में अपनी चिता का प्रज्ज्वलन उसी प्रकार देख, जैसे तूने अन्य लोगों का अवचेतना में उठकर देखा है। अपनी **'मृत्यु'** और **'चिता'** से जीते जी आत्मसात् होने के लिए तुझे अपनी आँखें मूँदनी पड़ेंगी, समाधिस्थ होना होगा।

तेरी समस्त धारणाएँ एवं मान्यताएँ **'मैं देह हूँ'** सन्देह रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में धारित सन्देहात्मक एवं संशयात्मक देह (Conceptual) पर आधारित हैं। यह देह पल-पल परिवर्तित होती, स्वयं में असद् देह है। 'मैं देह हूँ' मान्यता में बंधी देह **'असद्'** है। वह **'मैं'** आत्मतत्त्व की द्योतक होते हुए भी एक जटिल्य से जकड़ी हुई **'देहमयी मैं'** है। वहाँ आत्मतत्त्व आच्छादित हो जाता है और देह अपना यथार्थ खो देती है तथा ईश्वर का ईश्वरत्व भी आवृत हो जाता है। देह पर आरोपित समस्त धारणाओं एवं मान्यताओं का **'परित्याग'** करके एकमात्र सद्गुरु की शरणागति द्वारा देह **'सद्'** होती है। **परित्याग'** के लिए सर्वप्रथम **'परिग्रहण'** आवश्यक है। जीते जी ध्यान में देह की मृतकावस्था एवं शव के **'चिता-दर्शन'** के बाद ही देह के **'अर्थ'** (भसम) के **'परिग्रहण'** की इच्छा व चेष्टा सम्भव है। देह का उल्लंघन करके ही **'भस्मी'** की अवधारणा होगी।

देहोल्लंघन **'परित्याग'** है और भस्मी की अवधारणा **'परिग्रहण'** है। देहोल्लंघन द्वारा देह का वह देहातीत क्षेत्र परिगृहीत करना होगा, जो **'नाम-रूप'** से **'रहित'** है। देहातीत क्षेत्र में **'नाम-रूप'** कभी भी वांछित नहीं था। इसीलिए वह क्षेत्र **'नाम-रूप'** से वंचित नहीं, बल्कि **'नाम-रूप'** से स्वतः पूर्णतः रहित है। कुछ वांछित नहीं मिला अथवा मिलकर छूट गया, तो तू उससे वंचित होकर पुनः उसकी अभिलाषा करेगा। अपनी देह के उल्लंघन और **'भस्मी'** की अवधारणा तथा **'परिग्रहण'** के बाद **'नाम-रूप'** की समस्त मान्यताओं एवं धारणाओं का **'परित्याग'** हमेशा के लिए स्वतः हो जाएगा। **'भस्मी'** स्वयं में किसी नाम-रूप की दृश्यमान देह का प्रमाण नहीं, बल्कि

अदृश्य **'संहारित देह'** का प्रमाण है, जो युगों-युगान्तरों से समस्त मानवों की एक ही है।

मानव के हस्तक्षेप से रहित जो देह के सद् हैं, वे **'देहधर्म'** हैं। सद् की अनुभूति एवं साधना के लिए देह का सद् होना परमावश्यक है। देह को, देह के वास्तविक एवं ईश्वरीय स्वरूप में देखते हुए उसकी अनुभूति करने के लिए सद्गुरु की शरणागति अपेक्षित है। देह के **'सद् साधन'** रूप में सदुपयोग के लिए **'देहधर्म'** के जितने अटूट आधार स्तम्भ हैं, उनमें से **'एक'** की सिद्धि आवश्यक है। मानव द्वारा रखे गए नाम के कुण्ठित एवं आरोपित धर्मों में बंधी देह से की गई साधनाओं द्वारा चेतना के स्तर में वृद्धि होती है, लेकिन जीव की भटकन एवं तड़पन समाप्त नहीं होती। कोई विरला मानव अति सद्गुरु कृपा से **'देहधर्म'** की अनुभूति करता है। देह ही **'सद्'** की अनुभूति का **'साधन'** है। **'साधन'** का सद् होना और साधन के **'सद्'** की अनुभूति **'आत्मानुभूति'** की प्रथम अनिवार्यता है। देह के अर्थ की सिद्धि देह के **'सद्'** की सिद्धि है। नाम-रूप से रहित देहातीत क्षेत्र (भस्मी) के अधिग्रहण द्वारा देह सद् हो जाती है। देह का **'अर्थ'** भसम है। **'मैं भस्मी हूँ'** यह वक्तव्य भी देह द्वारा दिया जाता है।

चेतना और आनन्द के अखण्ड समन्वय से प्रकट वह देह स्वयं में **'सद्'** होगी। परमात्मा और आत्मतत्त्व **'नित्य'** है और देह, जगत सहित नित नूतन है। **'नाम'** का जगत व्यवहार में एक ही रहना अनिवार्य है। नाम वही होने के कारण देह की नित नूतनता की प्रतीति नहीं होती। तू अपने नाम-रूप की देह की उस अवस्था का मानसिक रूप से रोज़ अधिग्रहण कर, जो नाम-रूप से रहित है। भस्मावस्था ही वह एकमात्र अवस्था है, जो स्वयं में अवस्थातीत है, इसलिए व्यवस्थातीत है। ध्यान में जब अपनी देह की भस्मी के साथ आत्मसात् होने का प्रकरण करेगा, वही देह, रूप रहित होते हुए नाम रहित हो जाएगी। बिना रूप के **'नाम'** का आधार ही नहीं रहेगा। उसके बाद तुझे जो देह प्राप्य होगी, उसका **'नाम'** चाहे वही रहेगा, लेकिन एक बार रूप रहित होने के बाद जो नाम होगा, वह नया होगा। उदाहरणतः एक

पत्रिका है **'नन्दन'**। **'नन्दन'** छः वर्ष पूर्व की पुरानी पत्रिका भी नन्दन कहलाती है, लेकिन आज प्रकाशित **'नन्दन'** स्वयं में नन्दन होते हुए भी नई होती है।

**'सद्'** की ओर उन्मुख होते ही **'असद्'** स्वतः छूटने लगता है। **'खोना-पाना'** दोनों प्रक्रियाएँ समानान्तर एवं साथ-साथ चलती हैं। **पा के खोना और खो के पाना** विभिन्न भौतिक क्षेत्रों में देखा जा सकता है। सांसारिक उपलब्धियों में न्यूनता अधिकता होती रहती है, लेकिन आध्यात्मिक लब्धियाँ अपरिवर्तनीय हैं। **'सद्'** का बाहुल्य होने के बाद उसकी न्यूनता कभी नहीं होती। एक बार आवरण हटने पर पुनः कभी नहीं पड़ता। 'मैं भस्मी हूँ' भाव स्वयं में **'विरक्ति'** है। अदृश्य सत्ता महामानवों में विरक्ति रूप में प्रकट होती है। प्रभु उन्हें भरपूर सुख सुविधाओं एवं विभूतियों से नवाज़ते हैं। वे अपने समय, ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति आदि विभूतियों को विश्व कल्याण हेतु बाँटते हैं। कृपया एकाग्र करिए।

कोई भी **'स्थिति'** सीधा अवस्था रूप में प्रकट नहीं होती। विभिन्न दृष्टियों से देह की असंख्य स्थितियाँ **'स्थिति सी'** हैं, लेकिन गर्भ, शिशु, निद्रा और मृत्यु स्वयं में **'स्थिति'** हैं। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था और मृतकावस्था की ध्यान में अवधारणा द्वारा तू स्वयं में **'स्थित'** हो। यह चारों स्थितियाँ एक **ही** हैं और अवस्थाएँ सबकी एक **सी** हैं। गर्भ, शिशु, निद्रा, मृत्यु स्थिति की **'अवस्था'** गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था और मृतकावस्था है। स्थिति और अवस्था के बीच एक **'प्रकरण'** है, जिसे **'व्यवस्था'** कहते हैं। व्यवस्था होने के बाद ही कोई **'स्थिति'** अवस्था में ढलती है। यह **'व्यवस्था'** भिन्न-भिन्न होती है और प्रारब्धवश है। हम मानव जाने-अनजाने अज्ञानवश, अहंवश **'व्यवस्था'** में लगे रहते हैं। उदाहरणतः निद्रावस्था के लिए आरामदायक बिस्तर और सुख-सुविधापूर्ण शयनकक्ष को व्यवस्था मान लेते हैं, जबकि **'स्थिति'** और **'अवस्था'** दोनों हमारे हाथ में नहीं हैं। हमारे अहं द्वारा निर्मित **'व्यवस्था'** जब फलीभूत नहीं होती, तो विभिन्न मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं।

देह की अवधि समाप्त होने पर देह चली जाती है, लेकिन मानसिक वासना ज्यूं की त्यूं बनी रहती है। यह मानसिक वासना दैहिक अवस्था के लिए व्याकुल रखती है। तू **'व्यवस्था'** को भी प्रभु पर छोड़ दे। सद्गुरु कृपा इस व्यवस्था को सुधारते हुए प्रारब्ध का भेदन करती है। **'अवस्था'** दृश्यमान सृष्टि है और **'स्थिति'** मानसिक एवं अदृश्य है। अवस्था की अवधारणा मानसिक है और अवस्था दैहिक है। तू सद्गुरु कृपा से ध्यान में स्थित होकर अन्य में दर्शित निद्रावस्था, मृतकावस्था, चिता और भस्मी अवस्थाओं की अवधारणा कर, तो तेरी मानस **'स्थिति'** बदल जाएगी। निद्रावस्था, मृतकावस्था, चिता और भस्मी की अवधारणा में जो मानस स्थिति बनती है, वह **'निद्रा'** से जागृति, **'मृत्यु'** से अमरत्व और **'भस्मी'** से विरक्ति में बदल जाती है। इस अवधारणा में प्रविष्टि के लिए नित्याध्यासन द्वारा अभ्यास करते-करते यदि तू अभ्यस्त हो गया, तो एक दिन अवश्य सिद्धस्थ हो जाएगा। वहाँ समस्त परिवर्तन, संशोधन, परिवर्द्धन आदि ईश्वर द्वारा ही होता है।

पूर्णतः प्रभु का शरणागत होते ही आत्मज्ञान स्वतः भीतर से प्रकट होता है। देह से देहातीत के मध्य एक सुदृढ़ एवं अभेद दीवार है, जिसमें एक द्वार है। उस द्वार का अधीश वह द्वारकाधीश (श्रीकृष्ण) है। वह तेरा इष्ट व सद्गुरु तुझे देह द्वारा, देह के दौरान देहातीत ले जाएगा और पुनः भीतर ले आएगा। तेरी एक देह का देहातीत सबका है और देहातीत एक ही है। वही तेरा आधार है। हमारा **'सर्वस्व'** जिस प्रभु का है, वह **'सर्वेसर्वा'** है। हमारा यहाँ **'कुछ नहीं'** है, लेकिन हमारा **'कुछ नहीं'** हमारे पास नहीं है। **'कुछ नहीं'** देहातीत है। **'कुछ नहीं'** तेरी देह की **'भस्मी'** है, जिसे तूने कभी नहीं देखा। जीते जी उस निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य से आत्मसात् होना और अपने उस **'कुछ नहीं'** को प्रभु समर्पित करना **'सर्वेसर्वा'** का समर्पण है।

हारगर्भित प्रार्थनाएँ ही **'सार गर्भित'** होती हैं। **'हार गर्वित'** होते हुए **'मैं'** चेतना के किसी स्तर पर होते हुए प्रभु से जुड़ जाता है, कि ''प्रभु ! मैं दो

मुट्ठी भस्मी का ढेर हूँ, जो तुम कभी भी बना सकते हो। तुम भस्मी प्रिय हो, आज मेरी भस्मी ओढ़ लो। आज **'फिर'** तुमने मुझे देह दी है, जिसका मैं **'फिर'** सदुपयोग तो क्या उपयोग भी नहीं जानता। आज का दिन **'फिर'** नित नूतन है। **'आज'** फिर आज है, देह **'फिर'** देह है और **'फिर'** मैं अपनी अनभिज्ञता स्वीकार करता हूँ, कि मुझे नहीं मालूम, कि **फिर** आपने आज का दिन व देह मुझे क्यों दी है ? मेरी अनभिज्ञता **फिर** वैसी की वैसी है। **'मैं'** **फिर** वही प्रार्थना कर रहा हूँ। हे प्रभु ! तुम **फिर** वही हो जिसके सम्मुख मैं प्रार्थना कर रहा हूँ। मैं **नित नूतन** हूँ, तू **'नित्य'** है।''

सांसारिक विधाओं एवं प्राणियों की याद और ईश्वर की याद में बहुत अन्तर है। जीवन की कठिनाइयों में अक्सर लोग ईश्वर को याद करते हैं। लेकिन प्रभु को प्रभु के सान्निध्य की अनुभूति के लिए याद करना प्रभु के **'रहमो-करम'** एवं **'दया'** पर ही आश्रित है। उसकी दया होगी, तो प्रभु की याद आएगी। प्रभु की विशिष्ट दया से ही प्रभु का सिमरन, नाम-जाप और उसके सान्निध्य की अनुभूति की इच्छा होती है। प्रेम में मिलन से अधिक महत्व विरह का है। जुड़ाव की **'बेजोड़ता'** का प्रमाण बिछुड़ने में ही मिलता है। किसी जोड़ की परिपक्वता का आकलन बिछुड़ने से होता है, क्योंकि जिससे हम जुड़े होते हैं, उससे ही बिछुड़न का अनुभव होता है। अन्यथा जुड़ाव का पता ही नहीं चलता।

प्रभु के साथ हमारा जोड़ है ही और यह जोड़ **'बेजोड़'** (दुर्लभ एवं अनुपम) है। बेजोड़ जोड़ वस्तुतः समस्त व्याधियों का **'तोड़'** है। बिजुड़ा से बिछुड़ा शब्द बना है। **'जोड़'** जितना परिपक्व होता है बिजुड़ी (बिछुड़ी) अवस्था में बिछुड़ने का उतना अधिक कष्ट होता है। तू कितना जुड़ा है, इसका पता बिछुड़ने पर तेरी दशा से चलेगा। जब किसी को प्रभु की **'याद'** आती है, तो उसकी **'दया'** का प्रवाह कृपा और क्षमा के साथ बहने लगता है। तब याद एक ओर रह जाती है, वह स्वयं प्रकट हो जाता है। सन्तान चाहे कितनी नालायक हो, जब माता-पिता को याद करती है, तो वे सब कुछ भूल कर पुत्र को गले से लगा लेते हैं। यही बात प्रभु के साथ है, हम उससे विमुख

हो सकते हैं, पर वह हमसे कभी विमुख नहीं होता। जब कोई भक्त, प्रेमी, दुष्ट, दुराचारी, दुर्जन और घोर अधोगति को प्राप्त जीव भी अश्रुपूर्ण नेत्रों व गदगद हृदय से उसका सिमरन करता है, तो वह द्रवीभूत हो जाता है।

जहाँ परमात्मा की याद में अश्रु बहते हैं, वहाँ तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र तीनों एक ओर हो जाते हैं। अपने प्रिय प्रभु का ध्यान आते ही जब अश्रुपात् होने लगता है, वह अश्रुपात् समस्त रोगों-दोषों को समाप्त कर देता है। मन निर्मल होकर पापों-पुण्यों से रहित होते हुए **'मैं'** जटिल्य (Complex) से भी रहित हो जाता है और आत्मतत्त्व की जागृति होती है। वस्तुतः कृपा पर विशिष्ट कृपा, आत्मज्ञान एवं अपने स्वरूप की स्मृति ही है। तब कृपा पर कृपा हो जाती है अर्थात् तुझे सांसारिक पदार्थों या वस्तुओं की चाहत ही नहीं होती और तू मात्र अपना पदार्थ (पद का अर्थ) अथवा अपनी वास्तविक वस्तु विरक्ति स्वरूप अपनी **'भस्मी'** की चाह में जन्म दर जन्म प्रभु का पूर्ण शरणागत हो कर पड़ा रहता है। अग्नियुक्त भस्मीमय देह से आत्मसात् होकर की गई प्रार्थनाओं से द्रवीभूत होते हुए प्रभु तुझे विभूत्यातीत विभूति, **'विरक्ति'** से विभूषित कर देते हैं। यहाँ ईश्वर की समस्त विभूतियाँ, ज्ञान, शक्ति, सौन्दर्य, ख्याति, ऐश्वर्य एवं विरक्ति तेरे भीतर विचरण करने लगती है। वास्तविक जीवन का रसास्वादन होने लगता है।

***''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''***

**(24 फरवरी से 29 नवम्बर 2012)**